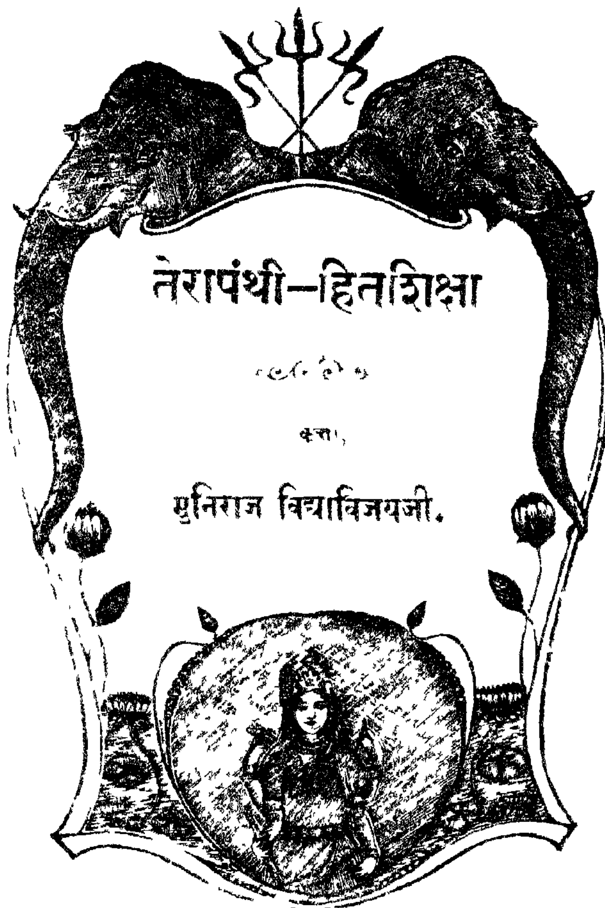
परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।



तेरापंथी–हितशिक्षा

कर्त्ता,

मुनिराज विद्याविजयजी.

प्रकाशक,

अभयचंद भगवानदास गांधी.

वीर सं. २४४२ स. १९१५.

प्रथमवार २०००, दाम ०॥

परमगुरुशास्त्रविशारद-जैनाचार्यश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

तेरापंथी-हितशिक्षा ।

लेखक.

मुनिराज विद्याविजय ।

प्रकाशक,

अभयचंद भगवान् गांधी.

श्री "विद्या विजय" प्रिन्टिंग प्रेसमें शाह पुरुषोत्तमदास गीगाभाई पांचभायाने मुद्रित किया—भावनगर.

वीर सं० २४४२ । सन् १९१५ ।

परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

किञ्चिद् वक्तव्य.

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' संसारमें यह सामान्य लोकोक्ति समझी जाती है, परन्तु इसके गूढ रहस्यका जब पता लगाते है, तब मालूम होता है कि–यह उपर्युक्त मामूली लोकोक्तिका ही परिणाम है कि–संसारमें दिन प्रतिदिन नये २ पंथ–मजहब उत्पन्न होते ही रहते हैं, और नष्ट भी होते जाते है । संसारमें ऐसे अनेको पदार्थ है, जिनको समझना, अल्पज्ञोंकी बुद्धिसे नहीं हो सकता । और इसी लिये तो हमारे ज्ञानी–ऋषि–महात्मा लोग कह गये हैं कि–'सर्वज्ञके वचनोंपर तुम विश्वास रक्खो ' । हां इतनी आवश्यकीय बात है कि–हमारे आगम–हमारे सिद्धान्त सर्वज्ञभाषित है या कि नहीं ? इसकी प्रथम हमे अवश्य प्रतीति होनी चाहिये । और इस प्रतीतिके होनेमे, उनके वचनोंकी सत्यताको समझना यही परम कारण कहा जा सकता है ।

लेकिन ठीक है, जब मनुष्यमे अपनी मान्यता–पूजनाकी अभिलाषाका आवेग अमर्यादित हो जाता है, तब वह सर्वज्ञके वचनोंको झूठे दिखलानेमे किसी प्रकारका डर नहीं रखता । हमारे शुद्ध सनातन जैनधर्ममे, आजपर्यन्त जितने पंथ निकले है, उन सभीके उत्पादकोंके चरित्रोंको जब हम देखते है, तब हमें साफ २ जाहिर होता है कि–उपर्युक्त कारणसे ही उन्होंने नये २ ढांचे खडे किये हैं । और संसारके बहुतसे लोग कैसे भोले होते हैं, यह तो पाठक, अच्छी तरह जानते ही होंगे कि, उनको यदि यह कहा जाय कि–'देखो, सूईके छिद्रमेंसे शत हाथी निकल गये और जब सौवाँ हाथी निकलने लगा, तब वह पूंछमें जाके अटक गया,' तो भी वे 'जी ! हां !' ही करते

रहेंगे ।" कहनेका तात्पर्य यह है कि–ऐसे भोले लोग उन लोगोंकी जालमें फँस जाँय, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । अस्तु ।

जिस पुस्तकके विषयमें यह 'किञ्चिद्वक्तव्य' लिखा जाता है, वह भी एक ऐसे ही पंथके विषयमें है । करीब दो वर्षोंके पहिले इस तेरापंथ मतके विषयमें मुझे विशेष अनुभव नहीं था, बल्कि इस पंथके मन्तव्योंके विशेष रूपमे जाननेकी इच्छा भी नहीं हुआ करती थी । परन्तु सौभाग्यवश. सं० १९७० के वैशाख महीनेमे जब, परमपूज्य प्रातःस्मरणीय गुरुवर्य शास्त्रविशारद–जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज तथा इतिहासतत्त्वमहोदधि उपाध्यायजी महाराज श्रीइन्द्रविजयजीकी पाली (मारवाड) में तेरापंथियोंके साथमें चर्चा हुई, और तेरापंथियोंने तेईस प्रश्न लिख करके दिये, तभीसे मुझे इस पंथके मन्तव्योंके जानने और इसके विषयमें कुछ न कुछ लिखते रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता ही रहता है ।

उन तेईस प्रश्नोंके उत्तरोंके साथमे, तेरापंथ–मतकी उत्पत्ति, उसके स्थूल स्थूल मन्तव्य (सिद्धान्त) तथा तेरापंथियोंसे पूछे हुए ७५ प्रश्न वगैरह संग्रहरूप 'तेरापंथ–मत समीक्षा' नामक पुस्तक, मैंने गत वर्षमें (सं० १९७० के चातुर्माससमे) शिवगंजमें लिखी थी । मुझे इस बातको प्रकट करते हुए संतोष होता है, कि–मेरी उस पुस्तककी दूसरी आवृत्तिके निकालनेका प्रकाशकको बहुत शीघ्र समय प्राप्त हुआ । साथ मुझे इस बातका अफसोस भी है कि–उस पुस्तकमें मेरे पूछे हुए ७५ प्रश्नोंके उत्तर, आजतक किसी भी तेरापंथीने प्रकाशित नहीं किये ।

यद्यपि मैंने, 'तेरापथ–मत समीक्षा' में तेरापंथियोंके मन्तव्योंके नाम मात्र प्रकाशित किये थे, परन्तु उनका विस्तारसे जवाब नहीं

लिख सका था। इस लिये उनके लिखनेकी बहुत आवश्यकता समझता था। क्योंकि–आजकलके मनुष्योंको जब तक शास्त्र प्रमाण और युक्तियोंके द्वारा किसी भी विषयको न समझाया जाय, तब तक उनके अन्तःकरणोंमें इसका असर नहीं पहुँच सकता है। और तेरापंथियोंने अपनी पुस्तकोंमें भद्रिक जीवोंके फँसानेके लिये ऐसे २ दृष्टान्त और कुयुक्तियां दी हैं, जिनको पढ करके, सामान्य बुद्धि वाला मनुष्य तो एक दफे 'इदं किम्' इस विचारमें अवश्य ही पड सकता है।

तेरापंथियोंके सभी सिद्धान्त ऐसे है, जिनके विषयमे बहुत कुछ लिखनेकी आवश्यकता है। सिद्धान्त ही नहीं, उनके आचारों पर भी लंबी चौडी आलोचनाओंके करनेकी जरूरत है। क्योंकि–संसारमे ऐसा कोई मजहब नहीं होगा कि–जो साधु, और साध्वियों-को आपसमें घनिष्ट संबंधके रखनेका तेरापंथियोंकी तरह प्रतिपादन करता हो। यही क्यों? तेरापंथी साधु और साध्वियाँ एक ही मकानमें रहनेमें भी पाप नहीं समझते। हाँ, एक आंगनमें नहीं रहनेका अवश्य जाहिर करते है। देखिये, इसके लिये, कुछ दिन पहिले उदयपुरके मी० कावडियाजीने, अपने निकाले हुए इश्तिहारमें लिखा है:—

"रात्रीको छोटीसे छोटी लडकी भी साधुओंके निवासस्थानमें (एक आंगन) मे नहीं रह सकती"

इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि एक मकानमें अवश्य रहती हैं। इसके सिवाय और भी बहुतसे आचार उनके ऐसे है, जो कि शास्त्रसे–व्यवहारसे सभी प्रकारसे सर्वथा खिलाफ है।

तेरापंथियोंके जितने सिद्धान्त शास्त्र विरुद्ध है, उनमें 'दया–दान-का निषेध' 'मूर्तिपूजाका' निषेध ये मुख्य हैं। इस पुस्तकमें मैंने इन

दोनों विषयोंपर लिखनेका इरादा किया था, परन्तु खेद है कि– अवान्तरमें अन्य कार्योंके उपस्थित हो जानेसे और इधर चातुर्मास की पूर्णाहूति भी समीप ही आजानेसे 'मूर्तिपूजा' के विषय पर मुझसे कुछ भी न लिखा गया। मैं उस दिन अपनी आत्माको विशेष धन्य समझूंगा, जिस दिन 'मूर्तिपूजा' और तेरापंथियोंके अन्य मन्तव्यों पर एक और पुस्तक लिख कर पाठकोंके कर कमलोंमें समर्पित करूंगा।

इस पुस्तकमें मैंने खास करके तो दया–दानके विषयमें ही विशेष लिखनेका प्रयत्न किया है। इसके साथमें, संक्षेपसे इस (तेरापंथ) मतके उत्पादक 'भीखमजीके जीवन' और 'मुहपत्ती बांधना शास्त्र विरुद्ध है कि नहीं, इनकी आलोचनाएं भी आवश्यकीय समझ कर की गई है।

इस पुस्तकके लिखनेमे, जहाँ तक बना है मैंने 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्' इस नियमको स्मरणमें रक्खा है, तिस पर भी कदाचित् कहीं अनुचित शब्द लिखा गया हो, तो इसके लिये मुझको दोषित न गिन कर, तेरापंथियोंकी पुस्तकें 'भ्रम-विध्वंस', 'तेरापंथी श्रावकोंका सामायक पडिक्कमणा अर्थ सहित', 'तेरापंथीकृत देवगुरु धर्मनी ओलखाण', 'जैनज्ञानसारसंग्रह', 'जिनज्ञानदर्पण', 'श्रीभीखमजी स्वामिको चरित्र रास' तथा 'ज्ञान प्रकाश' (प्रश्नोत्तर) वगैरहको ही गिनना चाहिये, जिनको पढ करके मैंने यह पुस्तक लिखी है। उनकी पुस्तकोंमें ऐसे असभ्य और कटु शब्द लिखे है, जिनको देख राभसवृत्तिसे कहीं अनुचित शब्द निकल जाना संभवित है।

इस पुस्तकके लिखनेमें अगर मैं कुछ भी प्रशस्त प्रयत्न कर सका हूँ और पाठकोंके संतोषकारक युक्तियाँ दे सका हूँ, हूँ, तो वह, मेरे पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय गुरुवर्यकी कृपाका–

अनुग्रहका—उपदेशका ही फल है। क्योंकि मेरेमें यह शक्ति ही नहीं है कि—मै किसी प्रकार पाठकोंको सन्तोष दे सकूं। और इस पुस्तकमें जो जो त्रुटियाँ देखी जाँय, वे मेरी ही अज्ञानताके कारण समझनी चाहिये।

मैं यहाँपर इतिहास तत्वमहोदधि पूज्यपाद उपाध्यायजी महाराज श्रीइन्द्रविजयजी, न्यायतीर्थ न्यायविशारद प्रवर्तकजी महाराज श्री मंगलविजयजी, तथा न्यायतीर्थ-न्यायविशारद मुनिवर्य न्यायविजयजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि, जिन्होंने मुझे इस पुस्तकके लिखनेमें समस्त प्रकारकी सहायता दी है।

अन्तमें, इस पुस्तकसे प्यारे पाठक अवश्य लाभ उठावें, और दया—दानके परम तत्त्वको समझे। बस इसमें ही मैं अपने प्रयत्नकी सफलता चाहता हुआ, इस वक्तव्यको समाप्त करता हूँ।

उदयपुर—मेवाड.
कार्तिकी पुर्णिमा वीर सं० २४४२

विद्याविजय.



॥ अर्हम् ॥



परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

तेरापंथी-हितशिक्षा ।

शास्त्रकारोंका यह कथन सर्वथा सत्य ही है कि–' रागदृष्टि, मनुष्यमें रहे हुए हजारों दोषोंमेंसे एकको भी नहीं देख सकती । ' लेकिन बुद्धिमान लोग ऐसे दृष्टिरागियोंके आचरणोंपर बडी हँसी किया करते हैं । जिस धर्ममें, जिस मजहबमें, जिस पंथमें अथवा यों कहिये कि जिस समाजमें शास्त्रविरुद्ध और व्यवहारविरुद्ध आचरण हो रहे हों, संसारके समस्त सभ्यमनुष्य जिसके प्रति घृणा दिखाते हों, जिस पंथके मन्तव्योंको सुनते ही लोग छीं छीं करते हों, और साथ ही साथ जिस पंथके उपदेशक (साधु) के हृदयमें दयाकी अंशमें भी मात्रा न रही हो, उस पंथको -मजहबको मोक्षमें ले जानेवाला. समझनेवाले बुद्धिमानों (!) की बुद्धिका क्या परिचय कराया जाय ? । संसारमें हम जितने धर्म या समाजोंको देखते हैं, उनमेंसे किसी धर्म या समाजमें यह सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित किया गया है कि ' जीवको बचानेमें पाप लगता है । ' यदि इस सिद्धान्तवाला संसारमें कोई मत है तो वह ' तेरापंथ '

मत ही है। और इसीसे इस पंथको कोई भी मनुष्य मानुषीपंथ कहनेका साहस नही कर सकेगा। क्योंकि मनुष्य प्रतिपादित 'कोई' भी धर्म ऐसा नहीं है कि–जिसमें सर्वथा मनुष्यके हृदयको निष्ठुर–निर्दयी अथवा पाषाणके नातेदार बनानेका प्रयत्न किया गया हो। जो मनुष्य हमेशा मांस खानेवाला है, और जो कसाई हमेशा जीवोंका वध करता है, वह भी यदि रास्तेमें, दो जीवोंको लडते हुए अथवा प्रबलजीव, दुर्बलजीवको मारते हुए देखेगा, तो उसको, छुडानेका अवश्य ही प्रयत्न करेगा। परन्तु तेरापंथी नामधारी ऐसे जीवोंको कभी नही छुडावेंगे।

हमें इस बातसे अधिक खेद है कि–ये लोग पवित्रजैनधर्मको कलंकित कर रहे हैं, लेकिन हम इसको 'जैनी' नही कह सकते। क्योंकि जैनधर्मका तो मुख्य सिद्धान्त ही जीव दया–जीवरक्षा है, और इन्होंने जीवदयाको तो बिलकुल उठा ही दिया है। फिर वे क्योंकर जैनी होने के दावेको निभा सकते हैं?।

क्या यह जैनधर्मका कभी सिद्धान्त हो सकता है कि–' भूखे-प्यासेको जिमाने, कबूतरादि पक्षियोंको दाने डालने और दानशालाके करवाने, इत्यादि अनुकंपाके कार्योंमें एकान्त पाप होता है?। क्या यह जैनधर्मका सिद्धान्त हो सकता है कि–बिल्ली चूहे (उंदर) को और कुत्ता बिल्लीको पकडता हो तो उसको छुडानेसे पाप लगे?। क्या यह जैनधर्मका सिद्धान्त हो सकता है कि–कोई मनुष्य किसी जीवको मारता हो, तो उसको द्रव्यादिक देकरके छुडानेमें पाप लगता है?। और क्या यह जैनधर्मका सिद्धान्त हो सकता है कि–गरीब–दुःखी–दुर्बलजीवको अनुकंपा दान देनेमें एकान्त पाप लगता है?।

इत्यादि जैनधर्मके सिद्धान्तोंसे बिलकुल विपरीत सिद्धान्तोंको मानने वाले यदि 'जैनी' होनेका दावा करते हों, तो उनका यह वैसा ही दावा है, जैसे कि--एक कसाई, ब्राह्मण होनेका दावा करे ।

तेरापंथी, जैनी नहीं हैं, इसमें एक और भी प्रमाण है । जैनोंके देव, चौवीस तीर्थंकर हैं, तेरापंथियोंके देव, उस पंथके उत्पादक भीखम है । जैनोंके गुरु, पंचमहाव्रतको पालने वाले, कंचन-कामनीके सर्वथा त्यागी, उष्णजलको पीनेवाले, निर्दोष आहारको लेनेवाले और महावीरस्वामीके तीर्थमें गुरुपरंपरासे चले आनेवाले साधु-मुनिराज हैं । तेरापंथियोंके गुरु, साध्वियाँ-श्राविकाओंको रातके दस १२ बजे तक पासमें ही बैठा रखनेवाले, एक एक दिवसके अंतरसे नियत किये हुए घरोमेंसे मरजी मूजब माल उठानेवाले, साध्वियोंके पास आहारपानी मंगवानेवाले, कच्चे पानीको पीनेवाले, (एक घडे पानीमें जरासी राख डाल दी, इससे पक्का नहीं कहा जा सकता, और ऐसे राखके पानीके पीनेका अधिकार भी नहीं है, इसलिये हम उसको कच्चापानी ही कहते हैं) मूँह पर दिनभर मुहपत्ती बांध रखने वाले, तेरापंथी साधु ही हैं । जैनोंका धर्म, महावीरस्वामीका प्ररूपित है, और तेरापंथियोंका धर्म, भीखमका उत्पादित है ।

अब बतावें पाठक, तेरापंथियोंको जैनी कहना, कितनी भारी भूल है ।

ऊपर कहे हुए संसार–व्यवहारको छेदनकरने वाले, हृदयको निर्दय बनानेवाले बहुतसे सिद्धान्तोंका नामोल्लेख 'तेरापंथ–मत-समीक्षा' में किया गया है । अब इस पुस्तकमें इनके

माने हुए स्थूलस्थूल सिद्धान्तोंका, जैनसूत्रों और युक्तियों के साथ खंडन आगे जाकर किया जायगा। लेकिन इसके पहिले एक और बात कह देना समुचित होगा।

नीतिकारोंका यह कथन है कि—'पुरुषविश्वासे वचनविश्वासः' सिवाय पुरुषविश्वासके होनेके, वचनका विश्वास नहीं हो सकता। अतएव पहिले इस तेरापंथ-मतके उत्पादक भीखुनजीके जीवन-चरित्रका अवलोकन करें, कि जिससे पाठकोंको यह तो विदित हो जाय कि--इस पंथके उत्पादककी ज्ञानपूंजी कितनी थी?।

भीखम चरित्रका अवलोकन[१]

भीखम (भीखुन) चरित्र, तेरापंथियोंके छपवाए हुए कई पुस्तकोंमें छपा है। इन परसे मालूम होता है कि—इसका जन्म मारवाडके कंटालिया नामक किसी ग्राममें, सं. १७८३ में हुआ था। इसके पिताका नाम बलुजी था, और माताका नाम दीपादे। सं. १८०८ में इसने ढूंढक साधु रुघनाथजीके पास दीक्षा ली। सारे चरित्रको हम पढ गये, परन्तु कहीं भी यह नहीं देखा गया कि इन्होंने संस्कृत—प्राकृत या भाषाका भी कुछ अभ्यास किया हो। इतना ही नहीं, इसकी बनाई हुई टूटी—फूटी भाषाकी कविताओंके सिवाय आज एक भी छोटी बडी उपयोगी पुस्तक प्राप्त नहीं होती। इससे क्या समझना चाहिये?। जैसे आजकल मारवाड—मेवाडमें

१ सं. १९५७ में शाह खेतसी जीवराजने 'तेरापंथी श्रावकोंका सामायकपडिक्कमणा अर्थ सहित' नामक जो पुस्तक निर्णयसागर प्रेसमें छपवाई है, उससे यह अवलोकन किया गया है। इस चरित्रको रिख वेणीदासने **बगडी में, वि. सं. १८६० फाल्गुन वदि १३ गुरुवारके दिन बनाया था।**

तेरापंथी और ढूंढिये बिना पढे लिखे अज्ञानियों को मूंड लेते हैं, वैसे ये महात्मा (!) भी रागको नहीं समझ करके ही विरागी बन बैठे हों, ऐसे ही प्रतीत होता है।

ऊपर दिये हुए संवतोसे मालूम होता है कि–भीखमजीने पचीस-वर्षकी उम्रमें ढूंढकमतका पल्ला पकडा था। इतनी उम्रमें भी आप-की बुद्धिका तेज कितना लंबा–चौडा था, इसके लिये एक ही प्रमाण देख लीजिये। भीखुचरित्रकी प्रथम ढालकी ८ वीं कडीमें लिखा है:—

'गुरु किया रुगनाथजीरे लाल, पूरी ओलख्यो नहीं आचाररे'

बडे आश्चर्यकी बात है कि–पचीसवर्षकी उम्रमें दीक्षा ली, फिर भी आप आचारकी परीक्षा नहीं कर सके। बस, यही आपकी बुद्धिका परिचय है। यदि इसमें थोडीसी भी समझनेकी शक्ति होती तो ढूंढकपंथमें दीक्षा लेना ही क्यों ?। अस्तु, ऐसे अल्पज्ञ होनेपर भी चरित्रके लेखक तो इसको 'तीर्थंकर' की तरह मानते हैं, यह भी अन्धश्रद्धाका नमूना ही नहीं तो और क्या ?।

चरित्रका लेखक भी अपनेको एक महाज्ञानी समझकरके ही चरित्रको लिखने बैठा है। यदि ऐसा न होता तो चरित्रकी शुरुआतमें:—

'किहां उदना किहां जनमिया, परभव पहोता किण ठाम।
धुरसुं उत्पत्ति त्यारी कहुं, ते सुणजो शुद्धपरिणाम' ॥५॥

आश्चर्यकी बात है कि–'चारित्रनायक परभवमें कहां पहूंचे' इसकाभी ज्ञान लेखकको हो गया ?। कितनी अंधाधुंधी ?। लेकिन ठीक है, तेरापंथ-मतके उत्पादक भीखमजीने, परमात्मा महावीर

देवको ही चूका कहनेका जब दुःसाहस किया, तब भला ये क्यों कमी रक्खें ? साथ साथ, एक और बातभी समझ लीजिये ।

भीखुचरित्रके लेखकने, भीखमजीके जन्मादि प्रसंगोंको तीर्थंकरके कल्याणकोंकी तरह कल्याणक लिखे हैं । जैसे जन्मके प्रसंगमें लिखा है:—

'तीखीतिथि तेरस सुणीरे लाल, जन्मकल्याणिक थायेरे' । सो० ॥५॥

ऐसे और प्रसंगोंमें भी । अब यहाँ विचारनेकी बात है कि-कल्याणक होते हैं किसके ? । कल्याणक होते हैं तीर्थंकरोंके । भीखमजी जैसे अल्पज्ञोंके नहीं । और जिसके कल्याणक होते हैं, उसको तो गर्भमेंसे ही तीन ज्ञान (मति-श्रुत-अवधि) होते हैं । क्या भीखमजी, जब उनकी माताकी कुक्षिमें आए, तबसे उनके तीन ज्ञान थे ? । और यदि उसको तीनज्ञान होते, तो बिचारा ढूंढकसाधु होता ही क्यों ? एवं पीछेसे वहाँसे भागकर एक नया ढाँचा खडा करता ही क्यों ? ।

और भी एक बात है । जिनके कल्याणक होते हैं, उनके (तीर्थंकरोंके) जन्मसे ही ये चार अतिशय होते हैं:—

' तेषां च देहोऽद्भुतरूपगन्धो
निरामयः स्वेदमलोज्झितश्च ।
श्वासोऽब्जगन्धो रुधिरामिषं तु
गोक्षीरधाराधवलं ह्यविस्रम् ॥ ५६ ॥
आहारनीहारविधिस्त्वदृश्य-
श्चत्वार एतेऽतिशयाः सहोत्थाः । '

(अभिधानचिन्तामणौ)

अर्थात्—१ तीर्थंकरोंका अद्भुतरूप-गन्धवाला देह होता है, रोग तथा पसीना भी नहीं होता, २ कमलकी सुगन्धी जैसा श्वास होता है, ३ रुधिर तथा आमिष गौके दुग्ध जैसा सफेद होता है और ४ आहार-नीहार कोई देखने नहीं पाता ।

ये ही चार अतिशय, समवायांगसूत्रके ४८–४९ (लिखी हुई प्रतिके) पत्रमें, ३४ अतिशयोंके अन्तर्गत इसतरह लिखे हैं:—

"निरामयनिरुवलेवा गायलट्ठी, गोखीरपंडरे मंससोणिते, पउमुप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे, पच्छन्ने आहारनीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा"

अर्थः—निरामय तथा निर्मलशरीरवाले, गोदुग्ध जैसे सफेद मांस-रुधिरवाले, कमल जैसे सुगंधित श्वासोच्छ्वासवाले, तथा जिनके आहार-नीहार चर्मचक्षुसे न दीख पड़ें ।

अब बतलाइये, भीखमजीमें ऊपरकी बातें पाई जाती थीं ? । जब नहीं पाई जाती थीं, तो फिर उसके 'जन्मकल्याणक' कहनेवाला महामृषावादी नहीं तो और क्या ? । अस्तु, अब आगे चलें ।

भीखमजीने ढूंढकसाधु रुगनाथजीके पास दीक्षा तो लेली, परन्तु उसको पीछेसे बहुत पश्चाताप होने लगा । इसके मनमें अनेक प्रकारकी शंकाएं होने लगीं । उन साधुओंके आचार-विचारोंको देख करके इसके मनमें विचार हुआ कि–'मैं शुद्ध मार्ग पकडुं' क्योंकि दूसरी ढालके प्रथम दोहेमें कहा है:–

" विधसु करी विचारणा, वारंवार विशेष ।
शुद्धमारग लेणो सही, परभवसामो देख " ॥ १ ॥

मनुष्य जब किसी कार्यके करनेका विचार करता है, तब उसको अच्छा ही समझ करके करता है। इसी तरह भीखमजीने विचार तो शुद्धमार्गके पकडनेका किया, लेकिन यह तो न समझ सका कि–'मैं इससे भी अधिक अंधेरेमें जानेका विचार कर रहा हूँ। ढूंढकमतमें दीक्षा लेकर 'परमात्माकी मूर्तिको न मानना' 'रात्रिको पानी नहीं रखना' 'मूँहपर मुहपत्ती (कपडेका टुकडा) बांध रखना' इत्यादि जैनशास्त्रविरुद्ध बर्ताव कर अंधेरेमार्गका स्वीकार तो किया ही था। इससे भी, बुद्धिके वैपरीत्यसे और अंधेरेमार्गमें जानेका विचार किया।

भीखमजीने अपने गुरुके साथमें किस तरह चर्चा की, गुरुने किस २ तरह समझाया तथा भीखमजी उसकी एक न मानकर किसतरह अलग हुआ, यह सारी बात 'तेरापंथ-मतसमीक्षा' में दिखलादी है, इस लिये यहाँ लिख कर पुनरुक्तिके दोषमें उतरना अच्छा नहीं समझते।

भीखमजीने जब ढूंढकमत छोड अलग अडंगा जमानेका विचार किया, तब उसके साथमें तेरह साधु तय्यार हुए। और इसीसे इसने अपने पंथका तेरापंथ नाम रक्खा। इसने विना गुरुके ही संवत् १८१७ के आसाढ सुदि १५ के दिन केलवास (मेवाड) में अपने आपसे दीक्षा ले ली। नये पंथको निकालते हुए ही 'प्रथमकवले मक्षिकापातः' का नमूना यहाँ पर ही हुआ। क्योंकि भगवतीसूत्रके २५ वे शतकके ६ उद्देशेमें इस मतलबका पाठ है कि–'छेदोपस्थापनीयचारित्र सिवाय गुरुके नहीं मिल सकता।'

देखिये इसकी सिद्धिकरने वाले दो पाठः—

" पुलाए णं भंते ! किं सामाइयसंजमे होज्जा, छेओवट्ठा-वणियसंजमे होज्जा, परिहारविसुद्धियसंजमे होज्जा, सुहुम-संपरायसंजमे होज्जा, अहक्खायसंजमे होज्जा ? गोयमा ! सामा-इयसंजमे होज्जा, छेओवट्ठावणियसंजमे होज्जा, णो परिहारविसु-द्धियसंजमे होज्जा, णो सुहुमसंपरायसंजमे होज्जा, णो अहक्खाय-संजमे होज्जा, एवं बउसेवि । एवं पडिसेवणाकुसीलेवि । "

(भगवती—पत्र—१७३३)

अर्थः—हे भगवन् ! पुलाकनियंठा, क्या सामायिकसंयममें होता है, छेदोपस्थापनीयसंयममें होता है, परिहारविशुद्धिसंयममें होता है, सूक्ष्मसंपरायसंयममें होता है, और यथाख्यातसंयममें होता है ? भगवान्ने कहाः—

हे गौतम ! सामायिकसंयममें होता है, छेदोपस्थापनीयसंयममें होता है । और परिहारविशुद्धिसंयम, सूक्ष्मसंपरायसंयम तथा यथाख्यातसंयममे नहीं होता । इसी तरहसे बकुश और प्रतिसेवणा-कुशीलमें भी समझ लेना ।

जब यह सिद्ध हुआ कि—बकुशादि नियंठे सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापनीयचारित्रमें ही होते हैं, तब यह देखनेकी आव-श्यकता है कि—बकुशादि नियंठे तीर्थमें ही होते हैं कि अतीर्थमें । इस-के लिये भगवतीसूत्रके, २५ श० ६ उ० पत्र १७३७ के पाठको देखियेः—

" पुलाए णं भंते ! किं तित्थे होज्जा, अतित्थे होज्जा ? । गोयमा ! तित्थे होज्जा, णो अतित्थे होज्जा एवं बउसेवि । एवं पडिसेवणाकुसीलेवि । "

अर्थः—हे भगवन् ! पुलाकनियंठा, क्या तीर्थमें होता है, कि अतीर्थमें होता है ? । भगवान् कहते हैं:–गौतम ! तीर्थमें होता है, अतीर्थमें नहीं होता है। इसी तरहसे बकुश और प्रतिसेवणाकुशीलको भी समझना ।

बस, सिद्ध हो चुका कि, जब बकुशादि नियंठे तीर्थमें होते हैं, तो फिर जिनमें बकुशादि नियंठे रहते हैं, वे दो चारित्र (सामायिकचारित्र, छेदोपस्थापनीयचारित्र) भी तीर्थमें ही हुए ।

अब यह विचारनेकी बात है कि--भीखमजी, जब तीर्थमें ही नहीं रहे-संघमें ही नहीं रहे--गुरुपरंपरामें ही नहीं रहे, तो फिर उनको सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापनीयचारित्र मिला ही कहाँसे ? तीर्थमें तो साधु वे ही गिने जा सकते हैं कि, जो गुरुपरंपरामें होते हैं । और ऐसे तो भीखमजी थे नहीं । इन्होंने तो विना गुरुके ही मुंडवा लिया था । और इससे यह भी प्रत्यक्षसिद्ध हुआ कि–भीखमने पंथ निकालनेके प्रारंभमें ही भगवान्की आज्ञाके विराधनेका 'श्रीगणेशाय नमः' किया ।

भीखुचरित्रके लेखकका यह लिखना बिलकुल झूठ है कि:—

" उदे उदे पूजा कही, श्रमण निग्रंथनी जाण ।
तिणसुं पूज प्रगट थया, ए जिन वचन प्रमाण" ॥२॥

यह उदय उदयमें पूजा तेरापंथी साधुओं जैसे महात्माओं (!) की नहीं कहीं । किन्तु श्रमणनिग्रंथोंकी कही है । और भगवान्के कथनानुसार श्रमणनिग्रंथोकी पूजा हुई भी है। देखिये, दो हजार वर्षके भस्मग्रहके उतरनेके पश्चात् अभी तक ४४१ वर्ष हुए हैं । इतने वर्षोंके

बीचमें महाप्रभावक निर्ग्रंथ पुरुष, जैसे श्रीसोमसुंदरसूरि, श्रीमुनिसुंदरसूरि, श्रीरत्नशेखरसूरि, श्रीहेमविमलसूरि, श्रीआनंदविमलसूरि, श्रीविजयदानसूरि, श्रीहीरविजयसूरि, श्रीविजयसेनसूरि, श्रीयशोविजय उपाध्याय, एवं खरतरगच्छमें श्रीजिनभद्रसूरि, श्रीजिनचंद्रसूरि, श्रीजिनसमुद्रसूरि, श्रीजिनचंद्रसूरि, श्रीजिनसिंहसूरि और श्रीसमयसुंदर उपाध्याय वगैरह ऐसे ऐसे हुए हैं कि-जिन्होंने यवनराजाओंको प्रतिबोध करके भी जैनशासनको दीपाया है। इन्होंने अनेक तीर्थोंके उद्धार करवाये हैं और अहिंसाधर्मका प्रचार भी किया है।

ऊपर जिन आचार्योंके नाम दिये गये हैं, ये तो सिर्फ तपगच्छ तथा खरतरगच्छके ही आचार्योंके नाम हैं, परन्तु इनके सिवाय और भी गच्छोंमें बहुतसे प्रभावक आचार्य हुए है। अब तेरापंथी बतावें कि-इन ४४१ वर्षोंके दरमियान तुम्हारे कौन कौनसे ऐसे प्रभावक पुरुष हुए, जिन्होंने परमात्माके शासनकी शोभा की हो? । पाठकोंको यह बात स्मरणमें रखनी चाहिये कि-इस तेरापंथमतको उत्पन्न हुए ही १५० वर्षोंके करीब हुए हैं। अब बतलाईये, भगवान्‌ने तो दो हजार वर्षके बाद निर्ग्रंथोंकी पूजा होनेका कहा है, तो फिर ये तुम्हारे भीखमजी तीनसो वर्षों तक किस चिडीयेखानेमें घुस रहे थे? भगवानके कहे अनुसार तो तुम्हारे माने हुए निर्ग्रंथोंकी पूजा नहीं हुई।

आगे चलकर भीखुचरित्रका लेखक लिखता है कि:-

'वली वंकचुलीयामां वारता त्रेपना पछी विचार।
अधिक पूजा अरिहंते कही श्रमणनिग्रंथनी श्रीकार' ॥३॥

लिखनेवाला भूल गया। जिस 'वग्गचूलिया' का यह प्रमाण उसने दिया है, इसी वग्गचूलियामें खास करके लिखा हुआ है कि:—

"विक्कमकालाओ पणरसय-पणहत्तरीवासेसु गएसु कोहंडि-अपरिग्गाहियवंतरिप्पहावाओ भारहे वासे सुयहीलणा जिणपडिमाभत्तिनिसेहकारया सच्छंदायारा दुम्मेहा मलिणा दुग्गइगामिणो बहवे भिक्खायरा समुप्पज्जिहिंति ।"

अर्थः—विक्रम सं० १५७५ वर्ष होनेके बाद कोहंडी अपरिगृहिता व्यंतरीके प्रभावसे भरतक्षेत्रमें सूत्रकी निंदा करनेवाले, जिन-प्रतिमाकी भक्तिका निषेध करनेवाले, स्वच्छंदाचारी, दुर्बुद्धि, मलिन तथा दुर्गतिगामी ऐसे बहुत भिक्षु उत्पन्न होंगे ।

अब बतलाईये, ऊपर दिखलाए हुए आचारवाले तेरापंथीके साधु हैं कि नहीं ? । उपर्युक्त सभी बातें तेरापंथियोंमें पाई जातीं हैं, तो फिर भगवानके कथनानुसार ये शासनके ध्वंस करनेवाले क्यों न कहे जाँय ? इनको निर्ग्रंथ कहनेका साहस कौन बुद्धिमान कर सकता है ? । अस्तु इससे भी आगे चलिये । इसी 'वग्गचूलिया' में प्रतिपादित किया है:—

"तए णं ते दुवीसं वाणियगा उम्मुक्कबालवत्था विन्नाय परिणमयित्ता दुट्ठा धिट्ठा कुसीला परवंचगा खलुक्का पुव्वभवमिच्छत्तभावाओ जिणमग्गपडिणिया देवगुरुनिंदणया तहारूवाणं समणाणं माहणाणं पडिकुट्ठकारिणो जिणपन्नत्तं तत्तं अमन्नमाणा अत्तपसंसिणो बहूणं नरनारीसहस्साणं पुरओ नियत्थप्पाणं नियकप्पियं कुमग्गं आघवेमाणा पन्नवेमाणा परूवेमाणा जिणपडिमाणं भंजणयाणं हिलंता खिसंता निंदिता गरहिता परिहवंति चेइयतित्थाणि साहू साहूणी य उड्डावइस्संति"

अर्थः—वे बाईस पुरुष, बालभावसे मुक्त, जानकरके, परिणाम करके, दुष्ट, धृष्ट, कुशील, परवंचक, उल्लंठ, पूर्वभवके मिथ्यात्व-

भावसे जिनमार्गके प्रत्यनीक, देवगुरुके निंदक, साधु–माहणके निंदक, जिनतत्त्वोंको नहीं माननेवाले, आत्मप्रशंसक, बहुत स्त्री–पुरुषोंके आगे स्वकल्पित कुमार्गकी प्ररूपणा करनेवाले, जिन-प्रतिमाके निंदक, हीलणा करने वाले, मूर्तिपूजा–तीर्थ तथा साधु–साध्वीकी उत्थापना करने वाले होंगे ।

इसमें कही हुइ बातोंसे भी तेरापंथियोंके आचारोंको मिला लीजिये। 'कुशीलता' 'परवंचकता' 'जिनमार्गकी प्रत्यनीकता' 'देव–गुरुकी निंदकता' 'जिनतत्त्वोंको न मानना' 'आत्मप्रशंसा करना' 'स्त्री–पुरुषोंके आगे कुमार्गकी प्ररूपणा करना' 'जिनप्रतिमाकी हेलणा करना' 'मूर्तिपूजा–तीर्थ और सच्चे साधु–साध्वियोंकी उत्थापना करना' ये सारी बातें तेरापंथियोंमें पाई जातीं हैं कि नहीं ?। अब हम क्यों नही कह सकते हैं कि–तेरापंथी जैन हैं ही नहीं । यदि जैन होते तो जैनशास्त्रोंमें कहे हुए सिद्धान्तोंसे विपरीत क्यों प्ररूपणा करते ?।

अगर कोई तेरापंथी यह कहे कि–'ऊपर जो बात कही है, यह तो बाईससमुदाय वाले अर्थात् ढूंढकोंके लिये है, हमारे लिये नहीं । ' तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि–तेरापंथी भी तो ढूंढियोंमेंसे निकले हैं। और ढूंढकोंमेसे निकलकरके भी इन्होंने क्या अच्छा काम किया ? उलटे 'दया' और 'दान' का निषेध करके और अंधकारमें जा फँसे । फिर क्योंकर यह हो सकता है कि–तेरापंथीके ऊपर, उपर्युक्त पाठ नहीं लग सकता ?। अवश्य लग ही सकता है ।

तेरापंथी लोग इस बातका भी घमंड नहीं कर सकते हैं कि–'हमारेमें बडे २ धनी लोग हैं ।' क्योंकि–वग्गचूलीयाका नीचे दिया

हुआ पाठ ही यह कह रहा है कि–'उस समयमें जैनमुनियोंका उदय–पूजा–सत्कार नहीं होगा। क्योंकि जैनमार्गके उत्थापकोंकी जालमें बहुत लोग फँस जायेंगे।' देखिए पाठ यह है:—

"सामीयरूवियस्स सुयस्स हीळणे णं भविस्सइ, तया णं सुयहीळे समणाणं निग्गंथाणं णो उदय-पूआ-सक्कार सम्माणे भविस्सइ"

पापमें प्रवृत्तिकरनेवाले संसारमें मनुष्य बहुत होते हैं। और इससे ऐसे कुपंथियोंकी जालमें यदि बिचारे भोले लोग फँस भी जाँय, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

ऊपरके पाठोंसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि–'तेरापंथी जो कहते हैं कि वग्गचूलियामें कहे मुताबिक निर्ग्रंथकी पूजा होनेके लिये ही भीखमजी उत्पन्न हुए, यह बिलकुल झूठ बात है। उपर्युक्त पाठोंसे तो यही सिद्ध हुआ कि–शासनके प्रत्यनीक होंगे, ऐसा जो वग्गचूलियामें लिखा गया है, यही भीखमजी और इसके अनुयायी तेरापंथियोंके लिये लिखा गया है। क्योंकि ऊपरकी सभी बातें इन लोगोंमें पाई जाती हैं।

अब कोई तेरापंथी यह कहे कि–'वग्गचूलियाके उपर्युक्त पाठोंको हम नहीं मानेंगे। क्योंकि–यह बत्तीससूत्रोंमें नहीं हैं।' यह कहना भी बडी अज्ञानताका सूचक है। उदय उदय पूजाके लिये तो वग्गचूलियाकी साख देनेमें कोई हानी न दीख पडी और उसी वग्गचूलियाके और पाठोंके लिये तो 'बत्तीससे बाहर' का कारण दिखलाया जाय। यह भी एक प्रकारका दुराग्रह ही नहीं तो और क्या?।

और भी देखिये। जिस 'ठाणांग' सूत्रको तेरापंथी भी मानते हैं। उसी ठाणांगके दसवें ठाणेके पत्र ५८० में 'वग्गचूलिया' का नाम आता है। देखिये वह पाठ:—

"संखेवियदसाणं दस अज्झयणा प० तं जहाः–खुड्डियाविमाणपविभत्ती महल्लियाविमाणपविभत्ती अंगचूलिया वग्गचूलिया विवाहचूलिया अरुणोववाए वरुणोववाए गरुलोववाए वेलंधरोववाए वेसमणोववाए।"

जब उनके माने हुए अंगसूत्रमें भी नाम आते हुए, यदि वे न मानें, तो समझना चाहिये कि–इन लोगोंकी जबरदस्ती अल्लाउद्दीन खिलजीकी जबरदस्तीको भी हरा देनेवाली है। अस्तु, न्यायकी बातका निष्पक्षपाती पाठक तो अच्छी तरह समझ ही सकते हैं।

भीखुचरित्रकी पांचमी ढालमें लिखा है:—

" आदिनाथ आदेसरजी जिनेश्वरजगतारणगुरु।
धर्म आद्य काढी अरिहंत, इण दुसम आरामां करम काढ्याजी॥
प्रगट्या आदिजिणंद ज्युं, ए अचरिज अधिकआवंत॥१॥

छिः छिः छिः, कहाँ परमात्मा ऋषभदेव, और कहाँ इस कालका अल्पसत्त्वी भीखम। आदिनाथ भगवान्‌के साथमें, अधर्मका प्रचार करनेवाले भीखमजीकी तुलना करते हुए लेखकको लज्जा भी न आई ?। यह ऐसी ही तुलना की है, जैसी एक चक्रवर्ती या जगत् के राजाके साथमें, होलीके राजाकी तुलना की जाय। भगवान् ऋषभदेवने तो संसारमें धर्म और व्यवहारकी नींवही डाली थीं, परन्तु तुम्हारे भीखमने क्या किया ?। 'दया' 'दान' 'मूर्तिपूजा' वगैरह जैनधर्मके खास सिद्धान्तोंको उच्छेदन करनेके सिवाय किया ही क्या है ?। क्या इसको आप लोग धर्मप्रवर्तक समझते हो ?। क्या भीखुनजी उत्पन्न होनेके पहिले जैनधर्म–जैनशासन चलता ही नहीं था ?। अरे! हृदयके

निर्बल तेरापंथियो ! कभी भगवतीसूत्रका २० वाँ शतक, आठवाँ उद्देशा, पत्र १५०४ के प्रथम पृष्ठके

" जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुप्पिया णं केवइयं कालं तित्थे अणुसिज्जिस्सई ? । गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए ममं एगवीसं वाससहस्साइं तित्थे अणुसिज्जिस्सइ "

इस पाठको तुम्हारे पूज्य परमेश्वर (!) के मुखसे सुना या पढा भी है ? । ऊपरके पाठमें गौतमस्वामिने भगवान्से प्रश्न किया है कि–' हे भगवन् ! जंबुद्वीपमें, भरतक्षेत्रमें, इस अवसर्पिणीमें कितने काल पर्यन्त तीर्थ प्रवर्तेगा ? '

भगवान्ने कहा:—'जंबूद्वीपमें, भरतक्षेत्रमें, इस अवसर्पिणीमें मेरा तीर्थ इक्कीस हजार (२१०००) वर्ष पर्यन्त रहेगा । '

अब बतावें तेरापंथी, भगवान्का कथन सत्य ? कि तुम्हारा कथन सत्य ? । जब भगवान्का तीर्थ ही इक्कीसहजार वर्ष पर्यन्त चलनेका है, तो फिर कैसे कहते हो कि, भीखमजी, ऋषभदेव भगवान्की तरह धर्म प्रवर्तक थे ? ।

यहाँपर 'तीर्थ' शब्दका अधिकस्पष्टिकरण करना समुचित होगा । ' तीर्थ ' शब्दसे साधु-साध्वी-श्रावक–श्राविका ये **चतुर्विधसंघ** समझना चाहिये । क्योंकि भगवतीसूत्रके २० श० ८ उ० पत्र १५०४ में उपर्युक्त पाठसे ही संबंध रखनेवाला इस तरहका पाठ है:—

" **तित्थं भंते ! तित्थे, तित्थंकरे तित्थे ? गोयमा ! अरहा ताव णियमं तित्थंकरे, तित्थे पुण चाउवण्णाइण्णे समणसंघे तं जहाः–समणा समणीओ सावगा सावियाओ ।** "

अर्थः—गौतमस्वामीने प्रश्न किया कि–हे भगवन् ! 'तीर्थ' संघरूप तीर्थको कहते हैं, या 'तीर्थ' 'तीर्थंकर' को कहते हैं ?। भगवान्ने कहाः–अर्हन्, तीर्थंकर ही कहे जाते हैं। और 'तीर्थ' तो 'चातुर्वर्णश्रमणसंघ' कहा जाता है। चातुर्वर्णश्रमणसंघ यह हैः–साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका।

जब भगवान्का यह 'तीर्थ' इक्कीसहजार वर्ष पर्यन्त चलनेवाला है, तो फिर भीखमजीको, श्रीऋषभदेवभगवान्की तरह 'धर्मप्रवर्तक' कहना सरासर सत्यविरुद्ध नहीं, तो और क्या है ?।

यहाँ तेरापंथी यह कहते हैं कि–"'तीर्थ' नाम शासनका मालूम होता है। जो किसी समय साधु होवे, किसी समय न भी होवे।" आधारके सिवाय, आधेयको रखनेवाले, तेरापंथियोंकी बुद्धिप्रभाको धन्य है। तेरापंथियोंने, इस विज्ञानविद्याका प्रकाशकर, बडे २ सायन्सवेत्ताओंकी विद्याओंको भी पराजित कर दिया।

'**तीर्थ**' नाम है 'साधु-साध्वी–श्रावक–श्राविका' का, जो कि ऊपर कहा गया है। और 'शासन' नाम है '**प्रवचन**' का। 'साधु' आदि (तीर्थ) आधार हैं, और 'प्रवचन' आधेय है। अब विचारनेकी बात है कि–जब साधु आदि (तीर्थ) ही नहीं रहेंगे, तो फिर 'शासन' (प्रवचन) किसके आधारसे रहेगा ?। और भगवान् तो कहते हैं कि मेरा 'तीर्थ' (अर्थात् साधु–साध्वी-श्रावक–श्राविका,) इक्कीसहजार वर्ष पर्यन्त रहेगा, तो फिर तेरापंथी ऐसा कैसे कह सकते हैं कि, 'किसी समय साधु न भी होवे, और 'तीर्थ' रहे ?'। इस 'वन्ध्या पुत्र' जैसे नियमको कौन मानेगा ?। यह तो प्रत्यक्ष ही 'वदतो व्याघातः' है कि–

'तीर्थकी विद्यमानता मान करके भी 'साधु' की अविद्यमानता मानना।

और भले ही 'तीर्थ' शब्दका अर्थ 'प्रवचन–शासन' रहे, तौ भी पूर्वोक्त आधार आधेयकी युक्तिके अनुसार आपकी खिचडी नहीं पकनेवाली है। क्योंकि–प्रवचन, सिवाय चतुर्विधसंघके नहीं रह सकता। चतुर्विधसंघ के अभावमें भी अगर 'प्रवचन–शासन' रहता हो, तो महावीरदेवके शासनकी मर्यादा, इक्कीसहजार वर्ष तककी नहीं दिखला कर आगामी चौबीसीके प्रथम तीर्थंकर 'पद्म-नाभ' के शासन चलनेके पहिले समयतक कहनी चाहिये थी। जब ऐसा नहीं कहा, तब निश्चित होता है कि–चतुर्विधसंघके आधार सिवाय प्रवचन–शासन (आधेय) नहीं रह सकता है।

भीखु चरित्रकी छठवी ढालके प्रारंभमें लिखा है:—

"चरमकल्याणक हुओ घणुं, तिणरो सुणो सहु विस्तार।
सरियांरिमां स्वामिजी बिराजियां, हवे भाद्रवा मास मोजार"।१।

पहिले कहा जा चुका है कि–कल्याणक तीर्थंकरोंके होते हैं। और वे पांच होते हैं:–१ च्यवन (गर्भमें आनेका) २ जन्म, ३ दीक्षा, ४ ज्ञान (केवलज्ञान) और ५ निर्वाण (मोक्ष)। भीख-मजी जैसे 'देवानांप्रिय' के भी उनके भक्तोंने कल्याणक लिख मारे। लेकिन इसमें भी 'च्यवन' 'दीक्षा' और 'केवलज्ञान' कल्याणक तो बतलाए ही नहीं। और यकायक कूदकर चरम (अन्तिम) कल्याणकपर आ पहुँचा। अन्तिम कल्याणक उसीका होता है जिसका मोक्ष होता है। तेरापंथी लोग बतावें, भीखम-जीका क्या मोक्ष हुआ? । लेकिन 'मोक्ष हुआ' ऐसा तो मानते

नहीं, फिर चरम कल्याणक कैसा ? खैर, तेरापंथी लोग, भीखमजीका 'मोक्ष' न मानकर पांचवाँ देवलोक मानते है, यह भी सरासर झूठ है, क्योंकि छेवट्ठेसंघयणवालेकी, चतुर्थदेवलोकके ऊपर गति ही नही है, इस प्रकार जैनशास्त्र फरमाता है। तो फिर भीखमजीका पांचवां देवलोक हुआ, ऐसा भी क्योंकर माना जाय ?।

अफसोसकी बात है कि–लेखकको, तीर्थंकरोंके कल्याणकोंकी तरह भीखमके कल्याणक लिखते हुए जरासा भी भवका डर नहीं हुआ, उसके विषयमें हम लिखें ही क्या ?।

भीखमजीका जब अन्तसमय नजदीक आया, तब उसने अपने चेले चापटोंको उपदेश दिया है कि:–

"जिणतीणनेरे जिणतिणने मत मुंडजोरे, दीक्षा देजो देख देखरे ॥११॥

उपदेश तो बहुत ही अच्छा, पर इसके अनुकूल बर्ताव कौन करता है ?। लेकिन इसमें एक बात तो यह है, खुद उपदेशक ही कूएमें गिरा हुआ हो, तो फिर चेले क्या कर सकते हैं ? । जिसकी मूल उत्पत्ति ही संमूर्च्छिमपनेसे हुई है, उसकी परंपराका फिर क्या ठिकाना रह सकता है ?। और उस संमूर्च्छिम मतके साधु भी, परीक्षा करके कैसे मूँडे ?। तब कहना होगा कि–भीखमजीका यह उपदेश वचन मात्र हीमें था। और हुआ भी वैसा ही। आज कल भी हम देखते हैं कि, 'जो आया सो मूंडा' ऐसा हाल हो रहा है । अभी कालूराम नामक, तेरापंथके पूज्यके पासमें दो दो छोटे छोटे ऐसे बालक मूँडे हुए देखे जाते हैं, कि जो बिचारे साधुपना किस चीडीयाका नाम है ? यह भी समझनेकी शक्ति

नहीं रखते। अर्थात् बिलकुल छोटे, यानि दश वर्षके अन्दर २ के प्रायः हैं। अब बतावें, तेरापंथीके पूज्य कालुरामने, कैसी शिक्षा देकर उन बिचारे बालकोंको दीक्षा दी ?। बतलाईये, तुम्हारे मतोत्पादक–तुम्हारे माने हुए तीर्थंकर भीखमजीकी आज्ञाका खून हुआ, या कि नहीं ?।

आगे चलकर भीखुचरित्रकी दसवीं और ग्यारहवीं ढालमें यहाँ तक गप्पमार दी है कि–भीखमजी जब यमराजके अतिथि होनेके समयपर आए, अर्थात् मरने लगे, उस समय उनको 'अवधि-ज्ञान' हुआ था। जरासा भी है भवका डर यदि होता तो, ऐसी बेसिरकी बात लिखता ही क्यों ?। हम पूछते हैं कि–क्या इस वर्तमान कालमें किसी धुरंधर आचार्यको भी अवधिज्ञान हुआ है?। नहीं। तब फिर इस महा अधर्मका प्रचार करनेवाले भीखमको कैसे अवधिज्ञान होगया ?। और अवधिज्ञान हुआ, इसमें प्रमाण ही क्या है? और प्रथम तो उसमें शास्त्रोक्त चारित्र ही नहीं था, तो फिर अवधिज्ञानकी संभावना ही क्या हो सकती है ?। ऐसी गप्पें ठोक-नेसे क्या तेरापंथियोंकी खिचडी पक सकती है ?। कभी नहीं।

फिर ग्यारहवीं ढालमें लिखा है:—

'प्रथमपद परमेसररे त्यांरा कल्याणक पांच प्रकार।
इणविध कल्याणक त्यांरा हुआरे, इण दुसमकालमोजार'॥१०॥

अधर्मकी हद आ चुकी। और क्या कहा जाय ?। कल्याणक किसके होते हैं ? जिसके कल्याणक होते हैं, उसको गर्भमेंसे ही कौन कौन ज्ञान होते हैं, जन्मसे कौन २ अतिशय होते हैं, ये सारी बातें पहिले कह दीं गई हैं, इससे पाठक समझ गये होंगे कि–कहाँ मोक्षमें जाने वाले अर्हन् तीर्थंकर, और कहाँ दया–दान-

मूर्तिपूजा आदिको उठानेवाला भीखम। क्या कभी ऐसे अल्पज्ञ पुरुषोंके भी कल्याणक हो सकते हैं ?। भगवान्‌के कल्याणकोंके समयमें तो इंद्रादि देवता भक्ति करनेको आते हैं, कल्याणकोंके समय में नारकीके जीवोंको भी क्षणभर सुख होता है। कहिये, भीखमके कल्याणकोंके समयमें क्या हुआ ?।

अन्तमें जा कर तेरहवीं ढालमें भी जगह २ परमात्मा ऋषभदेवभगवान्‌के साथही समानता दिखलाई है। लेकिन इस विषय पर पहिले ही तेरापंथियोंकी अज्ञानताकी–अंधश्रद्धाकी फोटू खींची गई है, इस लिये यहाँ विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं है।

अगर सामान्यदृष्टिसे देखा जाय तो भी भिखमजी, उत्तम पुरुषोंकी पंक्तिमें गणना करने योग्य नहीं मालूम होता है। क्योंकि–जिस दिन वह मरा है, उस दिन बडे कष्टोंसे इसकी मृत्यु हुई। क्योंकि प्रातःकालके एक प्रहर दिन जानेके पश्चात्, सायंकालके प्रहर देढ प्रहर दिन रहने तक, जब तक कि, भीखमकी मृत्यु नहीं हो गई, तब तक इसकी जिव्हा बिलकुल बंध हो गई थी, अतएव अवाच्य वेदनाका अनुभव करना पडा था। अब यह सोचनेकी बात है कि–क्या, जो उत्तम पुरुष होते हैं, उनकी ऐसी मृत्यु कभी होती है ?। कभी नहीं। उत्तम पुरुषोंकी मृत्यु तो शुभ अध्यवसाय पूर्वक होती है।

सार––संक्षेपसे कहा जाय तो, भीखम चरित्रके पढनेसे मालूम होता है कि–भीखम बिलकुल निरक्षर भट्टाचार्य था। उसने अपनी मानता-पूजाके लिये ही अपने जीवनमें जो कुछ किया है, सो किया है। अपनी पूजा करानेके लिये ही परमात्माकी पूजाका निषेध किया है। अपनी अज्ञानताके परिणामसे ही वह सूत्रोंके अर्थोंको

न समझ सका, और मनमें आई वैसे परूपणा की । आज पर्यन्त भी उसकी परंपरामें आए हुए साधु-साध्वी मारवाड-मेवाडमें अ-धर्मका प्रचार कर रहे हैं, इसका मूल कारण भीखम ही है । यह, भीखमके उपदेशका ही परिणाम है कि, उसके साधु, साध्वियोंके झुंडोंके झुंडोंको साथमें रखकर घूमते हैं । साध्वियोंसे आहार पानी मंगवा कर माल उडाते हैं । एक एक दिनको छोड कर नियमसे उन्हीं श्रावकोंके वहाँ गोचरी जाते हैं । एक ही घरसे जी चाहे जितना माल उठाते हैं । सारे दिन भर, बल्कि रात्रिको भी साध्वियाँ और श्राविकाओंको बैठा ही रखते हैं । पडदेमें जाकर साध्वीके दिए हूए आहारको खाते हैं । भगवान्नें तो फरमाया है कि चित्रामणकी पुतली भी जिस मकानमें हो, उसमें नहीं रहना । और ये उपर्युक्त व्यवहार करते हैं । इससे स्पष्ट जाहिर हो जाता है कि-इस पंथके मूल उत्पादक भीखमका, उपदेश और आचार दोनों शास्त्र विरुद्ध थे ।

अस्तु, अब आगे तेरापंथियोंके मन्तव्य और आचारों पर कुछ विचार करें ।

मुहपत्ती.

यह लोकोक्ति बहुत ही सत्य है कि-'आकृतिर्गुणान् कथयति' मनुष्यकी आकृति ही, मनुष्यके गुणोंको कह देती है । और वह आकृति प्रायः करके मनुष्यके वेषादिपर विशेष आधार रखती है । तेरापंथी साधु-साध्वियोंको जिन्होंने देखे होंगे, वे अच्छी तरह जानते होंगे कि-उनकी आकृति कैसी होती है ? । हम

यहाँ, उनके वेषकी आलोचना करके पाठकोंका अधिक समय लेना नहीं चाहते, परन्तु इतना जरूर कहेंगे कि–अगर किसी मनुष्यको पहलेही पहल तेरापंथी साधुके देखनेका सौभाग्य मिले तो वह एक दफे तो उसकी आकृतिसे डरे नहीं, तो स्तम्भित तो जरूरही हो जाय। अस्तु, जो कुछ हो, परन्तु इतना तो जरूरही है कि–यदि वे जैनी साधु होनेका दावा रखते हैं, तो जैनी साधुके वेषकी दृष्टिसे तो वह उनका वेष अप्रामाणिक ही है।

जैन शास्त्रोंमें साधुओंको जो उपकरण रखने कहे हैं, उनकी खास मर्यादा बंधी हुई है। मरजीमें आवे, वैसे रखनेको नहीं कहे। लेकिन ठीकही है कि जो बिचारे शास्त्रोंकी मर्यादाको नहीं समझते हैं, धुरंधर आचार्योंके वचनोंपर जिनको विश्वास नहीं है, और जो लोग हमेशा अपनी कपोल कल्पनासेही काम चलाना चाहते है, वे इस प्रकार अमर्यादित वस्तुओंको रख कर कुलिंगपनेको धारण करें; तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

खैर, इसपर विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है। हम यहाँपर जो कुछ लिखना चाहते हैं, वह तेरापंथी साधु जो दिनभर मूँहपर मुहपत्ती बांध रखते हैं, इस विषयमें है। अतएव इसी विषयपर प्रथम कुछ परामर्श करें।

मुपहत्तीको मुँहपर बांधे रखना, यह व्यावहारिक दृष्टि, युक्ति और आगमप्रमाण किसीसे भी सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि देखिये।

पहिले तो यह सोचना चाहिये कि–मुहपत्ती रक्खी किस लिये जाती है ?। इसके उत्तरमें मुहपत्तीको रखनेवाले सभी

कोई स्वीकार करेंगे कि 'मुहपत्ती उपयोगसे बोलनेके लिये' रक्खी जाती है। क्योंकि साधुको जितने कार्य करनेके हैं, वे सब उपयोगसे–यतनासे करनेके हैं। जैसे दशवैकालिक सूत्रके, चतुर्थ अध्ययनकी ८ वीं गाथा, पत्र २२२ में कहा है:—

जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ ॥ ८ ॥

अर्थात्:–यतनासे चलते, यतनासे खड़े रहते, यतनासे बैठते, यतनासे सो रहते, यतनासे आहार करते तथा यतनासे बोलते हुए साधुको पापकर्मका बंध नहीं होता है।

कहनेका मतलब यह है कि, प्रत्येक कार्य साधुको यतना पूर्वक–उपयोगके साथ करनेके हैं। बात भी ठीकही है। 'परिणामसे बंध,' 'क्रियासे कर्म' और 'उपयोगसे धर्म' होता है। जिस क्रियामें उपयोग नहीं रहा, उस क्रियामें यदि जीवकी विराधना न भी हो, तौभी वह क्रिया दोषीली है। और उपयोग रखते हुए भी कथंचित् जीवविराधना हो भी जाय, तो उसको कर्म बंध नहीं होता। बस, इसी तरह उपयोगपूर्वक बोलनेके लिये हाथमें मुहपत्ती रखनेका भगवान्ने फरमाया है। लेकिन किसी सूत्रमें यह नहीं फरमाया कि–'उपयोग रखनेके लिये मुँहपर मुहपत्ती बांधेही रखना।' और ऐसा किसी चरित्रमें भी नहीं देखा जाता है कि–'किसीने मुँहपर मुहपत्ती बांधी हो। जब ऐसी ही अवस्था है, तो फिर यह कहना सत्य विरुद्ध नहीं होगा कि–मुँहपर मुहपत्ती बांधना शास्त्र और व्यवहार दोनोंकी दृष्टिसे अनुचित है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक साधुओंको छोड कर, तेरापंथी और ढूंढिये, दोनोंके साधु–साध्वी दिन भर मुहपत्ती मुँहपर बांधे रखते हैं।

लेकिन इन दोनोंकी मुहपत्तियोंमें फर्क है। स्थानकवासियोंकी मुहपत्ती चौडी अधिक रहती है, और तेरापंथियोंकी मुहपत्ती चौडी थोडी और लंबी विशेष रहती है। अब एकही सिद्धान्तको माननेवाले दोनोंमे ऐसा विभेद क्यों? क्योंकि जिन बत्तीस सूत्रोंको ढूंढिये मानते हैं, उन्हीं बत्तीस सूत्रोंको तेरापंथी भी मानते हैं। और ये दोनों, बत्तीस सूत्रोंके सिवाय भाष्य–चूर्णि–निर्युक्ति–टीका वगैरहको नहीं मानते हैं। फिर मुहपत्तीके बांधनेमें ऐसा फर्क क्यों? यह एक स्वाभाविक प्रश्न उपस्थित होता है। और अन्तसें इसमें यही परिणाम निकालना होगा कि–इन दोनोंका बांधना शास्त्र विरुद्ध है।

हम यह समझते थे कि–इन लोगोंमें जब इतनी प्रवृत्ति चल पडी है, तो शास्त्रोंके विपरीत अर्थोंद्वारा भी कुछ न कुछ उत्तर तो देते होंगे। लेकिन यह कल्पना मात्रही ठहरी। अभी कुछ दिन हुए, स्थानकबासी (ढूंढक) पूज्य श्रीलालजीके व्याख्यानमें, एक मनुष्यने प्रश्न किया कि–'महाराज! मुहपत्ती मूँहपर बांधना, बत्तीस सूत्रोंमेंसे किस सूत्रमें लिखा है?'। श्रीलालजीने व्याख्यानमें स्पष्ट कह दिया कि–'बत्तीस सूत्रोंमेंसे किसी सूत्रमें मूँहपर मुहपत्ती बांधना नहीं लिखा है।' इससे साफ जाहिर हो जाता है कि–'मुहपत्ती बांधनेवाले भी इस बातको तो स्वीकार करते ही है कि–मूँहपर मुहपत्ती बांधना शास्त्रविरुद्ध है।'

श्रीलालजीकी एक और बातसे हमें विशेष आश्चर्य हुआ। दूसरे ही दिन एक मनुष्यने श्रीलालजीसे पूछा कि–"महाराज! आपने कल फरमाया था कि–मूँहपर मुहपत्ती बांधनेका किसी सूत्रमें नहीं लिखा, तो हाथमें रखनेका लिखा है कि नहीं?" श्रीलालजीने कहाः–"हाथमें रखनेका भी नहीं लिखा"। १५७६–८

देखिये पूज्यजीकी मिश्रभाषा ? । पूछनेवाला भूल गया, नहीं तो उन्हें पूछना चाहिये था कि-'जब मूँहपर बांधनेको नहीं लिखा, हाथमें रखनेको नहीं लिखा, तो क्या फेंक देनेको लिखा है या गले बांधनेका लिखा है ? । और यह भी पूछना चाहिये था कि-'जब बांधनेको नहीं लिखा, तो फिर आप क्यों बांधते हैं । ' अस्तु !

यहाँ पर कहनेका तात्पर्य यह है कि-स्थानकवासी साधु-साध्वी यद्यपि मूँहपर मुहपत्ती बांधते हैं, परन्तु इतना जरूर मानते हैं कि-'मुहपत्ती बांधना सूत्रोंमें कहीं नहीं लिखा । '

इसी तरहसे तेरापंथी भी इस बातको तो जरूर स्वीकार करते हैं कि-'मुहपत्ती बांधना, किसी सूत्रमें नहीं कहा । ' तिसपर भी बांधते हैं, और अनेक प्रकारकी कुयुक्तियां भी लगाते हैं। लेकिन उनकी, वे कुयुक्तियां क्या हैं, मानो उनकी अज्ञानताकी, भिन्न २ स्वरूपकी तस्वीरें हैं । अर्थात् उन कुयुक्तियोंसे यह जाहिर हो जाता है कि-अपने कक्केको सच्चा मनानेके लिये अपनी बुद्धिका उन्होंने कैसा दुरुपयोग किया है? ।

हम सूत्रों और युक्तियोंसे 'मुहपत्तीको हाथमें रखना' सिद्ध करें, इसके पहिले, तेरापंथी, मूँहपर मुहपत्ती बांधनेके लिये जो कुयुक्तियाँ देते हैं, उन्हींके ऊपर कुछ विचार करें ।

तेरापंथी कहते हैं कि-'गौतमस्वामी जिस समय मृगालोढियेको देखनेके लिये पधारे, उस समय मृगादेवीके कहनेसे श्री-गौतमस्वामीने मुहपत्ती बांधी है । '

हम भी मानते हैं कि-गौतमस्वामीने, मृगादेवीके वहाँ जब पधारे, तब, उस समय दुर्गंधीके कारण मुहपत्ती बांधी । लेकिन

इससे तेरापंथियोंकी दाल कैसे गली ? । प्रियपाठक, पहिले उस अधिकारको देख लीजिये ।

जिस समय श्रीगौतमस्वामी, मृगालोढियेको देखनेके लिये पधारे, उस समय मृगादेवीने गौतमस्वामीसे कहाः—

"एहि णं तुब्भे भंते ममं अणुगच्छइ जहा णं अहं तुब्भं मियापुत्तं दारयं उवदंसेमि, तए णं से भगवं गोयमे मियंदेविं पिट्ठओ समणु गच्छइ,तए णं सा मियादेवी तं कट्ठसगडियं अणुकट्टमाणी २ जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चउप्पडेणं वत्थेणं मुहबंधमाणी भगवं गोयमं एवं व० तुब्भे विणं भंते मुहपोत्तियाए मुहं बंधह, तएणं से भगवं गोयमे मियादेवीए एवं वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुहं बंधेइ २ त्ता तएणं सा मियादेवी परंमुही भूमिघरस्स दुवारं विहाडेइ तओ णं गंधो निगच्छइ"

[विपाक सूत्र पृष्ठ—२१]

भावार्थः—हे भगवन् ! आप मेरे पीछे २ आईए, मैं आपको मृगापुत्र दिखाऊं। तब श्रीगौतमस्वामी मृगादेवीके पीछे चले । मृगादेवी, उस काष्ठके शकटको खींचती हुई जहाँ भूमिगृह था, वहाँ ले आई । और आकरके, चारपडवाले वस्त्रसे मूँह बांधा । और गौतमस्वामीसे कहाः—आप भी मुखवस्त्रिकासे मुखको बांधिये । इसके बाद गौतमस्वामीने मुखवस्त्रिकासे मुख बांधा । तदनन्तर मृगादेवीने भूमिगृहके द्वार खोले, और उसमेंसे दुर्गंध आने लगी ।

अब इस पर विचार करनेका है कि—यदि गौतमस्वामीका मूँह बंधा हुआ होता तो मृगादेवी कहती ही क्यों, कि आप मूँह बांधिए ? । यदि यह कहा जाय कि—मूँह तो बंधा हुआ था, लेकिन मृगादेवीने नाक ढांकनेको कहा। तो यह भी ठीक नहीं है।

क्यों कि, यदि 'नाक' ढांकनेको कह होता, तो उपर्युक्त पाठमें 'मुहं बंधह' ऐसा पाठ क्यों होता ?। क्या मृगादेवीके 'नासं बंधह' कहने पर भी गणधरमहाराजने 'मुहं बंधह' गुंथन कर दिया ? । गणधर-महाराजपर ऐसा कलंक लगानेका दुष्कृत्य तेरापंथियोंके सिवाय और कौन कर सकता है ? । खैर, उपर्युक्तवृत्तान्तसे तो यही सिद्ध हुआ कि-'गौतमस्वामीने पहिले मुहपत्ती बांधी नहीं थी । ' तेरापंथी लोग, जो उपर्युक्तवृत्तान्तको आगे करते हैं, यह अपनी अज्ञानताको अपने आपसे जाहिर करनेके बराबर करते हैं ।

जब मनुष्य, वास्तविक युक्तियोंसे-प्रमाणोंसे अपना बचाव नहीं कर सकता है, तब वह ' कहींकी इंट, कहींका रोडा ' मिला मिला करके आगे करता है, परन्तु वह वास्तविक युक्ति नहीं गिनी जाती है । जिस प्रमाणका मूल विषयके साथमें संबन्धही नहीं है, उसको आगे करना क्या है, मानो अपनी कमजोरीको अपने आपसे जाहिर करना है ।

तेरापंथी भाई भी, मुहपती बांधनेके विषयमें वैसीही युक्ति-योंको आगे करते हैं। देखिये, तेरापंथी साधु जीतमलजीकृत 'जैन-ज्ञानसारसंग्रह' नामक पुस्तकके ५२ वे पृष्ठमें, 'मुखवस्त्राधिकार' में लिखा है:-

" ज्ञाता अध्ययन आठमें, दुर्गंध व्यापि ताहि ।
षटराजा मुज मुख ढांकियां, ते दुर्गंधि नाके आय " ॥ ४ ॥
" ज्ञाता नवमे अध्यनमें, दुर्गंध व्यापि न्याल ।
मुख ढांक्या भाख्या तिहां, जिनरुख ने जिनपाल "॥५॥
" ज्ञाता अध्ययन बारमे, जे जीतशत्रू राय ।
मूखढांके एम आंखिओ, दुर्गंध व्यापी तांहि " ॥ ६ ॥

उपर्युक्त तीनों प्रसंगोंको पाठक देख लेवें ।

ज्ञातासूत्रके आठवें अध्ययनमें 'मल्लीकुमारी' का वृत्तान्त चला है। मल्लीकुमारीके रूप लावण्यके वृत्तान्तको सुन करके, 'जितशत्रु' वगैरह छहों राजे, उससे विवाह करनेको आए हैं। मल्लीकुमारीके पिता 'कुंभराजा' ने उन छहों राजाओंके साथमें युद्ध किया है। पश्चात् मल्लीने अपने पितासे कहा है:-'आप किसी प्रकारकी चिंता न करें, मैं उन्होंको प्रतिबोध करके ठिकाने लाऊंगी।' मल्लीकुमारीने, अपने पितासे कह करके एक धातुकी रमणीय मूर्ति ऐसी बनवाई कि, जिसमें अत्यन्त दुर्गंधी वाले पदार्थ भरे। तदनन्तर उन छहों राजाओंको, उस मूर्तिके पास बैठाए, और उस पुतलीका ढकना खोला। उस समय

"तएणं ते जियसत्तूपामोक्खा तेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं २ उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेइ पिहेत्ता परंमुहा चिट्ठंति।" (पृष्ठ ८३८)

अर्थः-वे जितशत्रु वगैरह छहों राजे, उस अशुभगंधसे अभिभूत होते हुए और अपने अपने उत्तरासन (दुपट्टे) से मूँह ढांक करके पराङ्मुख हो बैठे।

इसी प्रकारसे दुर्गंधके कारण ज्ञाताके नवमें अध्ययनमें जिनरिख और जिनपाल ने मूँह ढांका है, और बारहवें अध्ययनमें दुर्गंधीके कारणसे ही जितशत्रु ने मूँह ढांका है।

अब पाठक विचार कर सकते हैं कि-तेरापंथियोंकी ये युक्तियां प्रसंगोचित हैं?। जितशत्रु आदि छहों राजे, जिनरिख जिनपाल, इत्यादि ये सब गृहस्थ थे। इन्होंने दुर्गंधी आनेके कारण मूँहपर कपड़ा रक्खा है। मुहपत्तीका तो इन प्रसंगोंमें नामोनिशान भी नहीं है। और यहांपर मुहपत्तीका प्रसंग भी नहीं है। क्या वे

उन प्रसंगोंमें दुर्गंधीके सामने सामायिक या पौषध करनेको बैठे थे, जो तेरापंथियोंके मन्तव्यानुसार मुहपत्ती बांधें ? ।

अगर तेरापंथी, मूँह ढकनेके प्रसंगोंको ही आगे करके अपना बचाव करना चाहते हैं, तो उनको, इतनी दूर २ तक पहुँचनेकी आवश्यकता ही क्या थी ? । यों ही कह देते कि–"जब भंगी लोग, शहरकी टट्टियोंको साफ करके, गाडी भरके जाते हैं, तब उसके पास होकर आने जाने वाले सेंकडों लोग मूँहपर कपडा रख करके जाते हैं, इससे सिद्ध हुआ कि–मूँहपर मुहपत्ती बांधनी चाहिये । "

बस छुट्टीपाई । कैसी उत्तम युक्ति ? ऐसी युक्तियोंको आगे करना, यह भी बुद्धिमत्ताका ही काम है ! ।

इसी 'मुख'वस्त्राधिकार' में आगे चलकरके 'नाक' को 'मूँह' कहलानेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया गया है । परन्तु यह सब प्रयत्न व्यर्थ ही है । क्योंकि इससे सिद्धि क्या होनेकी है ? ।

नाकको 'मूँह' कहते हों, ऐसा हमने कहीं नहीं सुना, न किसी कोशमें भी देखा । देखिये श्रीहेमचन्द्राचार्यने, अपने 'अभिधानचिन्तामणि' कोशके तीसरे काण्डमें पृष्ठ २१३ भी कहा है:—

" तुण्डमास्यं मुखं वक्त्रं लपनं वदनानने " ॥ २३६ ॥

इसमें 'नाक' का तो नाम ही नहीं है। टीकामें भी आचार्यवर्य लिखते हैं:–' मुखे दन्तालयस्तिरं घनं चरं घनोत्तमम् '। दांतके घरको मुख कहते हैं । अब तेरापंथी नाकको कैसे 'मूँह' कहते हैं ? । अच्छा, थोडी देरके लिये हमने मान भी लिया कि–'नाक' को मूँह कहते हैं, लेकिन इससे हुआ क्या ? । दुर्गंधीके कारण 'नाक' ढकनेके प्रसंगसे, मुहपत्ती बांधे रखना तो किसी तरह सिद्ध

होगा ही नहीं ? । अच्छा, तो साथ साथ तेरापंथी यह भी तो मानते होंगे न, कि जैसे 'नाक' को 'मुँह' कहा जाता है, वैसे 'आंख' और 'कान' को भी मुँह कहना चाहिये । और यदि ऐसे मानोगे तब तो, सुनानेके समय 'मुखसे सुनो' और दिखलानेके समय 'मुखसे देखो' ऐसा ही कहना पडेगा । यह भी बडी अजब गतिकी फिलोसॉफी निकली । तेरापंथियोंकी बुद्धिमानी को, एक-बार नहीं, सहस्रवार धन्यवाद ! ।

अच्छा, तेरापंथियोंकी उपर्युक्त युक्तियां भी 'शशश्रृंग' जैसी ही प्रतीत हुई, अब आगेकी युक्तियोंको देखिये ।

तेरापंथियोंके मुखवस्त्राधिकारकी १९–२० कडीमें कहा है:–

"कर राखे वस्त्रिका, तसु तिखो उपयोग ।
तोपण अटकावत नहिं, तसु मुख खंच प्रयोग" ॥ १९ ॥
"तिखो नहीं अटकाव तसु, जतना काजस जोय ।
मुख बांधे मुखवस्त्रिका, तोपण दोष न कोय" ॥ २० ॥

इन दोनों कडियोंमें तेरापंथी क्या स्वीकार करते हैं, इसको पाठक जरा देखें । जरा तेरापंथी कहते हैं कि–'हाथमें मुहपत्ती रक्खे, उसमें भी कोई अटकाव नहीं है, और मूंहपर बांधे, इसमें भी दोष नहीं' । कैसी मिश्रभाषा ? । यह तो ऐसा ही कथन हुआ, जैसे 'मरीचि' ने कपिलसे कहा था:–'काविला इत्थं पि इहयं पि' अर्थात् 'हे कपिल ! मेरेमें भी धर्म है, और उनमें (ऋषभदेवमें) भी धर्म है ।' इसी तरहसे तेरापंथी भी कहते हैं 'हम बांधते हैं, उसमें भी कोई दोष नहीं, और जो हाथमें रख करके उपयोग रखते हैं, उसमें भी कोई दोष नहीं ।' लेकिन तेरापंथियोंने इस बातका कभी विचार किया है कि मरीचीको, मिश्रभाषणसे कितना भव भ्रमण

करना पड़ा ? मुहपत्तीको हाथमें रखने वाले तो शास्त्रानुकूल रखते हैं, परन्तु मूँहपर बांधने वाले-आप लोग शास्त्रसे प्रतिकूल करते हो, इसका भी तो कुछ विचार करो।

हम पहले ही कह गये हैं कि—भगवान्ने उपयोग पूर्वक बोलनेको कहा है, और जब मुहपत्तीको बांध ही दी, तो फिर उपयोग किस बातका रहा ? दिनभर बडबड करते ही रहो, क्या तकलीफ होती है ?। तकलीफ पडती है उपयोग रखनेमें, जिसमें कि धर्म कहा है। और मुहपत्ती बांधनेवालोंको तो उपयोग रखनेकी आवश्यकता ही नहीं रही। तो फिर उसमें धर्मही कैसे कहा जाय ?।

तेरापंथी कहते हैं:—

" सूठ तणो जे गांठीओ गणिदेवाद्धि संवाद।
भोगवणो भूली गया संध्या आयो याद " ॥ २३ ॥
" जाण्युं बुद्धि हिणी पडी लिख्या सूत्र सुखराश।
वीरनिरवाण गया पछी नवसय ऐसीवास" ॥ २४ ॥

बिलकुल ही झूठी बात है। श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण सूंठका गांठिया भूले ही नहीं। तो फिर इस निमित्तसे ' पुस्तकारूढ किया ' ऐसा कहना सरासर अपनी अज्ञानताको प्रकट करना ही है। सूंठका गांठिया कानमें रह गया था श्रीवज्रस्वामिको। देखिये श्री वज्रस्वामि—प्रबन्धमें लिखा है:——

" श्लेष्मरोगापनोदायानाययद्विश्वभेषजम्।
उपयुक्तावशेषं च श्रवणे धारयत्ततः ॥ १६८ ॥
प्रत्युपेक्षणकाले तत्तत्रस्थं चापराह्णिके।
मुखवस्त्रिकयास्त्रस्यत्कर्णयोः प्रतिलेखने ॥ १६९ ॥
दध्यावायुरहो क्षीणं विस्मृतिर्यन्ममोदिता। "

(प्रभावक चरित्र पृष्ठ ११)

अर्थात्—श्रीवज्रस्वामीने श्लेष्मरोगके कारणसे सूंठ मंगवाई। उसको उपयोगमें लेते हुए जितनी बची, उतनी कानमें रखली। जब सायंकालकी प्रतिलेखना (पडिलेहणा) करने लगे, उस समय मुखवस्त्रिकासे कानोंकी पडिलेहण करते हुए सूंठका गांठिया नीचे गिर पडा। अतएव वज्रस्वामीने विचार किया कि—मुझको ऐसी विस्मृति उदय आई, इससे मालूम होता है कि—अब मेरी आयुष्य क्षीण है।

प्रियपाठक, है यहाँपर पुस्तकारूढका नामोनिशान भी ?। कहीं की बातको, कहीं घुसा करके अपनी इष्टसिद्धि करनेवाले तेरापंथियोंके प्रपंचोंको देखने चाहियें। ऐसे प्रपंचोंमें, सिवाय भोले—अज्ञात लोगोंके और कोई भी नहीं फँस सकता, यह बात भी तेरापंथियोंको अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये।

तेरापंथियोंका यह कहना भी ठीक नहीं समझा जाता है कि—'हमसे उपयोग नहीं रहता, इस लिये बांधते हैं।' क्योंकि—सिर्फ बोलनेके समयमें, मूँहपर मुहपत्ती रखनेका उपयोग नहीं रख सकते हैं, तो फिर पांचों महाव्रतोंके पालनेमें कैसे उपयोग रख सकते होंगे ?। यह एक विचारनेकी बात है। एवं जैसे मुहपत्ती-का उपयोग नहीं रख सकते, वैसे ओघेका (रजोहरणका) भी उपयोग क्या रहता होगा ?। कभी चलते फिरते जरूर बगलमें रखना भूल जाते होंगे। और इस न्यायसे तो ओघेको भी कहीं न कहीं बांध करके ही फिरना चाहिये।

प्रियपाठक! तेरापंथियोंकी चतुराईको देखिये। एक ओर तो तेरापंथी कहते हैं:—" जो लोग यह कहते हैं कि—इस कालमें जैसा चाहिये वैसा चारित्र नहीं पल सकता, यह उनकी भूल है।" जैसे भीखुचरित्रकी तीसरी ढालमें लिखा है:—

"बलसंघयण हीणाकरीरे, पूरो न पाले आचार ।
आगुच जिनजी इम भाषियोरे, इम कहेसे भेषधार ॥ ६ ॥"

और दूसरी ओर स्वयं मुहपत्तीको हाथमें रख करके उपयोग पूर्वक बोलनेकी भी शक्ति नहीं रखते हैं। अब कहाँ रही जैसा चाहिये वैसे चारित्र पालनेकी शक्ति ?। बिचारे, उपयोगसे बोलनेकी भी शक्ति रखते नहीं (क्योंकि वे स्वयं स्वीकार करते हैं) तो फिर और बातोंमें क्या उपयोग रख सकते होंगे ? । अस्तु ।

तेरापंथी भाई, अपनी बातको स्थापन करनेके लिये एक और दलीलकोभी पेश करते हैं । वे करते हैं कि-" मुहपत्तीको हाथमें रखनेवाले भी व्याख्यानके समयमें मूँहपर बांधते हैं । जैसे वे एक प्रहरतक बांधते हैं, वैसे हम दिनभर बांधते हैं । "

ठीक है, लेकिन एक बात जरा बुद्धिसे विचारनेकी है । अव्वल तो व्याख्यानमें मुहपत्ती बांधनेका रिवाज, अब उतना नहीं है, जितना पहिले किसी जमानेमें था । लेकिन वह क्यों था ? इसका कारण भी तो खोजना चाहिये । इसका कारण यह थाः—

जिस समयमें कागज नहीं बनते थे, उस समयमें शास्त्र ताडपत्रोंके ऊपर लिखे जाते थे । जिन्होंने ताडपत्रोंकी प्रतियाँ देखी होंगी, उनको मालूम होगा कि-ताडपत्र लंबे तो हाथ हाथ-डेढ डेढ हाथके होते थे, और चौडे तीन या चार आंगुलकी पट्टीके । जब उन ताडपत्रों पर लिखे हुए शास्त्र व्याख्यानमें वांचे जाते थे, तब व्याख्यान करनेवालेको अपने दोनों हाथोंसे उन लंबे पत्रोंको पकडना पडता था । जब दोनों हाथ पुस्तकके ही पकडनेमें रहे, तब मुहपत्तीको कहाँ रखना ? । और विना मुहपत्तीके बोलें, तो भी जीवोंकी विराधना और ज्ञानकी आशातना हो । बस, इसी

कारणसे व्याख्यानके समयमें मुहपत्ती बांधते थे। और वह रिवाज, कारणके नष्ट होने पर भी कहीं कहीं अभी तक चला आता है। लेकिन व्याख्यानके समयमें बांधने वाले भी यह कभी नहीं सिद्ध कर सकते हैं कि—यह शास्त्रानुकूल प्रवृत्ति है। तेरापंथियोंका यह कहना तो सरासर झूठ ही है कि—'व्याख्यानमें एकप्रहर बांधते हैं'। एक प्रहर कभी नहीं बांधते। सारा व्याख्यान ही घंटे डेढ घंटेका होता है, उसमें भी आधा व्याख्यान होनेके बाद मुहपत्तीकी पडिलेहणा करते हैं। उतने समयमें जीवोत्पत्ति भी नहीं होती, जिसका कारण दिखलाकर तेरापंथी दिन भर बांधना स्थापन करते हैं।

दिनभर मुहपत्तीके बांधे रखनेसे वह बिलकुल थूंकसे गीली (आली) हो जाती है, और इससे उसमें संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति भी होती है। तेरापंथी कहते हैं कि—मूँहसे निकले हुए कफमें जीवोत्पत्ति नहीं होती, यह भी बिलकुल शास्त्रविरुद्ध ही कथन है। क्योंकि—पन्नवणासूत्रके, प्रथमपद,—पत्र ५५ में इस प्रकारका पाठ है:—

"कहि णं भंते! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति? गोयमा! अंतो मणुस्सखेत्ते पणयालीसाए जोयणसयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पन्नाए अंतरदीवएसु गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा पूएसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा विगयजीवकलेवरेसु वा इत्थीपुरिससंजोएसु वा नगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइएसु ठाणेसु एत्थ णं संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति"

अर्थः—हे भगवन् ! वे संमूर्च्छिम मनुष्य कहाँ उत्पन्न होते हैं ? । हे गौतम ! ४५ लाख योजन मनुष्यक्षेत्रमें, ढाईद्वीपमें, पनरह कर्मभूमिमें, तीस अकर्मभूमिमें, ५६ अंतरद्वीपमें, गर्भज-मनुष्योंकी विष्ठामें १, पिशाबमें २, कफमें ३, श्लेष्ममें ४, वमनमें ५, पित्तमें ६, राधमें ७, लोहीमें ८, वीर्यमें ९, शुष्कपुद्गलके परिवर्तनमें, १०, जीवरहित कलेवरमें ११, स्त्री—पुरुषके रुधिर-वीर्यके संयोगमें १२, खाल—गटरमें १३, और समस्त अशुचि पदार्थोंमें १४, संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं ।

अब, बतावें तेरापंथी, भगवान्‌के वचनानुसार तुम्हारी मुहपत्तियोंमें, जो कि दिनभर मूँहपर बांधे रखनेसे आली हो जाती हैं, संमूर्च्छिम जीवोंका उत्पन्न होना सिद्ध हुआ कि नहीं ? । अब वे जीव, जो मरेंगे, उत्पन्न होंगे, मरेंगे उत्पन्न होंगे, उसका पाप आपको लगेगा, या उन मुहपत्तियोंको ? ।

यहाँपर तेरापंथी लोग, एक यह युक्ति आगे करते हैं कि, " जैसे किसीको फोडा हुआ हो, उसपर पट्टीके बांधनेसे उस पट्टीमें जैसे जीवोत्पत्ति नहीं होती, वैसे मूँहपर मुहपत्ती बांधनेसे उसमें भी जीवोत्पत्ति नहीं होती । " लेकिन यह युक्ति ठीक नहीं है । फोडेके ऊपर बांधी हुई पट्टीमें जीवोत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वह पट्टी कसकरके बांधनेसे शरीरकी गर्मीका असर पहुँचता है । परन्तु आप लोग, मुहपत्ती, मूँहपर कसकरके नहीं बांधते । अतएव खुली रहती है । इससे उष्णताकी असर उसपर नहीं होती । और इसीसे मुहपत्तीमें लगे हुए थूंक-कफमें अवश्य जीवोत्पत्ति होती है ।

हम समझते हैं कि—शायद ऐसे अशुचिपदार्थोंमें अशुचिपना नहीं माननेके कारणहीसे तेरापंथी लोग, स्त्रियोंके रजस्वला

धर्मको नहीं मानते हैं। हमारे ही शास्त्रोंमें नहीं, समस्त धर्मके शास्त्रोंमें यह प्रतिपादित किया गया है कि–शरीरमें किसी जगह भी अशुचिपदार्थ लग जाय, तो उसको साफ करके ही कोईभी कार्य करो। लेकिन तेरापंथियोंको इस नियमसे कुछ भी ताल्लुक नहीं है। उनकी साध्विएं–श्राविकाएं रजस्वला धर्ममें आनेपर भी पढना–लिखना और घरका सब कार्य करेंगीं। बतलाईये, बुद्धिके निर्मल रहनेका है एकभी कारण ?। जब रजस्वला धर्म तकको नहीं मानते हैं, तो फिर थूंकसे भरी हुई मुहपत्ती मूँहपर बांधे रक्खें, तो इसमें आश्चर्यकी बातही क्या है ?।

तेरापंथी, एक इस युक्तिको भी पेश करते हैं कि–“ खुले मूँहसे बोलनेसे वायुकायके जीवोंकी हिंसा होती है। ” लेकिन यह उन लोगोंकी भूल है। अव्वल तो तेरापंथी इस बातको समझही नहीं सके हैं कि–‘ खुले मूँहसे क्यों नहीं बोलना चाहिये ?। ’ खुले मूँहसे नहीं बोलनेका खास कारण तो यही है कि– ‘ संपातिम जीवोंकी रक्षा हो, वायुकायकी रक्षा के लिये नहीं। क्योंकि–भाषावर्गणाके पुद्गल चारस्पर्शी होनेसे, आठ स्पर्शी वायुकायके जीव नहीं हणे जाते हैं। तिसपर भी अगर यह मानलें कि– ‘भाषावर्गणाके पुद्गलोंके पीछे निकलती हुई हवासे वायुकायके जीव हणे जाते हैं, ’ तो भी यह तो कभी होही नहीं सकता कि– मूँहपर मुहपत्ती बांधनेसे उनका बचाव हो। मूँहकी हवा तो किसी न किसी द्वारा निकलेगी ही। चाहे नाक द्वारा निकले, चाहे मूँह-द्वारा। यदि मूँहकी हवा बाहर न निकलने पावे, और अन्दरकी अन्दर रूंधी जाय, तो मनुष्य बचे ही नहीं। लेकिन यह तो तेरापंथियोंसे भी नहीं होता; तो फिर मुहपत्ती बांधकर वायुकायके

जीव बचानेका घमंड रखना; है, यह बिलकुल झूठा नहीं तो और क्या ? ।

मुखवस्त्रिकाधिकारके अन्तमें भगवतीसूत्र और दशवैकालिकका प्रमाण देकर यह दिखलानेकी कोशिशकी है कि–'खुले मूँहसे नहीं बोलना चाहिये।' लेकिन इस बातको अस्वीकारही कौन करता है ? । बेशक, खुले मूँहसे नहीं बोलना चाहिये। लेकिन बांधना भी तो नहीं चाहिये । बांधनेके विषयमें किसी सूत्रके प्रमाण दिये होते तो अच्छा होता । खैर, तेरापंथी बांधनेके विषयमें एकभी प्रमाण नहीं दे सकते हैं, परन्तु हम नहीं बांधनेके विषयमें अभी और शास्त्रीय प्रमाण देते हैं ।

मुखवस्त्रिकाके, मुहपत्ती, मुहपोतिया, हत्थग, मुहणंतग ये सब पर्यायवाची शब्द हैं । इसी मुखवस्त्रिकाके बांधनेके विषयमें आज तक हमें एक भी प्रमाण न मिला । न कोई मुहपत्तीके बांधनेवाले भी दिखा सकते हैं, जो बात ऊपर के वृत्तान्तसे पाठकोंके समझमें आभी गई होगी ।

वास्तवमें देखा जाय तो मुहपत्ती बांधना किसी प्रकारसे सिद्ध हो ही नहीं सकता है । क्योंकि–एक स्थूल बातको देखिये । जिस समय, प्रतिक्रमण या सामायिक करते हैं, उस समय काउस्सग करनेके पहिले, "अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं," इत्यादि पाठ कह करके इस प्रकारके आगार रखते हैं कि–"यदि काउस्सगमें हमें श्वासोच्छ्वास आवें, खांसी आवे, छींक आवे, बगासा आवे तो हम अपने हाथसे मूँहको ढांकें, इससे हमारा काउस्सग भांगे नहीं ।"

अब विचारनेकी बात है कि–यदि मूँहपर मुहपत्ती बांधी होती तो, इस प्रकारके आगारोंके रखनेकी आवश्यकता ही क्या थी ?। **इससे सिद्ध होता है कि–मुहपत्ती खास हाथमें ही रखनेकी है ।**

ऐसे ही एक और पाठको भी देखिये। आचारांगसूत्र, द्वितीय श्रुतस्कंधके दूसरे अध्ययनके तीसरे उद्देशेके, पृष्ठ २४७ में इस प्रकारका पाठ है:—

"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा ऊससमाणे वा णीससमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वातणिसग्गे वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपिहित्ता तओ संजयामेव ऊससेज्ज वा जाव वायणिसग्गं वा करेज्जा।"

अर्थात्:—साधु, साध्वी, संथारा करनेके बाद श्वासोच्छ्वास लेते हुए, खांसी लेते हुए, छींकते हुए, बगासा खाते हुए, उद्गार करते हुए, अथवा वातोत्सर्ग करते हुए, मुख और अधिष्ठानको अपने हाथसे ढांककर, वे कार्य यतना पूर्वक करे।

इससे भी स्पष्ट जाहिर होता है कि—मुहपत्ती, बांधनेके लिये नहीं है। क्योंकि—देखिये, उपर्युक्त प्रसंगपर यदि मुहपत्ती बांधी हुई होती, तो हाथसे मूँह ढकनेको कहते ही क्यों !।

अच्छा, एक और प्रसंगको भी देखिये। जिस समय हरिकेशी मुनि, यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंके पास गये, उस समय, ब्राह्मण आपको देखकर इस प्रकार निंदायुक्त वचन बोले:—

"कयरे आगच्छई दित्तरूवे काले विगराले पोकनासे।
उमचेलए पसुपिसायभूए संकरदूसं परिहरिय कंठे" ॥६॥
(उत्तराध्ययन, अ—१२, पृष्ठ-३५१)

---

१ राजकोटके प्रीन्टींग प्रेसमें छपा, जिसका भाषान्तर प्रो० रवजी देवराजादिने किया है।

अर्थः—अरे ! यह बीभत्सरूपवाला, काला, विकराल, बैठी नाकवाला, खराब वस्त्रोंवाला, पिशाचरूप तथा कंठमें सडे हुए वस्त्रोंको पहन करके कौन आता है ? ।

ब्राह्मणोंके इस कथनसे हरिकेशीमुनिके वेशका परिचय हो जाता है । यद्यपि ये वचन ब्राह्मणोंने निंदाप्रयुक्त कहे हैं, परन्तु इससे यह तात्पर्य जरूर निकाल सकते हैं कि—' विकराल ' शब्दके कहनेसे हरिकेशी मुनिके मुखपर मुहपत्ती बांधी हुई नहीं थी । क्योंकि—संसारके व्यवहारमें यह देखा जाता है कि—'विकराल शब्दका लोग उसी जगह व्यवहार करते हैं कि जहाँ लंबे—मोटे दांत देखे जाँय । ' अनेकार्थसंग्रह' के १२३२ वें श्लोकमें भी 'करालो रौद्रतुङ्गोरुव्रणतैलेषु दन्तुरे ' कह करके कराल (विकराल) शब्दका 'दन्तुर' ऐसा दूसरा नाम ही दिया है । और यदि हरिकेशी मुनिके मुख पर मुहपत्ती बांधी हुई होती, तो न उनके दांत देखलाई देते और न 'विकराल' शब्द ही कहते ।

इसी उत्तराध्ययनसूत्रके २६ अध्ययनकी २३ वीं गाथाको भी देखिये । यहाँ पर प्रतिलेखनाकी विधिका अधिकार चला है । इसमें कहा हैः—

" मुहपत्तियं पडिलेहित्ता पडिलेहेज्ज गुच्छयं ।
गुच्छगलाइयंगुलिए वत्थाइं पडिलेहए ॥ " २३ ॥

[पृष्ठ ७७२]

अर्थात्—मुहपत्तीकी पडिलेहणा करके गुच्छे (पातरोंके बांधनेका ऊनी वस्त्र) की पडिलेहणा करे । फिर अंगुलीमें गुच्छेको रखकरके, झोलीके ऊपर रखनेके पल्लोंकी पडिलेहणा करे ।

यहाँपर भी एक विचारनेकी बात है कि-मुहपत्तीकी पडिलेहणाके समय यह नहीं कहा कि-'खोल करके पडिलेहण करे' अथवा 'पाडिलेहणकरके बांध ले।' एवं ऐसा भी कहीं नहीं कहा कि-'मुहपत्तीकी पाडिलेहणा करनेके समय दूसरी मुहपत्ती मूँहपर बांधले।' दो मुहपतियोंके रखनेकाही निषेध है तो फिर बांधनेका और खोलनेका कहें ही कैसे ? अस्तु,

इसी प्रकारसे भगवतीसूत्रके, दूसरे शतकके पांचवे उद्देशे पत्र–१९० में श्रीगौतमस्वामीके अधिकारमें भी लिखा है कि:—

"तएणं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए ज्झाणं ज्झियाए, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहेइत्ता भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहेइत्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जइत्ता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहेइत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, णमंसइ, वंदइत्ता णमंसइत्ता एवं वयासी"

अर्थः—तब श्रीगौतमस्वामी, छट्ठके पारणेके दिन, प्रथम पोरिसीमें सज्झाय करते हैं, द्वितीय पोरिसीमें ध्यान करते हैं अर्थात् अर्थ विचरते हैं और तीसरी पोरिसीमें शनैः शनैः, मनकी अचपलतासे, असंभ्रान्त अर्थात् यतनापूर्वक मुहपत्ती की पडिलेहणा करते हैं, पडिलेहणा करके, भाजन (पात्र) तथा वस्त्र पडिलेहते हैं, उनकी पडिलेहणा करके भाजनोंको प्रमार्जते हैं, प्रमार्जन करके भाजनोंको ग्रहण करते हैं, और ग्रहण करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हैं, वहाँ आते हैं। आकरके श्रमण भगवान् महावीरस्वामीको वंदणा–नमस्कार करते हैं। वंदणा–नमस्कार करके इस प्रकार कहते हैं।

उपर्युक्त पाठमेंभी यह देखनेका है कि—मुहपत्तीकी पडिलेहणा करनेको कहा, परन्तु साथ साथ यह नहीं कहा कि—'मुहपत्ती छोड करके पडिलेहणा करे, और पडिलेहणा करके फिर बांधे।'

इससे भी हाथमें रखना ही सिद्ध होता है।

हम पहले कह चुके हैं कि—मुहपत्ती, कई नामोंसे शास्त्रोंमें उल्लिखित है। जैसे मुहपत्ती, मुहपोत्तिया वगैरह। वैसे ही मुहपत्ती का 'हत्थग' नाम भी है। जैसे दशवैकालिकसूत्रके पांचवें अध्ययनकी ८३ गाथामें कहा है:—

"अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नंमि संवुडं।
हत्थगं संपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजए"॥८३॥ पृष्ठ २०९।

अर्थात्—बुद्धिमान् संयत (साधु), गृहस्थकी आज्ञा लेकरके, ढके हुए स्थानमें उपयोग पूर्वक, हत्थगं यानि मुहपत्तीसे (हस्तादि अवयवोंको) पूंजकरके उसी स्थानमें आहार करे।

यहाँ पर 'हत्थग' शब्द मुहपत्तीका पर्यायवाची है। और उसका अर्थ भी 'हाथमें रही हुई' ऐसा स्पष्ट है। इससे भी जाहिर होता है कि—मुहपत्ती हाथमें ही रखनेकी है—मूँहपर बांध रखनेकी नहीं।

ऊपरके पाठमें 'हत्थग' यानि मुहपत्तीकी पडिलेहणा, आहार करनेके समयकी कही हुई है, उसी प्रकारसे 'ज्ञाता' सूत्रके सोलहवें अध्ययनमें धर्मरुचि अनगारकी कथा चली है। धर्मरुचि अनगार 'नागश्री' नामक ब्राह्मणीके वहाँसे कटुतुंबका शाक ले आए हैं। इनके गुरु श्रीधर्मघोषने कहा है कि—'इसके खानेसे प्राणकी हानि होगी, इस लिये शुद्ध स्थानमें जाकरके परठवणा चाहिये। धर्मरुचि, परवठणेके लिये चले। वहाँ जानेके बाद

उस शाकमेंसे एक बिंदु निर्जीव भूमिमें गिराया, तो उसपर, हजारों कीडिएं इकट्ठीं हो गईं, और मरभी गईं। इसको देखकर धर्मरुचिने विचार किया कि–'यदि इस शाकको परठव दूँगा तो बहुत जीवोंकी हिंसा होगी, इस लिये मैं ही इसको खा जाऊं' बस।

"एवं संपेहेइ २ त्ता मुहपत्तियं पडिलेहइ २ त्ता सिसोवरि कायं पमज्जेइ २ त्ता तं सालइयं तित्तकडुयं बहुनेहावगाढं बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्ठंसि पक्खिवइ।"

अर्थात्–ऐसा विचार करके मुहपत्तीकी पडिलेहणा की। पडिलेहणा करके मस्तक सहित काया पडिलेही। प्रमार्जन करके वह बहुत तेलसे पकाया हुआ कटुतुंबेका शाक, धर्मरुचिने, जैसे बिलमें सर्प प्रवेश करे, वैसे अपने कोठेमें डाल दिया।" (पृष्ठ ११६२)

यहाँ कहनेका तात्पर्य यह है कि--आहार करनेके समय जैसे मुहपत्तिकी पडिलेहणा धर्मरुचिने, की है, वैसे दशवैकालिकके उपर्युक्त पाठमें में भी 'हत्थगं' शब्दसे 'मुहपत्ती' लेनेकी है, न कि दूसरी कोई चीज।

चौदपूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामी, कायोत्सर्ग (काउस्सग) किस तरह करना, इस विषयमें आवश्यकनिर्युक्तिके पांचवें अध्ययनमें लिखते हैं:—

"चउरंगुल, मुहपोत्ती उज्जुए डब्बहत्थरयहरणं।
वोसट्ठचत्तदेहो काउस्सग्गं करिज्जाहि॥ ४९॥

अर्थात्–दोनों पैरोंके बीचमें चार अंगुलका अन्तर रख कर खडे रहेना, मुहपत्ती दाहिने हाथमें, और ओघा बाये हाथमें रखना, फिर अपने शरीरको वोसराकर कायोत्सर्ग करे।

अब देखिये, यहाँपर भी मुहपत्ती हाथमें रखना ही कहा।

कितने प्रमाण दें। ऐसे अनेकों प्रमाण दे सकते हैं, जिससे कि मुहपत्तीका बांधना न सिद्ध हो। जैनसूत्रोंको पढ जाईये, और बडेबडे धुरंधर आचार्योंके बनाए हुए ग्रन्थोंको देख जाईये। एकभी स्थान ऐसा नहीं मिलेगा कि–मुहपत्ती बांधना सिद्ध हो। जैन शास्त्रोंमें ही क्यों, हिन्दु धर्मशास्त्रोंमें भी जहाँ जहाँ जैनसाधुओंका वर्णन आया है, वहाँ भी किसी जगह यह नहीं लिखा कि–जैनके साधु मूँहबंधे होते हैं। देखिये, शिवपुराणके २१ वें अध्यायमें लिखा है:—

" मुंडं मलिनवस्त्रं च कुंडीपात्रसमन्वितम्।
दधानं पुञ्जिकां हस्ते चालयन्तं पदेपदे "॥ १ ॥
" वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षिप्यमाणं मुखे सदा।
धर्मेति व्याहरन्तं तं नमस्कृत्य स्थितं हरेः " ॥२॥

अर्थः–मुंडे हुए मस्तकवाले, मलिनवस्त्रवाले, काष्ठके पात्र करके युक्त, हाथमें रजोहरणको धारण करनेवाले, पदपदको देखकर चलते हुए, तथा वस्त्रयुक्त हाथवाले, वार २ वह वस्त्रमुखपर रख कर 'धर्मलाभ' इस प्रकारसे बोलते हुए, ऐसे हरिके पास रहे हुए साधुको नमस्कार करके।

उपर्युक्त वृत्तान्तसे जैनसाधुका वेष स्पष्ट जाहिर होता है। यदि मूँह बंधा हुआ होता, तो 'वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं' कहते ही क्यों? यों ही कहते कि–मूँहबंधा, जैसा कि आजकल ढूंढक–तेरापंथी साधुओंको देखकर लोग कहते हैं।

इत्यादि अनेकों प्रमाणोंके मिलने पर भी दुराग्रही लोग अपने दुराग्रहको न छोडें, तो इसमें दूसरोंका उपाय नहीं है। वास्तवमें देखा जाय तो मुहपत्ती बांधना किसी प्रकारसे सिद्ध नहीं हो सकता। बल्कि जैनशास्त्रोंसे कुलिंगपना ही है। और यह कुलिंगपना

मूर्तिपूजाका निषेध करनेवाले लोंकेसेभी नहीं शुरु हुआ था। लोंकेके मत निकालनेके करीब दोसो वर्ष पश्चात् लवजीने यह कुलिंगपना धारण किया। यह बात हम ही नहीं कहते, किन्तु ढूंढकसाध्वी पार्वती, अपनी बनाई हुई 'ज्ञानदीपिका' नामक पुस्तकके १३ वें पृष्ठमें भी लिखती है कि:—

"इस रीतीसे पूर्वक यति लोकोंकी क्रिया हीन हो रही थी, सोई पूर्वक यतियोंकी लवजी नाम यतिने क्रिया हीन देखकर अनुमान १७२० के सालमें अपने गुरुको कहने लगे कि—तुम शास्त्रोंके अनुसार आचार क्यों नहीं पालते? | तब गुरुजी बोले कि—पञ्चम कालमें शास्त्रोक्त संपूर्ण क्रिया नहीं हो सकती, तब लवजी बोले कि—तुम भ्रष्टाचारी हो, मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगा। मैं तो शास्त्रोंके अनुसार क्रिया करुंगा, अब उसने मुखवस्त्रिका मुखपर लगाई और दो चार यतियोंको साथ लेके देश देशमें फिरने लगे।"

खैर, इतनी रामकहानीसे अपनेको कुछ ताल्लुक नहीं है। यहाँ देखनेका सिर्फ यही है कि—मुहपत्ती बांधना सं० १७२० से शुरु हुआ है।

लवजी ऋषिने किसीभी कारणसे मूँह बांधना शुरु किया हो, परन्तु हमें तो यही कारण मालूम होता है कि—लवजीके मनमें विचार उत्पन्न हुआ हो कि—"हमारे बडे लोगोंने परमात्माकी मूर्तिको उत्थापन करनेका महान् दुष्कृत्य किया है, तो अब हम लोगोंको उचित है कि-संसारमें किसीको मूँह न दिखावें। क्योंकि संसारमें जो महान् दुष्कृत्य करता है, वह लज्जित होकर किसीको मूँह नहीं दिखाता।"

बस, इसी विचारसे लवजीने मूँहपर मुहपत्ती बांधना शुरू किया मालूम होता है। और यही परंपरा ढूंढियोंमेंसे तेरापंथियोंमें भी आजतक चली आई है।

मुहपत्तीके विषयमें बस, इतनाही लिखकर, अब हम तेरापंथियोंके उठाये हुए **दया—अनुकंपा** के विषयमें कुछ लिखें।

अनुकंपा.

अनुकंपा, एक ऐसी वस्तु है कि-वह संसारके समस्त मनुष्योंके हृदयमें स्वाभाविक ही रही हुई है। जैन, बौद्ध, हिन्दु, मुसलमान, और चाहे इसाई हो, चाहे कसाई, सभीने अनुकंपाको अपने हृदयोंमें स्थान दिया है। इस अनुकंपाको हृदयसे दूर करनेवाले, कुदरतसे युद्ध कर, मानों उसको हरानेकी चेष्टा करते हैं।

जैन धर्मका तो खास सिद्धान्त ही अहिंसा—दया—अनुकंपा है। क्योंकि—**दशवैकालिक** सूत्रके प्रथम अध्ययनकी प्रथमही गाथामें कहा है:—

" धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा-संजमो तवो।
देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो " ॥ १ ॥

इस अहिंसा लक्षण धर्मको माननेका दावा रखनेवालेभी दया-अनुकंपाका निषेध करें, इस जैसा दुःखका कारण और क्या हो सकता है ?। यह तो वैसाही हुआ जैसे, **'सलिलादग्निरुत्थिता'** पानीमेंसे अग्निका उत्पन्न होना।

जिन लोगोंके लिये यह 'हितशिक्षा' लिखी जाती है, वे (तेरापंथी) 'अहिंसा' को मानते हुए भी अनुकंपाको नहीं मानते हैं, यह उस मतके उत्पादककी बुद्धिके वैपरीत्यका ही परिणाम है। अन्यथा 'अपने हाथसे किसी जीवको न मारना', यही धर्म समझ कर, 'मरते हुए जीवको बचानेमें-रक्षाकरनेमें अधर्म' समझते ही क्यों ?।

'किसी जीवको न मारना' यह अहिंसा, और 'दुःखी जीवोंको दुःखसे मुक्त करना-रक्षा करना, यही दया,' इस प्रकार दोनों शब्दोंकी व्याख्या की जाय, तो कहना होगा कि-तेरापंथी समाजमें दया है ही नहीं। और जिस समाजमें-जिस धर्ममें धर्मकी जड-मूल दया ही नहीं है, वह समाज या धर्म संसार समुद्रसे तारनेको समर्थ हो ही कैसे सकता है ?।

तेरापंथी 'हम अनुकंपा नहीं मानते हैं' 'हम अनुकंपा नहीं मानते हैं' ऐसी पुकार किया करते हैं, परन्तु जब उनसे युक्तियोंके द्वारा पूछा जाता है, तब वे दूसरा कोई उपाय नहीं चलनेसे अनुकंपा-दयाके दो विभाग कर दिखाते हैं। १ सावद्य और २ निरवद्य। जैसे जीतमलजीने, हितशिक्षाके गोशालाधिकारमें, इसीकी पुष्टि करते हुए कहा है:—

"कोइ कहे सावद्य दया, किहां कही छे ताम।
न्याय कहुंछु तेहनो, सुणो राख चित ठाम" ॥७२॥

इससे स्पष्ट होता हैं कि-तेरापंथी सावद्य-निरवद्य दो प्रकारकी दया-अनुकंपा मानते हैं। लेकिन ऐसा माननेमें उन्होंने कितनी भारी भूल की है ? इसको ही प्रथम पाठक देखें।

सम्यक्त्वके पांच लक्षण शास्त्रोंमें दिखलाए हैं:—१ शम, २ संवेग, ३ निर्वेद, ४ अनुकंपा और ५ आस्तिक्य। इन पांचों

लक्षणोंमें चौथा लक्षण 'अनुकंपा' है। अब इस अनुकंपाके यदि दो भेद किये जाँय, तो हम नहीं समझ सकते हैं कि-तेरापंथी, उनके सम्यक्त्वके लक्षणोंमें सावद्य अनुकंपा लेते हैं कि-निरवद्य ?। क्या इसका कहींपर खुलासा तेरापंथी दिखला सकते हैं कि-" यहाँपर निरवद्य ही अनुकंपा लेनी, सावद्य नहीं, अथवा सावद्य ही अनुकंपा लेनी, निरवद्य नहीं ?। अपना कुठार अपनेही पैरोंपर गिरानेका साहस तेरापंथियोंने खूबही किया है। जिस दयासे-अनुकंपासे हम संसारसे पार होनेका विश्वास रखते हैं, उसी अनुकंपा-दयाको संसार समुद्रमें डुबानेवाली समझनेवाले तेरापंथियोंकी बुद्धिको धन्य है !

अच्छा, इसके सिवाय एक यहभी यहाँ प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि-जैसे तेरापंथी, अनुकंपाके दो भेद (सावद्य-निरवद्य) करते हैं, उसी तरह क्या शम, संवेग, निर्वेद और आस्तिक्यके भी भेद करेंगे ?। क्या किसी जैनसूत्रमें तेरापंथी, सम्यक्त्वके पांच लक्षणोंके भेद दिखा सकते हैं ?।

प्रियपाठक ! तेरापंथी इस विषयमें क्यों ऐसे भ्रमित हैं, इसका कारण दिखलाना समुचित होगा। वास्तवमें कहा जाय, तो तेरा-पंथी, शब्दोंके अर्थोंको समझ ही नहीं सके हैं। 'किस शब्दका क्या अर्थ होता है ?' 'अमुक शब्द एकार्थ है कि अनेकार्थ ?' इत्यादि बातोंका ज्ञान उन लोगोंमें थाही नहीं। यदि होता तो उनके पूज्य जीतमलजी, हितशिक्षाके गोशालाधिकारमें निम्न लिखित बात लिखतेही क्यों? :—

" हेमीनाममालाविषे, आठ दयारा नाम।
दया शुक कारण्य फुन, करूणा घृणा जु ताम ॥ ७३ ॥

कृपा अने अनुकंप फुन, वलि अनुक्रोस कहाय ।
नाम एकार्थ आठ ए, तृतियकांडरे मांहि ॥ ७४ ॥
जिनरिषसामुं जोइओ, रत्नद्विपनी जेण ।
देवीनी करुणा करी, ज्ञाता नवमे झयेण ॥ ७५ ॥
करुणा नाम दया तणुं, ते माटे सुविचार ।
एह दया सावद्य छे, श्रीजिन आज्ञा बहार " ॥ ७६ ॥

जीतमल्लजीकी बुद्धिमें एक प्रकारका अजीर्णही हुआ, मालूम होता है । नहीं तो ऐसा क्यों लिखते ? । हमने मान लिया कि–कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यनें, दया–शूक–कारुण्य–करुणा–कृपा–अनुकंपा–घृणा और अनुक्रोश ये आठ नाम अनुकंपाके-दयाके दिखलाये हैं । परन्तु इसका, जिनरिखकी कथाके साथमें संबंध ही क्या है ? । जिनरिखको, रयणादेवीके हावभावसे और पश्चात् रुदनादिके करनेसे उसके ऊपर करुणरस उत्पन्न हुआ है । देखिये, ज्ञातासूत्रके नववें अध्ययनका वह पाठः—

" तएणं जिणरक्खिया समुप्पएण कलुणभावं मच्चुगलत्थलणोल्लियमइं अवयक्खतं तहेव जक्खे सेलए ओहिणा जाणिउण सणियं २ उव्विह[illegible]२ णियगपिट्ठाहिविगयसद्धे, तएणं सा रयणदीवदेवया णिस्संसा कलुणं जिणरक्खियं सकलुसा सेलगपिट्ठाहि उवयंतं दासे मउसित्ति जंपमाणी अप्पत्तं सागर सलिलं गिण्हियवाहाहिं आरसंतं उड्ढं उव्विहइ अंबरतले उवयमाणं च मंडलग्गेण पडिच्छित्ता णीलुप्पलगवलअयसिप्पगासेणं असिवरेण खंडाखंडिं करेंति । " पृष्ठ–५५८–५५९,

[illegible] इस पाठमें, ऊपर दिये हुए आठ नामोंमेंसे एक भी नाम नहीं है । इसमें जो कोई शब्द देखा जाता है, वह कलुण (करुण)

शब्द है। और इसी 'करुण' शब्दको 'करुणा' समझ करके तेरापंथी सावद्य अनुकंपा—निरवद्य अनुकंपा समझनेकी भूल करते हैं।

'करुणा' शब्द और 'करुण' शब्दका एकही अर्थ समझ लेना, उतनीही भूल है, जितनी नहीं पिताको पिता समझनेकी भूल। करुण शब्दका अर्थ दूसरा होता है, 'करुणा' शब्दका दूसरा। 'करुण' शब्दका, अन्यप्रसंगोंमें उपयोग किया जाता है, 'करुणा' का अन्यप्रसंगोंमें। फिर भी 'करुणा' और 'करुण' को एकही अर्थवाले समझना, अज्ञानता नहीं, तो और क्या ?। यदि 'करुण' शब्दका 'करुणा' ही अर्थ होता तो, प्रभुश्री हेमचन्द्राचार्य उपर्युक्त आठ नामोंके साथ इसको (करुण) क्या न लिखते ?। बल्कि हेमचन्द्राचार्यने तो 'करुण' का उल्लेख दूसरे काण्डके २०८ वें श्लोकमें अलग ही किया है। अगर तेरापंथी करुणा—दया—अनुकंपा वगैरह शब्दोंके अर्थोंमें 'करुण' शब्दकीभी साथमेंही खिचडी पकाना चाहते हैं, तो हमें बतावें, 'कुमारसंभव' के 'विरुजैः करुणस्वरैरयम्' इस पदका क्या अर्थ करेंगे ?। क्या यहाँपर भी तेरापंथियोंकी 'सावद्यदया' ही आकर अडंगा लगावेगी ?। कभी नही ?। यहाँपर 'करुण' का अर्थ है 'आर्तभाव'। दया—अनुकंपा वगैरह नहीं। इसी तरह सूत्रोंमें भी 'करुण' शब्द अनेक जगहोंपर आता है। जैसे सूयगडांगसूत्रमें:—

"जइ कालुणियाणि कासिया, जइ रोयंति य पुत्तकारणे।"

पृष्ठ-११४, गा० १७।

"पणवंधणेहिं णेगेहिं, कलुणविणीयमुवगसित्ताणं।"

पृष्ठ-२२५, गा० ७।

"ते डज्झमाणा कलुणं थणंति, अरहस्सरा तत्थ चिराट्ठितीया।"

पृष्ठ-२७०, गा० ७।

"सया य कलूणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अतिदुक्ख धम्मं।" पृष्ठ-२७३, गा० १२।

"पक्खिप्प तासु पययंति बाले, अट्टस्सरे ते कलुणं रसंते।"

पृष्ठ-२८२, गा० २५।

"ते डज्जमाणा कलुणं थणंति, उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता।" पृष्ठ-२८६, गा० ४।

"ते सूलविद्धा कलुणं थणंति, एगंतदुक्खं दुहओ गिलाणा।" पृष्ठ-२८९, गा० १०।

"चिया महंतीउ समारभित्ता, छिज्जंति ते तं कलुणं रसंतं।"

पृष्ठ-२९१, गा० १२।

इत्यादि स्थानोंमें भी क्या तेरापंथी दया–करुणा–अनुकंपा ही अर्थ ठोकते रहेंगे?। क्या ये अर्थ यहाँपर उचित गिने जा सकते हैं?। कभी नहीं। तब कहना ही होगा कि–'करुण' शब्दका अर्थ होता है शोक–आर्तभाव। न कि करुणा–दया वगैरह। और यही अर्थ प्रभुश्रीहेमचन्द्राचार्यने काव्यानुशासनके ७६ पृष्ठमें लिखा है 'शोकः करुणः।'

तेरापंथी लोग, इस 'करुण' और 'करुणा' शब्दके भेदोंको नहीं समझ करके ही दो प्रकारकी दया–अनुकंपा मानने लग गये हैं। हमें आश्चर्य तो इस बातका होता है कि–जब ऐसे भिन्न २ शब्दोंके भेदोंकोही नहीं समझ सके हैं, तो अनुकंपा–दया–करुणा

इत्यादि एक ही अर्थको कहनेवाले, शब्दोंमें रहे हुए आंतरिक वैलक्षण्यको तो समझते ही कैसे होंगे ? ।

कहनेका मतलब कि—अनुकंपाके रहस्यको समझनेके लिये जितनी शाब्दिक व्युत्पत्तिके ज्ञानकी आवश्यकता है, उतनीही प्रतिभाकी प्रबलताभी चाहियें । टब्बा—टब्बी और भाषा-भूसासे ऐसे विषयोंमें कार्य नहीं चल सकता । किस विषयमें कैसे शब्दोंके प्रयोग करने चाहियें ? अथवा अमुक प्रसंगमें अमुक शब्दका क्या अर्थ होता है, इस ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये व्याकरण न्याय—साहित्यादिके अभ्यासकी बहुतही जरूरत है । ऐसे अभ्यासके अभावहीसे तेरापंथी, अनुकंपाके विषयमेंभी भ्रमित हुए हैं, अर्थात् जहाँ मोहरस अर्थ है, वहाँ भी अनुकंपा मान करके वास्तविक अनुकंपाको उठा देते हैं । इस विषयमें विशेष परिचय पाठकोंको आगे चल करके कराया जायगा ।

यहाँ पर एक और वात कह देनी उचित होगी । तेरापंथी कहते हैं कि—हम बत्तीससूत्रोंके मूलपाठोंके सिवाय, न और कोई सूत्र मानते हैं, और न निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका मानते हैं । ऐसा कहते हुए भी-मानते हुए भी, जब हम इस पन्थकी ‘ भ्रमविध्वंसन ’ ‘ ज्ञानप्रकाश ’ वगैरह पुस्तकें देखते हैं, तब उन पुस्तकोंमें जगह २ सूत्रोंकी टीकाओंका और बत्तीससे अन्य सूत्रोंका भी आश्रय लिया हुआ देखनेमें आता है । अब यह सोचनेकी वात है कि—‘ ऐसा क्यों ? ’ । जब बत्तीस सूत्रोंके मूल पाठोंके सिवाय और कुछ मानतेही नहीं हैं, तो फिर अपनी मतलब निकालनेके लिए इधर उधर भटकनेकी जरूरत ही क्या है ? । लेकिन यह नहीं हो सकता ? । चाहे तेरापंथी हों, चाहे ढूंढिये हों, चाहे पैंतालीस सूत्रोंके माननेवाले भले मूर्तिपूजक ही क्यों न हों,

सभीको टीका वगैरहका आश्रय तो लेना ही पडता है। हम लोगोंकी उतनी बुद्धि-प्रतिभा कहाँ, जो मूलसूत्रोंसे ही, उनके यथार्थ तात्पर्यको निकाल सकें। हम लोगोंका उतना ज्ञान कहाँ, कि जो बात, मूलसूत्रोंमें लिखीही न हो, उसको भी अपने आपसे जान लें। तब इसके लिये क्या करना होगा ?। धुरंधर ज्ञानी आचार्योंके वचनोंको हमें मानना पडेगा, और उन वचनोंपर हमें निर्भर भी रहना होगा। क्या तेरापंथी लोग इस बातको अस्वीकार करेगें ?। यदि अस्वीकार करते हों तो, हम पूछ सकते हैं कि-'जिस सीमंधरस्वामीको तुम लोग मानते हो, और उनके सामने क्रिया करते हो, उस सीमंधरस्वामीका नाम, बत्तीस सूत्रोंमेंसे किस सूत्रके मूल पाठमें है ?' यह दिखलाओ। यदि बत्तिस सूत्रोंके मूल पाठोंमें कहीं नहीं है, तो फिर क्योंकर मानते हो ?। जिस आर्द्रकुमारकी कथा, श्रावकोंके सामने कह सुनाते हो, उस आर्द्रकुमारकी सारी कथा, तुम्हारे बत्तीससूत्रोंमेंसे किस सूत्रमें है ? इत्यादि कई बातें ऐसी हैं, जो मूल सूत्रोंमें नहीं होनेपरभी मानी जाती हैं। इससे कहना होगा कि-बत्तीससूत्रोंके मूलपाठोंके सिवाय और किसी चीजके नहीं माननेका जो वे घमंड रखते हैं, सो बिलकुल झूठाही घमंड है। यदि यह घमंड सच्चा होता तो बत्तीस सूत्रोंके सिवाय और सूत्र एवं टीकादिका आश्रय लेतेही क्यों ?।

अब यहाँपर तेरापंथी यह कहते हैं कि-"प्रमाण तो हर किसीके शास्त्रोंके दिये जा सकते हैं, परन्तु इससे उन शास्त्रोंका मानना सिद्ध नहीं होता। इस पर एक दृष्टान्त देते हैं कि-भगवान् महावीरदेवसे, सोमिलने पूछा है कि-सरसव भक्ष्य वा अभक्ष्य ? इसके उत्तरमें भगवान्‌ने कहा है कि, 'ब्राह्मणके शास्त्रोंमें सरसव

दो प्रकारके दिखलाए हैं ।' तो क्या ब्राह्मणोंके शास्त्रोंको भगवान्ने मान लिये ? । "

तेरापंथियोंकी यह युक्ति, पानीसे मक्खन निकालने जैसी है । तेरापंथी अभी इस बातको तो समझे ही नहीं हैं कि–दूसरोंके शास्त्रोंके प्रमाण कब दिये जा सकते हैं ? । दूसरोंके शास्त्रोंके प्रमाण तब दिये जा सकते हैं, जबकी वही बात अपने शास्त्रोंमे लिखी हुई मिलती हो । भगवान् महावीर देवने दो प्रकारके सरसव ब्राह्मणशास्त्रोंसे दिखलाए, इसका यही कारण है कि–जैनशास्त्रोंमें भी दो ही प्रकारके सरसव माने हुए हैं । यदि जैनशास्त्रोंमें दो प्रकारके सरसव नहीं माने हुए होते, तो भगवान् कभी ब्राह्मणशास्त्रोंका प्रमाण नहीं देते । ब्राह्मणशास्त्रोंके प्रमाणोंकी क्या बात है ? जिस समय हम 'दया' का प्रतिपादन करते हैं, उस समय हम मुसलमानोंके धर्मशास्त्रके प्रमाण देते हुए कहते हैं कि–' मुसलमानोंके कुराने-शरीफमें भी लिखा है कि–समस्त जीवोंपर 'रहम' रखना चाहिये । ' अब बतलाईये । यदि हमारे जैन शास्त्रोंमे दयाका–रहमका प्रतिपादन न किया होता, तो हम क्या कुराने शरीफका उदाहरण दे सकते थे ? । कभी नहीं । इसी प्रकार 'रात्रिभोजन नहीं करना' इत्यादि विषयोंमें हम हिन्दुधर्मशास्त्रोंके प्रमाण इसी लिये देते हैं, कि–वे बातें हमारे शास्त्रोंमेंभी लिखी हुई पाई जाती हैं । परन्तु हम तेरापंथियोंसे पूंछते हैं कि–जिन २ विषयोंमें, तुम लोग कभी २ निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीकाओंका आश्रय ले लेकरके अपना कार्य चलाते हो, उन २ विषयोंका, तुम्हारे माने हुए किन २ शास्त्रोंमें उल्लेख है ? यह दिखलाओ । जो चीजें तुम्हारे घरमें है ही नहीं, उन चीजोंके लिये तुम्हारे मन्तव्यानुसार भी तुम कभी दूसरोंका आश्रय नहीं ले सकते हो । हां, सीमंधरस्वामीका

नाम, आर्द्रकुमारकी पूरी २ कथा, इत्यादि बातें, तुम्हारे माने हुए बत्तीससूत्रोंके किसी मूल पाठमें होतीं, और फिर टीका वगैरहका आश्रय लिया होता, तो वह उचित गिना जा सकता था। अस्तु, पराये मालसे पूंजीदार बन बैठनेकी चाल तेरापंथियोंने कैसी सीखी है, यह पाठक स्वयं देख सकते हैं।

यहाँ कहनेका तात्पर्य यह है कि-जैसे हमें सूत्र माननीय हैं, वैसे ही निर्युक्ति-भाष्य-चूर्णि-टीकाएं भी मानने लायक ही हैं। और प्रस्तुतमें अनुकंपाका विधान, जैसे मूलसूत्रोंमें है, वैसे निर्युक्ति-भाष्यादिमें भी है। इतना ही नहीं, आचार्योंके बनाए हुए अनान्य सैंकडों ग्रंथोंमें भी है। यह बात आगे जा करके पाठकोंको स्वयं विदित हो जायगी।

संसारमें दो प्रकारके मनुष्य होते हैं:-१ लौकिक, २ लोकोत्तर। इन दोनों प्रकारके मनुष्योंको अनुकंपा आदरणीय है। लोकोत्तर पुरुष, जो कि तीर्थंकर हैं, वे भी अनुकंपा, समयपर करते हैं, तो फिर हम-लौकिकपुरुष करें, इसमें तो कहना ही क्या है?। जैसे समस्त तीर्थंकर एक वर्ष पर्यन्त वार्षिकदान अनुकंपाकी बुद्धिसे ही देते हैं। तीर्थंकरोंके वार्षिकदानमें सिवाय अनुकंपाके दूसरा कोई कारण नहीं है। देखिये, श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी भी आवश्यक बृहद्वृत्तिमें लिखते हैं:—

" करुणागोचरे पुनरापन्नानामनुकंपया दद्यादपि। यतः उक्तः-

सव्वेहिं पि जिणेहिं दुज्जयजियरागदोषमोहेहिं।

सत्ताणुकंपणट्ठा दाणं न कहिं वि पडिसिद्धं ॥ १ ॥

तथा च भगवंतस्तीर्थंकरा अपि त्रिभुवनैकनाथाः प्रविव्रजिषवः।

सांवत्सरिकमनुकंपया प्रयच्छंत्येव दानमित्यादि।"

(विशेषशतक-पत्र ६ लिखी हुई प्रति)

अर्थात्—करुणा करने लायक मनुष्योंको अवश्य अनुकंपासे देना ही चाहिये। क्योंकि-दुर्जय ऐसे राग-द्वेष-मोहको जीतनेवाले समस्त तीर्थकरोंने सत्त्वानुकंपाके लिये दानका कहीं भी निषेध नहीं किया है। और भगवान् तीर्थकर भी अनुकंपासे सांवत्सरिकदान देते ही हैं।

भीष्मजीने, इसके विषयमें, 'ज्ञानप्रकाश' के पृष्ठ १११ में, चतुरविचारकी ढालमें लिखा है:—

" कहे लीधां पापमें दीधा धर्म, तिणलेखे रह गया कोरारे।
देवां खने ले मीनषां न दीधां, परिया अणहुंता फोरारे" च.॥१०॥

अर्थात्-भगवानने वार्षिक दान दिया, इससे भगवान्को कष्ट उठाने पडे।

क्या तेरापंथियोंका यह कथन जरासा भी युक्तियुक्त गिना जा सकता है?। कभी नहीं। वार्षिकदान भगवान् महावीर स्वामी-नेही नहीं दिया, किन्तु समस्त तीर्थकरोंने दिया है। अब तेरापंथी बतलावें, क्या समस्त तीर्थकरोंको कष्ट हुआ है?। यदि नहीं हुआ, तो फिर यह असद्भूतकलंक भगवान् महावीर देवके ऊपर लगाना, तेरापंथियोंके लिये कितना दुष्कृत्य गिना जा सकता है, यह पाठक स्वयं विचार कर लें। क्या तेरापंथी, ऐसा किसी सूत्रमें दिखा सकते हैं कि—'भगवान्ने वार्षिकदान दिया, इससे भगवान्को कष्ट हुआ?'। यदि नहीं दिखा सकते हैं, तो फिर तेरापंथियोंके घरके गपोडोंको कौन सच्चे माननेका साहस कर सकता है?। क्या तेरापंथी, इस बातको नहीं समझते हैं कि-भगवान्का

हृदय दयासे परिपूर्ण था। और जिनका हृदय दयापूर्ण होता है, वे अनुकंपा करनेके समय, गुण-अवगुणोंको देखने नहीं बैठते हैं। जैसे कहा भी है:—

"निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
न हि संहरति ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि"॥ १॥

जैसे चन्द्र, चाण्डालके घरमेंसे भी अपने प्रकाशको नहीं हरण कर लेता है, अर्थात् वहाँ भी प्रकाश डालता है, वैसे सज्जन लोग, निर्गुणी जीवोंपर भी दया अवश्य करते ही हैं।

हमारे लोकोत्तर पुरुषों (तीर्थंकरों) ने, जिन २ बातोंका भव्यजीवोंको उपदेश दिया है, उन २ बातोंका स्वयं भी आचरण कर दिखाया है। परमात्माके चरित्रको अवलोकन कीजिये। जिस चार प्रकारके (दान-शील-तप-भाव) धर्मोंकी परमात्माने परूपणा की है, उन्हीं चार प्रकारके धर्मोंकी, स्वयं आराधना भी की है। जिस क्षान्त्यादि धर्मोंको पालनेके लिये यतियोंको-साधुओंको आज्ञा की है, उन्हीं क्षान्त्यादि धर्मोंका खुद परमात्माने भी आचरण किया है। इसी प्रकारसे जिस अनुकंपा करनेको भगवानने फरमाया है, उसी अनुकंपाको आपने भी कर दिखाई है। जैसे देखिये,

परमात्मा महावीर देवने, गोशालेको बचाया। भगवान् पार्श्वनाथने जलते हुए काष्ठमेंसे सांप (सर्प) को निकलवाया। भगवान् नेमनाथने, अपने विवाह के समय मारनेके लिये इकट्ठे किये हुए मृगोंको, बचाये। भगवान् शान्तिनाथने मेघरथके भवमें कबूतरको बचाया। इत्यादि बहुत दृष्टान्त मिलते हैं।

यहांपर भगवान् महावीरदेवके अनुकंपा करनेसे-गोशालेको बचानेसे, तेरापंथी लोग भगवान्को 'चूका' कहते हैं, इसका हम विचार आगे चलकर करने वाले हैं, इस लिये यहाँ कुछ नहीं लिखते। सिर्फ यहाँपर यही कहेंगे कि, भगवान् महावीरदेवने साधु अवस्थामें अनुकंपा करके, समस्त साधुओंको समय विशेषमें अनुकंपा करनेका सूचन किया। भगवान् पार्श्वनाथ, और नेमनाथजीने गृहस्थावस्थामें अनुकंपा करके, समस्त गृहस्थोंको अनुकंपा करनेका रस्ता दिखलाया।

इस प्रकार जब लोकोत्तर पुरुषोंने ही अनुकंपाका आदर किया है, तो फिर लौकिक पुरुषोंके करनेके लिये तो कहना ही क्या?

इस अनुकंपाके विषयमें, परमात्मा महावीरदेवने तो यहाँतक फरमान किया है कि-यदि जीवरक्षाके लिये साधुको अपवादमें मृषावाद भी बोलना पडे, तो कोइ हर्जकी बात नहीं है। जैसे, आचारांगसूत्रके द्वितीयश्रुतस्कंधके, तीसरे अध्ययनके, तीसरे उद्देशेमें इस प्रकारका पाठ है:—

"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया आगच्छेज्जा। तेणं पाडिपहिया एवं वदेज्जाः-आउसंतो समणा, अवियाइं एत्तो पडिपहे पासह, तंजहा-मणुस्सं वा गोणं वा महिसं वा पसुं वा पक्खिं वा सिरीसिवं वा जलचरं वा आइक्खह दंसेह? तं णो आइक्खेज्जा, णो दंसेज्जा, णो तेसिं तं परिण्णं परिजाणेज्जा, तुसिणीओ उवेहेज्जा, जाणं वा णो जाणंति वएज्जा। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।" (राजकोटमें छपा, पृष्ठ २७०).

अर्थात्—साधु–साध्वीको ग्रामानुग्राम विचरते हुए, मार्गमें कोई मुसाफिर मिल जाय, और वह पूछे कि, 'हे आयुष्मन् श्रमण! आपने इस रस्तेपर कोई मनुष्य, बैल, भैंसा, अथवा कोई पशु–पक्षी एवं सर्प या जलचर प्राणी देखे हैं तो, कहियें'। तब साधु अथवा साध्वीने इस विषयमें कुछ भी कहना अथवा दिखलाना नहीं। अर्थात् मौन रहना। और यदि कुछ न कुछ जवाब देनेकी जरूरत पड ही जाय, तो जानते हुए भी कह दे कि–'नहीं जानते'।

अब यहाँपर सोचनेकी बात है कि, जानते हुए भी साधु, 'नहीं जानते हैं' ऐसा क्यों कह दे?। ऐसे प्रत्यक्ष झूठ बोलनेके लिये भगवान्ने क्यों आज्ञा दी?। लेकिन नहीं, यहाँपर झूठ बोलनेका साधुका इरादा ही नहीं है, यहाँ इरादा है जीव बचानेका। साधु सोचता है कि–अगर मैं यह कह दूँगा कि–'हां, अमुक प्राणी, इधरको गया, तो वह जरूर उसके पीछे पडेगा और हाथमें आवेगा तो मारेगा भी"। बस, इसी अभिप्रायसे साफ २ कह दे कि–'हमने नहीं देखा।'

यहापर कई लोग 'जाणं वा णो जाणंति वएज्जा' इस पाठका यह अर्थ करते हैं कि—'जानता हुआ भी साधु, 'जानता हूँ' ऐसा न कहे' अर्थात् मौन रहे। लेकिन यह अर्थ ठीक नहीं है। क्योंकि 'तुसिणीओ उवेहेज्जा' यही पाठ मौन रहनेके लिये है, तो फिर दूसरी वार मौन रहनेके लिये क्यों कहे?। तब यह कहना पडेगा कि–यह पाठ खास अपवादके लिये है। अर्थात् प्रथमतो साधु मौन ही रहे। और यदि किसी कारणसे कुछ न कुछ बोलनेकी जरूरत पड ही जाय, तो 'जानता हुआ भी 'नहीं जानता,' ऐसा कह दे। और यही अर्थ सच्चा है। दूसरी बात यह है कि

उपर्युक्त पाठ में 'वा' शब्द रखा हुआ है। और 'वा' शब्द दूसरे अर्थको सूचन करता है। इस लिये यहाँ एक तो मौन रहनेकी बात है, और दूसरी 'जानता हुआ भी, नहीं जानता' ऐसे कहनेकी।

यह बात हम ही नहीं कहते हैं, परन्तु बाईससमुदायके पूज्य श्रीरामचन्द्रजीके बनाये हुए 'सत्यमिथ्यार्थनिर्णय ग्रंथ' के ३७ वें पृष्ठमें भी लिखा है कि–

"भावार्थ यह है कि–देखे हुयेको भी कहते हैं कि–हमने नहीं देखा। इस पाठका कोई अर्थ करते हैं कि–'मौन रक्खे,' सो शास्त्रका अज्ञान हैं। क्योंकि–इस सूत्रके पछाडीका सूत्र मौन रखनेका अलग है।"

इसी तरह, इसी बाईससमुदायके साधुजी कनीरामजी विरचित, 'सिद्धान्तसार' नामक ग्रंथके, २११ पृष्ठमें भी लिखा है कि–

" कोइ मृगप्रच्छाने समये मृगरक्षाने कारणे जुठुं बोले ते दयाना प्रणामनुं जुठ टालीने बीजा जुठनां माठां फल कह्यां, एटले दयाना प्रणामथी जुठ बोले, तेनां माठां फल कह्यां नथी. ए पुरुषना जुठ बोलवाना प्रणाम नथी, पण मृग्यादिकने राखवाना प्रणाम छे. ते माटे दयानां फल लागे, पण जुठनां फल न लागे।"

हम उन बाईस समुदायवाले महाशयोंको, जोकि–ऐसे प्रसंगोंमें भी झूठके नामसे चमक उठते हैं, उनके ही मजहबके साधुजी कनीरामजी, और श्रीरामचन्द्रजीके उपर्युक्त वचनोंपर ध्यान देनेके लिये अनुरोध करते हैं।

यह कभी न समझा जावे कि–'हम झूठके पक्षपाती हैं।' हम भी सच्चे सत्यके ही पक्षपाती हैं। परन्तु जहाँ पर भगवान्‌ने

जैसा बोलनेके लिये फरमाया, वहाँ पर वैसाही बोलना पडेगा। जो महाशय मृगपृच्छादिके कारणमें 'हम नहीं जानते' ऐसे कहनेका निषेध करते हैं, अर्थात् इसको झूठ समझकर गभरा जाते हैं, उन महाशयोंसे हम पूछते हैं कि–आप सत्य किसको कहते हैं?। द्रव्यसे (लोक रूढी मात्रसे) जो सत्य है, उसीको परमार्थसे सत्य कहते हो?। ऐसे नहीं हो सकता। क्योंकि, एक मनुष्य काणा है, तिसपर भी उसको 'काणा' कहनेके लिये भगवान् निषेध करतें हैं। देखियें दशवैकालिक सूत्रके सातवें अध्ययनमें लिखा है:–

" तहेव काणं काण त्ति पंडगं पंडग त्ति वा।
वाहिअं वा वि रोगित्ति तेणं चोरत्ति नो वए॥ १२॥ पृष्ठ-४४०

अर्थात्–साधु, काणेको 'काणा,' नपुंसकको 'नपुंसक,' रोगीको 'रोगी,' और चोरको 'चोर' भी न कहे।

अब बतलाईये, काणेको 'काणा' कहना, नपुंसकको 'नपुंसक' कहना, रोगीको 'रोगी' कहना और चोरको 'चोर' कहना, यह क्या सत्य नहीं है?। अवश्य सत्य है। परन्तु यह द्रव्यसे सत्य है, भावसे नहीं। और इसी लिये भगवान्ने ऐसा बोलनेके लिये निषेध किया इसी तरह मृगपृच्छादिके कारणमें 'हम नहीं जानते' यह द्रव्यसे 'असत्य' है, भावसे असत्य नहीं। और इसी लिये ऐसा बोलनेके लिये भगवान्ने आज्ञा फरमाई है।

यह आज्ञा भगवान्ने आचारांगसूत्रेंम ही नहीं फरमाई, अन्य-सूत्रोंमें भी फरमाई है। जैसे देखीये,

सूयगडांगसूत्रके प्रथम श्रुतस्कंधके आठवें अध्ययनमें भी कहा है:–

" पाणे य णाइवाएज्जा, अदिन्नं पि य णादए ।
सादियं ण मुसं बूया एस धम्मे बुसीमओ "॥१९॥ पृष्ठ ३६७

अर्थात्–साधु, प्राणियोंके प्राणोंका नाश न करे, अदत्त ग्रहण न करे और सादिकं, यानि मायाकरके सहित मृषावाद न बोले, संयमवन्त–जितेन्द्रिय साधुका यही धर्म है ।

अब विचार कीजिये । जब यह कहा गया कि–' साधु, माया करके सहित मृषावाद न बोले ' तो इससे ही स्पष्ट सिद्ध होता है कि–मृषावाद बोलनेका और भी कोई तरीका जरूर है । और इसी लिये टीकाकार श्रीमान् शीलांगाचार्यजीने टीकामें स्पष्टीकरण करके कह दिया कि—

" यो हि परवञ्चनार्थं समायो मृषावादः स परिह्रियते । यस्तु संयमगुप्त्यर्थं 'न मया मृगा उपलब्धाः' इत्यादिकः स न दोषायेति।"

अर्थात्–जो परवंचनके लिये माया सहित मृषावाद है, वह त्याग करे, परन्तु संयमकी गुप्ति–संयमकी रक्षा के लिये ' मैंने मृग नहीं देखे ' ऐसा कहा जाय, तो यह दोषके लिये नहीं है ।

बात भी ठीक है, यह मृषावाद अपने स्वार्थके लिये अथवा दूसरोंको ठगनेके लिये नहीं बोला जाता है। किन्तु जीव बचानेकी बुद्धिसे, अनुकंपाके लिये बोला जाता है । इस लिये यह दोषके लिये हो ही नहीं सकता ।

अच्छा, इसी मतलबका दशवैकालिकसूत्रका एक और पाठ भी देख लीजिये । दशवैकालिकसूत्रके चतुर्थ अध्ययनमें दूसरे महाव्रतकी व्याख्यामें कहा है:—

" दव्वओ णामेगे मुसावाए णो भावओ । भावओ णामेगे णो दव्वओ । एगे दव्वओ वि भावओ वि । एगे णो दव्वओ

णो भावओ। तत्थ कोइ कहिंवि हिंसुज्जओ भणइ इओ तए पसुमिणाइणो दिट्ठत्ति?। सो दयाए दिट्ठावि भणइ ण दिट्ठत्ति। एस दव्वओ मुसावाओ, नो भावओ। (श्रीहरिभद्रसूरिकृत टीका पृष्ठ १९०)

अर्थात्–दूसरे महाव्रतकी द्रव्यादि चतुर्भंगी दिखलाते हुए कहाः–१ द्रव्यसे मृषावाद, लेकिन भावसे नहीं। २ भावसे मृषावाद, किन्तु द्रव्यसे नहीं। ३ द्रव्य और भाव दोनोंसे मृषावाद। ४ द्रव्यसे और भाव दोनोंसे मृषावाद नहीं। यहाँपर कोई हिंसक यह कहे कि–आपने मृगादि पशु देखे?। तब, उसने देखे हों, तो भी दयासे यही कहे कि–मैंने नहीं देखे। यह द्रव्यसे मृषावाद है, भावसे नहीं।

इसपरसे भी स्पष्ट सिद्ध हुआ कि–दयाके कारणसे साधु मृषावाद भी बोले, तो वह दोषके लिये नहीं है। और ऐसे प्रसंगोंपर मृषावाद बोलनेकी आज्ञा होनेके कारण हीसे भगवान्ने पन्नवणासूत्रके ग्यारहवें पदमें चार प्रकारकी भाषा बोलते हुए भी 'आराधक' कहा। देखिये, पन्नवणासूत्रके ३८८ वें पत्रमें इस प्रकारका पाठ हैः—

"कतिणं भंते! भासज्जाया पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि भासज्जाया पण्णत्ता। तं जहा–सच्चमेगं भासज्जायं, बीयं मोसं भासज्जायं, तइयं सच्चामोसं भासज्जायं, चउत्थं असच्चामोसं भासज्जातं। इच्चेयाइं भंते! चत्तारि भासज्जायाइं भासमाणे किं आराहए विराहए?। गोयमा! इच्चेयाइं भासज्जायाइं आउत्तं भासमाणे आराहए, नो विराहए।"

अर्थात्—हे भगवन्! भाषा कितने प्रकारकी है?। हे गौतम! भाषा चार प्रकारकी हैः—१ सत्यभाषा, २ मृषाभाषा, ३ सत्या-

मृशाभाषा, और ४ असत्यामृषाभाषा। हे भगवन्! इन चारों प्रकारकी भाषाको बोलता हुआ साधु क्या आराधक है कि विराधक?! हे गौतम! इन चार प्रकारकी भाषाओंको 'आउत्तं' यानि प्रवचन-

मालिन्यादिके कारण विशेषोंमें, लाभालाभको देख करके बोलता हुआ साधु आराधक है, न कि विराधक।

अब देखिये, यहाँ भगवान्ने प्रवचनमालिन्यादि कारणोंमें लाभालाभको देखकरके मृषा बोलने वालेको भी आराधक कहा?।

अहा! कैसी दयाकी महिमा! कैसा अनुकंपाके लिये विधान,। जैनसूत्रोंमें, अनुकंपाकी इतनी महिमा होनेपर भी, हम नहीं समझ सकते हैं कि तेरापंथी लोग क्योंकर इसका निषेध करते हैं?। क्योंकर ऐसा मानते हैं कि 'जीवको मारनेमें एक पाप और बचानेमें अठारह पाप लगेंगे?।'

अगर स्थूलबुद्धिसे भी विचार किया जाय, तो मालूम हो सकता है कि—यदि मारनेकी अपेक्षासे, जीवके रक्षण करनेसे विशेष पाप होता तो, भगवान् 'पाणाइवायाओ वेरमणं' क्यों कहते?। 'पाणरक्खाओ वेरमणं' ही कह देते। क्योंकि—प्राणातिपातविरमणव्रतसे, तो, देशसे एक हिंसाका पाप हटेगा, और जीवरक्षाविरमणव्रतसे, तेरापंथियोंके मन्तव्यानुसार अठारह पाप हटेंगे। लेकिन भगवान्ने तो ऐसा कहीं भी नहीं कहा। तो फिर ये तेरापंथी, जीवके बचानेमें अठारह पाप कैसे मानते हैं?।

बात यह है कि—मनुष्यकी बुद्धि जब विपरीत हो जाती है, तब उसको सत्यासत्यका ख्याल नहीं रहता। वह हरएक बातमें उलटा ही देखता है। यदि तत्त्वदृष्टिसे विचार किया जाय, तो संसारमें

जितने कार्य किये आते हैं, उनमें पुण्यपापका आधार खास परिणामके ऊपर रहता है। इसी लिये तो हम पहिले लिख आए हैं कि–परिणामसे बन्ध, क्रियासे कर्म और उपयोगसे धर्म होता है। यों तो संसारकी सारी कियाओंमें, फिर वे सांसारिक या धार्मिक ही क्यों न हों, जीवोंकी विराधना रही हुइ है, परन्तु, जिन क्रियाओंमें, जीवविराधना करनेका इरादा न हो, और किसी शुभ कार्यके लिये ही प्रवृत्ति की गइ हो, तो उसमें पापका डर रखना, बिलकुल अज्ञानताका सूचक ही है। यदि ऐसी बातोंमें भी पाप लग जाता तो, भगवान् मृगपृच्छादिके कारण साधुको मृषावाद बोलनेकी आज्ञा देते ही क्यों ?। नदीमें पडी हुई साध्वीको, नदीमें गिरकरके निकालनेको फरमाते ही क्यों ?। कोणिकराजा, बडे आडंबरके साथ, रस्तेमें असंख्याता जीवोंकी हिंसा करते हुए भगवान्को वंदणा करनेके लिये, जाता ही क्यों ?। सुबुद्धिमंत्रि, राजाको प्रतिबोध करनेके लिये, खाईके दुर्गंधी–जीवोंके पिंडवाले जलको घडेमें वारंवार परावर्तन करते ही क्यों?। और मल्लीनाथ भगवान्, जितशत्रु आदि छहों राजाओंको प्रतिबोध करनेके लिये सुवर्णकी पोली पूतलीमें छे महीनोंतक आहारके कवल भर २ करके अत्यन्त दुर्गंधवाले पदार्थोंको रख छोडते ही क्यों ?। तब अवश्य कहना होगा कि-यहाँ पर इन लोगोंका अभिप्राय-परिणाम, जीवोंकी विराधना करनेका नहीं था, परन्तु शुभकार्यका ही था। और इससे इन लोगोंको, जीवविराधनेका बुरा फल नहीं कहा, किन्तु शुभकार्य करनेका अच्छा ही फल कहा। क्योंकि–परिणाम अच्छे कार्योंके करनेका था।

इसी प्रकार एक विशेष लौकिक दृष्टान्तको भी सुन लीजिये। एक मनुष्य अपने छोटे बच्चेको दोनों हाथोंसे खडे २ खिला रहा

है। अकस्मात् वह लडका हाथोंमेंसे गिरगया, और मरभी गया। अब बतलाईये, उस मनुष्यको क्या सरकार फांसी देगी? कभी नहीं। फांसीतो क्या, किसी प्रकारकी शिक्षा भी नहीं करेगी। बल्कि सरकार उसको दिलासा देगी। क्योंकि–उसका इरादा, लडकेको मारनेका था ही नहीं। यदि इरादे पूर्वक लडकेको मारता तो जरूर फांसीका हुकम होता।

बस, इसी तरह जिसका इरादा जीवोंके बचानेका है, उसको जीवोंके बचानेका ही फल मिलेगा। न कि–जीव बच करके पाप कार्य करेंगे, उसका। जीव बच करके चाहे सो कार्य करें, इससे बचानेवालेको क्या ताल्लुक?।

प्रियपाठक, तेरापंथी जीवको बचानेमें जो पाप समझ बैठे हैं, इसका यही कारण है कि–" वे समझते हैं कि, अगर मरते हुए जीवको बचावेंगे, तो बचनेके बाद वह जीव, जो संसारमें पाप करेगा, उन पापोंकी माला हमारे गलेमें आ पडेगी। " बडी भारी फिलॉसोफी निकाली। जो कार्य, तुम न करोगे, न कराओगे और न अनुमोदन भी करोगे, तो फिर उसका फल तुम्हें आकर कैसे चिपक जायगा?। क्या 'कृतका नाश, और अकृतका आगम' तुम्हारे धर्मप्रवर्तक भिखुनजीने दिखलाया है?। यदि यही तुम्हारी फिलॉसोफी है, तो मरते हुए तुम्हारे साधुको भी न बचाना चाहिये। क्योंकि–वह जीएगा तो खायगा, टट्टी जायगा इत्यादि कार्योंको करेगा, तो उसका पाप बचानेवालेको लग जायगा। वैसे मरते हुए माता या पिताको भी न बचाने चाहियें। क्योंकि–वे जीएंगे तो संसारमें अनेक प्रकारके आरंभ–समारंभ के कार्योंको करेंगे, विषय सेवन करेंगे, लडके–लडकियोंको पैदा करेंगे, ये सब पाप, बचानेवालेको लगेंगे। अच्छा, इतना

ही क्यों ? हम तो कहते हैं कि–यदि ऐसा ही होता तो किसीको साधु भी न बनाना चाहिये। क्योंकि–साधु हो करके, वह देवलोकमें जायगा। वहां अव्रती–अपचक्खानी होगा। इतना ही नहीं, वहाँ देवांगनाओंसे भोग भी भोगेगा। तो यह सब पाप भी तेरापंथियोंके मन्तव्यानुसार, दीक्षा देनेवालेको लग जाने चाहियें। और अगर ऐसे ही पाप लगते हों, तो फिर मूँडते ही क्यों हैं ?।

कहना कुछ, और करना कुछ, यह अज्ञानता तेरापंथियोंमें खूब ही देखी। अस्तु, अब इस वृत्तान्तको हम यहाँ ही छोडकर, थोडी देरके लिये, तेरापंथी, इस विषयमें जो कुतर्क करते हैं, उनको ही देखें। पश्चात् जैनसूत्रोंके पाठोंसे और युक्तियोंसे भी अनुकंपाको सिद्ध करेंगे।

पाठकोंको एक बात फिरसे समझ लेनी चाहिये। तेरापंथियोंका यह मन्तव्य है कि–'असंयती जीवोंका न जीना चाहना चाहिये, न मरना। किन्तु तैरना चाहना चाहिये।' जैसे, महालचन्द बयद लिखित 'जिनज्ञानदर्पण प्रथमभाग' के ८१ वें पृष्ठमें लिखा है:–

"असंजति अव्रती जीवको जीवणो बंछणो के मरणो बंछणो:–असंजतिको जीवणो बंछणो नहीं मरणो बंछणो नहीं, संसारसमुद्रसें तिरणो बंछणो, ते श्रीवीतरागदेव को धर्म छै।"

बस, ऐसा समझ करके ही मरते हुए जीवोंको वे नहीं बचाते। तेरापंथी साधुओंके सिवाय, संसारके समस्त जीवोंको वे 'असंयती' ही मानते हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि–सिवाय तेरापंथी साधुओंके, अगर संसारमें रहा हुआ कोई भी जीव मरता होगा, तो उसको बचानेका प्रयत्न वे नहीं करेंगे।

बस, इसी स्वकल्पित सिद्धान्तको पुष्ट करनेके लिये ही, उन्होंने सूत्रोंके पाठोंके अर्थ उलटे किये, अनेकों प्रकारके कुतर्क किये, और यावत् परमात्मा महावीरदेवको भी 'चूके' कह दिये। कितना अनर्थ ! कितनी धृष्टता ! कितनी अज्ञानता ! । जन्मसे ही

तीन ज्ञानों (मति–श्रुत–अवधि) को धारण करनेवाले, दीक्षा के पश्चात् चतुर्थ (मनःपर्याय) ज्ञानसे विभूषित तथा अप्रमत्तसंयमवाले भगवान् तो 'चूक' गये, और भीखमजी, कि जिसके ज्ञानकी पूंजी, इस ग्रन्थके प्रारंभमें ही दिखला दी है, वे न चूके। भगवान् तो भूल गये, और भट्टाचार्य भीखमजीने सही २ कहा।

वाहरे कुपुत्रता ! तूने भी संसारके मनुष्यों पर अपना प्रभाव अच्छा ही जमाया है। जिन माता–पिताओंने बडे परिश्रम, अतुलित खर्च और अनेकों कष्टोंका सामना करके लडकोंको बडे किये हों, उन्हीं माता–पिताओंको गालियां देनेवाले हजारों कुपुत्र संसारमें देखे जाते हैं, परन्तु संसारमें ऐसे भी स्वयं बनबैठे हुए कुपुत्रोंके देखनेका दौर्भाग्य मिला, कि जो जगज्जीवहितावह परमात्मा–परमेश्वरको भी 'चूके' कहनेका दुःसाहस करते हैं।

अस्तु, हम कहाँ तक अपना अफसोस प्रकट करते रहेंगे ? । अभी बहुत कुछ लिखनेका है, अतएव उन तेरापंथियोंके कुतर्कोंको ही प्रथम देखें।

जैसे दो मनुष्य लडते हों, और उनमेंसे कमजोर मनुष्य, वारंवार गालियोंका ही मंगलपाठ करके अपनी जीत दिखलानेका प्रयत्न करता है, वैसे हो तेरापंथी भी, इस अनुकंपाके विषयमें, एकही दृष्टान्तको जहाँ तहाँ खडा कर देते हैं।

तेरापंथियोंने अनुकंपाके निषेध करनेमें एक दृष्टान्त पकड़ लिया है। वे कहते हैं कि–'एक गृहस्थको पेटमें बहुत दर्द हो रहा है। उस समय साधुजी वहाँ आए। गृहस्थ कहता है कि–आपके, पेटपर हाथ फिरानेसे आराम हो जायगा। लेकिन साधुजी कहते हैं कि–यह हमारा धर्म नहीं। जब गृहस्थको बचानेका धर्म नहीं है, तो बिल्लीसे चूहेको, कुत्तेसे बिल्लीको इत्यादि जीवोंके छुडानेमें कैसे धर्म आ गया ?।'

'विवाहकी वरसी' करनेवाले तेरापंथियोंकी बुद्धिमत्ताको देखिये। कहाँ तो गृहस्थका दृष्टान्त और कहाँ आफतमें आए हुए जीवोंके बचानेका ?।

गृहस्थको पेटमें दर्द हो रहा है, उस दर्दको हटानेके लिये गृहस्थको साधुके पास जानेकी आवश्यकता ही क्या है ?। क्योंकि–उन लोगोंके लिये तो संसारमें वैद्य मौजूद ही हैं। और क्या साधु, वैद्य हैं, जो उनसे रोग मिटानेकी प्रार्थना करें ?। यदि इस तरहसे साधु, रोग मिटाते फिरेंगे, तो किसी समय गृहस्थ उसकी स्त्रीके भी रोगके मिटानेकी प्रार्थना करेगा। फिर तो वे साधु ही काहेको ठहरे? एक प्रकारके वैद्य ही समझ लो न ?। कहनेका मतलब कि–गृहस्थ लोग हजारों उपाय करके रोग मिटा सकते हैं, परन्तु चूहे–बिल्ली वगैरह स्वयं बचनेके लिये क्या उपाय कर सकते हैं ?। और एक यह भी बात है कि गृहस्थ, पेटमें दर्द होने के कारण मर ही जायगा, अथवा साधुके हाथ फिरानेसे बच ही जायगा, ऐसा निश्चित ज्ञान क्योंकर हो सकता है ?। और यदि इस प्रकारका ज्ञान साधुको हो भी जाय कि, 'इस मनुष्यके लिये संसारमें दूसरा कोई उपाय नहीं रहा है–अन्य किसी उपायसे बचनेवाला

नहीं है, और मेरे हाथ फिरानेसे ही यह बचनेवाला है, तो उस अवस्थामें अनुकम्पाकी बुद्धिसे, साधु हाथ फिरावे और उसको बचावे, तो कोई हर्जकी बात नहीं है। क्योंकि–यहाँ साधुको किसी प्रकारका स्वार्थ नही है। सिर्फ अन्य कोई उपाय न होनेके कारण, अपवाद मार्गमें ऐसा करना पडता है। और इस प्रकार अपवादके समय गृहस्थकी वैयावृत्त्य करनेके लिये शास्त्रकारोंका फरमान भी है। जैसे–न्यायविशारद–न्यायाचार्य श्रीमद्यशोविजयजी उपाध्याय, अपनी बनाई हुई 'द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका' की प्रथम द्वात्रिंशिकामें लिखते हैं किः—

"वैयावृत्त्ये गृहस्थानां निषेधः श्रूयते तु यः।
स औत्सर्गिकतां बिभ्रन्नैनस्यार्थस्य बाधकः॥ १२॥

अर्थात्—गृहस्थोंकी वैयावृत्त्यमें, जो निषेध सुना जाता है, वह उत्सर्ग मार्ग है। और इससे अपवादमार्गमें कोइ हरकत नहीं आसकती। अर्थात् अपवादमार्गमें इसका निषेध नहीं है।

इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि–अपवादके समय साधु, अगर ऐसा कार्य कर भी ले तो कोई हर्जकी बात नहीं है।

बात यह है कि–प्रत्येक कार्यमें परिणाम देखा जाता है। भगवान् महावीरदेवने गोशालेको बचाया, इसमें क्या था ?। इसमें भी भगवान्ने अनुकंपाके आनेहीसे गोशालेको बचाया है। देखिये, भगवतीसूत्र, श० १५, उ० १, पत्र १२१७ में कहा हैः—

"तएणं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अणुकंपयणट्टाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स सा उसिणतेयलेस्सा तेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा अहं सीयलियं तेयलेस्सं णिसिरामि।"

अर्थात् —तब, हे गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशालकी अनुकंपाके कारण, बालतपस्वी वैश्यायनकी उग्रतेजोलेश्याके तेजको दूर करने के लिये, मैंने शीतलेश्या छोडी।

यहाँ पर भगवान्ने स्वयं श्रीमुखसे फरमाया है कि—'मैंने अनुकंपाके कारण ही गोशालेको बचाया है।' अर्थात् गोशालेको बचानेमें अनुकंपा ही कारण है। और कुछ नहीं।

अब सोचनेकी बात है कि—जब भगवान्ने ही अनुकंपाके कारण जीवको बचाया है, तो फिर हम लोग बचावें, इसमें आश्चर्य ही क्या है ?। जब तेरापंथियोंकी यहाँपर एक भी न चली, तब उन्होंने कह दिया कि—'भगवान् चूके'.

तेरापंथीलोग, भगवान्को 'चूके' दिखलाते हैं, इसका तो हम जवाब आगे जाकर लिखते हैं, परन्तु अभी तेरापंथियोंकी इस विषयमें द्विधावाक् नहीं, अनेकों वाक् दिखलाना उचित समझते हैं।

तेरापंथियोंके 'अनुकंपा रास' की प्रथम ढालकी ११ से १५ कडियोंमें लिखा है:—

" साधां ने लब्ध न फोरणी जी सूत्र भगोती मांय।
पिण मोहकर्मवसरागथी, तिणसुं लियो गोसालो बचाय॥११॥
छ लेश्या हुंती जद वीरमें जी, हुंता आठोई कर्म।
छद्मस्थ चूका तिण समेजी, मूरख थापे धर्म॥ १२॥
छद्मस्थ चूक पर्यो तिकोजी, मूढ आणे बोल।
पिण निरवद्य कोय मजाणज्याजी, सकल हियारी षोल॥१३॥
ज्यूं आणंदश्रावकने घरेजी, गोतम बोल्या कूर।
परिया छदमस्थ चूकमें, सुध हुय गया वीर हजूर॥ १४॥
इम अवस उदे मोह आवियोजी, नहीं टाल शक्या जगनाथ।
एतो न्याय न जाणियोजी, ज्यारे मांहे मूलमिथ्यात ॥१५॥

है बचनका ठिकाना ?। ऊपरकी पांचों कडियोंमें भिन्न २ कारण दिखलाए हैं। अब इनमेंसे सच्चा कारण कौनसा मानना ?।

वास्तवमें देखा जाय तो, गोशालेको बचानेमें उपर्युक्त कारणोंमेंसे एक भी कारण नहीं है, गोशालेको बचानेमें जो कुछ कारण था, वह 'अनुकंपा' ही था। और यह कारण. स्वयं भगवान्ने श्रीमुखसे फरमा ही दिया है। यदि उपर्युक्त कारणोंमेंसे कोई एक कारण होता, तो भगवान् वही कारण दिखलाते।

इसके सिवाय १४ वीं कडीमें गौतमस्वामी और आणंद श्रावकका जो प्रसंग उपस्थित किया है, वह भी अप्रासंगिक ही है। क्योंकि–गौतमस्वामीकी भूल तो स्वयं भगवानने दिखलाई है, और 'मिच्छामि दुक्कडं' दिलवाया, ऐसा लिखा हुआ मिलता है। परन्तु गोशालेको बचानेसे 'भगवान चूके' अथवा 'चूकनेसे मिच्छामि दुक्कडं दिया' ऐसा किसी सूत्रमें लिखा हुआ नहीं मिलता, तो फिर भगवान् और गौतमस्वामीका साम्य क्योंकर किया जा सकता है ?।

तेरापंथिलोग, अभी तक इस बातको समझे ही नहीं है कि– 'भगवान्की छद्मस्थ और केवली दोनों अवस्थाओंकी निर्दोष ही करणी होती है। और भगवान् वही कार्य करते हैं, जिसमें गुण देखते हैं। अकार्यको कभी भगवान् करते ही नहीं। जब ऐसा ही नियम है, तो फिर तेरापंथी बतावें कि–भगवान्के किये हुए इस कार्यको अकार्य कैसे कहते हो ?। अगर यह कहो कि–'भगवान्में इस कार्यके समय सरागसंयम था, इस लिये भगवान् चूके'। तो यह भी ठीक नहीं है। हमने मान लिया कि भगवान्में सरागसंयम था, परन्तु इससे भी इस कार्यमें 'चूके' नहीं कह सकते हैं। क्योंकि–यद्यपि भगवान् सरागसंयमी थे, तो भी राग–लेश्या

वगैरह जितनी बातें पाई जातीं हैं, वे प्रशस्त ही पाई जातीं हैं, अप्रशस्त नहीं। हम पूछते हैं कि-भगवान्, संयम-तप वगैरहकी आराधना करते हैं, वे सरागपनेसे करते हैं कि-निरागपनेसे ?। यदि सरागपनेसे करते हैं, तो फिर इन कार्योंमें भगवान्को 'चूके' क्यों नहीं कहते ?। इन कार्योंमें भी भगवान्को 'चूके' कहने चाहिये। अच्छा। भगवान् संयमादि कार्य निरागपनेसे करते हैं, ऐसा तो कह ही नहीं सकते हो। क्योंकि-दशवें गुणठाणे पर्यन्त तो सरागपना रहता ही है। और जब तक सरागपना है, तब तक लब्ध्युपजीवीपना भी रहता है, अर्थात् लब्धि फोरनेका कारण भी रहता है। वीतराग अवस्थामें यह कारण नहीं रहता। इसी लिये तो भगवतीसूत्रके १२१७-१८ पत्रके उपर्युक्त पाठमें, टीकाकारने स्पष्ट खुलासा कर दिया है कि:—

"इह च यद् गोशालकस्य संरक्षणं भगवता कृतं तत्सरागत्वेन दयैकरसत्वाद्भगवतः, यच्च सुनक्षत्रसर्वानुभूतिमुनिपुङ्गवयोर्न करिष्यति तद्वीतरागत्वेन लब्ध्यनुपजीवकत्वादवश्यभाविभावत्वाद्वेत्यवसेयमिति।"

अर्थात्–भगवान्ने गोशालेका जो संरक्षण किया है, उसमें भगवान्का 'दयामयपरिणाम ही' कारण है। और जिस समय सुनक्षत्र-सर्वानुभूतीका प्रसंग आया, उस समय भगवान्में वीतरागत्व होनेसे उन दोनोंको बचानेका उन्होंने कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। क्योंकि-उस समय लब्धि फोरनेका भी कोइ कारण नहीं रहा था, और भावीभावको भी भगवान् जानते थे कि-ऐसा होनेवाला है। परन्तु जब भगवान् छद्मस्थावस्थामें थे, उस समय कार्यविशेषोंमें लब्धिफोरना अपना कर्तव्य समझते थे, और जान बूझ करके ही भगवान्ने गोशालेको बचाया है, तो फिर उसमें भगवान्को 'चूके' कहना

कितनी भारी भूल—महामिथ्यात्वका कारण है! यह पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं।

तेरापंथियोंका यह कहना भी सरासर झूठा है कि—'भगवान्ने लब्धि फोरी इस लिये चूके'। भगवान्ने अपने स्वार्थके लिये लब्धि नहीं फोरी। अथवा किसी और माया—कपटसे नहीं फोरी। सिर्फ जीवको बचानेके आशयसे ही फोरी है। और इस तरहसे संघादिके कार्योंके लिये साधु अगर लब्धि फोरे, तो उसमें भगवान्की आज्ञा ही है। देखिये, भगवती सूत्रके तीसरे शतकके पांचवें उद्देशेमें, पत्र २८१ में कहा है:—

" से जहा नामए केइपुरिसे असिचम्मपायं गहाय गच्छेज्जा। एवामेव अणगारेवि भावियप्पा असिचम्मपायंहत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासंउप्पएज्जा ? हंता उप्पइज्जा।"

अर्थात्—जैसे कोई पुरुष, ढाल—तलवारको ग्रहण करके जाय, वैसे भावितात्मा—साधु, हाथमें ढाल—तलवारको लेकरके संघादिकके कार्योंके लिये ऊर्ध्व—आकाशमें जावे ? हे गौतम जाय।

अब विचारनेकी बात है कि—यदि साधुको लब्धिफोरनेका निषेधही होता, तो भगवान् यहाँ आज्ञा ही क्यों देते ? इतनी जरूर बात है कि—साधु अन्य किसी स्वार्थी कार्यके लिये लब्धि न फोरे!।

जो लब्धिफोरनेकी चर्चा, ऊपर की गई है, उस लब्धिके विषयमें भी तेरापंथियोंके परस्पर ऐसे विरोधी वाक्य मिलते हैं, जिनको देखकर यही कहना पडता है कि—तेरापंथी मतके उत्पादक भीखुनजीमें शास्त्रकी तो गन्ध तक भी नहीं थी। बल्कि भांगकी ठंडाई पी पी करके ही बैठे २ कल्पनाएं की हों, ऐसे प्रतीत होता है। (जैसे

आज कल भी उनके साधु भांगकी ठंडाई लेते हुए, बहुतसे लोगोंके दखेनेमें आते हैं।)

देखिये, भीखमजी, अपनी बनाई हुइ अनुकंपाके रासकी प्रथम ढालमें लिखते हैं:—

'साधांनें लबध न फोरणीजी, सूत्र भगोती मांय।'

बिलकुल झूठ बात है। साधुने लब्धि नहीं फोरना, ऐसा भगवती सूत्रमें कहा ही नहीं। हां, यह जरूर कहा है कि—'वैक्रिय-लब्धि साधु फोरवे, और पश्चात् आलोचना न करे, तो वह विराधक है।' और यही बात, तेरापंथीके पूज्य जीतमलजीने अपने बनाए हुए प्रश्नोत्तरके ६ पेजमें लिखी है कि—'भगवती श०—३ उ०४ वक्रियलबधि फोरे तिणन इम कह्यौ बींना आलोया मरे तेहने अराधक (आराधक नही विराधक चाहिये) कह्यौ ३।" इन्हीं जीतमलजीने हितशिक्षाके गोशालाधिकारमें लिखा है:—

" आहारादिक लब्धिफोडवे, कह्यो विराधक ताहि।
भगवती तिजा शतक, तुर्य उद्देशक मांहि " ॥ १७ ॥

जीतमलजीने भी यहाँपर भीखमकी तरह गप्पें ही मारी हैं अपने ही बनाये हुए प्रश्नोत्तरमें और इस गोशालाधिकारमें परस्पर कैसा विरोधी लिख मारा है, इसको पाठक देखें। भगवतीके ३ शतक, ४ उद्देशेमें 'आहारक' लब्धिका नाम नहीं है, वैक्रियलब्धिका प्रसंग है। और वह भी लब्धि फोरने मात्रसे विराधक नहीं कहा, विना आलोचे मरे तो विराधक कहा। और यह बात जीतमलजी अपने प्रश्नोत्तरमें स्वीकार भी करते हैं।

इसी प्रकार, इसी तीसरे शतकके चौथे उद्देशेका एक पाठ हमने पहिले देही दिया है, जिसमें यह दिखलाया गया है कि—

संघादिकके कार्यके लिये साधु लब्धि फोरवे तो, उसमें भगवान्‌की आज्ञा है।

इन सब बातों पर विचार करनेसे 'साधु लब्धि न फोरवे' ऐसा भीखमजीका कहना नितान्त झूठ ही मालूम होता है। यदि लब्धि फोरनेका एकान्त निषेध ही होता, तो आराधक-विराधकका प्रश्न ही क्यों उठता, और संघादिक कार्यके लिये भगवान् आज्ञा ही क्यों देते ?। आराधक-विराधकका विचार तो साधुके लिये हरएक बातमें रहा हुआ है। बहुत लंबा विचार क्यों करें। साधु, सौ कदमके आगे जाय, तो उसको 'इरियावहिया' करनेको कहा, यदि इरियावहिया न करे, और काल कर जाय, तो विराधक कहा। अब बतलाईये, क्या हुआ ?। इससे कोई यह कह सकता है कि-'साधुको, भगवान्‌ने सौ कदमसे आगे जानेको कहा ही नहीं ?।' कभी नहीं। इसी प्रकार लब्धिके विषयमें भी समझ लेना चाहिये।

इत्यादि बातोंके विचार करनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि-भगवान्, गोशालेको बचानेमें किसी प्रकार चूके नहीं हैं। और एक यह भी बात है कि-भगवान् अगर कहीं पर भी चूके होते, तो सूत्रोंमें किसी न किसी जगह उल्लेख जरूर होता। और है तो नहीं। बल्कि सूत्रमें तो स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि-'भगवान्, दीक्षित होनेके पश्चात् किञ्चित्‌मात्र भी पाप सेवन नहीं करते है, न कराते हैं, न करनेवालेकी अनुमोदना करते हैं। जैसे आचारांग सूत्रमें, प्रथम श्रुतस्कंधके, नववें अध्ययनके चतुर्थ उद्देशेमें पृष्ठ १५० में कहा है:—

"णच्चा ण से महावीरे, णो चिय पावगं सयमकासी।
अन्नेहिं वा ण कारित्था, कीरंतंपि णाणुजाणित्था॥ ८॥"

अर्थात्—तत्त्वको जानकरके, महावीरदेवने, स्वयं पाप किया नहीं, कराया नहीं और करनेवालेको अच्छा समझा नहीं है।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि–भगवान्ने कोई पाप नहीं किया। अच्छा और देखिये। इसी *आचारांग सूत्रके नववें अध्ययन के चतुर्थ उद्देशमें पृ० १५२ में कहा है:—

" अकसाती विगयगेही य, सद्दरूवेसु अमुच्छिए झाति।
छउमत्थोवि विपरक्कममाणो ण पमायं सइंपि कुव्वित्था ॥१५॥

अर्थात्–कषायरहित, गृद्धि रहित और शब्दादिक विषयोंमें मूर्च्छा रहित भगवान्, हमेशा ध्यान मग्न रहते थे, और छद्मस्थावस्थामें भी प्रबल पराक्रम करते हुए किसी समय प्रमाद नहीं करते थे।

अब बतावें तेरापंथी, भगवान्के नहीं चूकनेके विषयमें अब भी कोई संशयकी बात रही ?। खास आचारांगसूत्रमें ही भगवान्की निर्दोषता–अप्रमादता खुल्लंखुल्ला लिखी है, तो फिर अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता ही क्या है ?।

यहाँपर तेरापंथी, एक इस कुतर्कको आगे करते हैं कि–"उपर्युक्त पाठोंमें तो भगवान्के गुण कथन किये हैं। गुणकथनमें, अवगुणका वर्णन नहीं हो सकता।" ऐसा कह कर कोणिकका दृष्टान्त देते हैं।

लेकिन इनका यह कुतर्क और दृष्टान्त दोनों ही निरर्थक हैं। क्योंकि, श्रीसुधर्मास्वामीने, अपने आपसे भगवान्के गुण वर्णन नहीं किये हैं। जिस प्रकार भगवान्ने केवलज्ञान होनेके पश्चात् फरमाया है,

* राजकोटमें छपा।

उसी प्रकार गुंथन किया है। भगवान्ने छद्मस्थावस्थामें किसी प्रकारका दोषीला कार्य किया होता, तो भगवान् जरूर फरमाते। लेकिन तेरापंथियोंसे हम पूछते हैं कि–'भगवान्ने अमुक समय, अमुक अकार्य किया' ऐसा कहीं पर आपके देखनेमें आया हो तो दिखलाईये। भगवान्ने तो निष्पक्षपाततासे जिसका जैसा कृत्य देखा-गुण, अवगुण देखा, वहाँ वैसा ही वर्णन किया है। कोणिकके विषयमें भी देख लीजिये।

कोणिकका जीव, श्रेणिकका पुत्र हो करके उत्पन्न हुआ था। कोणिकने, श्रेणिकके प्रति, जो अविनय किया था, इसका तो पश्चात्ताप स्वयं कोणिक इस प्रकार करता है:—

"अहो णं मए अधन्नेणं अपुन्नेणं अकयपुन्नेणं दुट्ठुकयं सेणियं रायं पियं देवयं अच्चंपं नेहाणुरागरत्तं निलयबंधणं करे" (निरयावलीसूत्र–पत्र–२४)

कोणिक स्वयं पश्चात्ताप करता हुआ कहता है:—'अहो, अधन्य, अपुण्य, अकृतपुण्य ऐसे मैंने दुष्टकृत्य किया, कि स्नेहानुरागकरके रक्त ऐसे देव समान पिता श्रेणिक राजाको निलय (बेडी) बंधन किया।'

देखिये, कोणिकने स्वयं अपने दुष्कृत्यका–अविनयका पश्चात्ताप किया, यह बात भगवान्ने फरमाई, और गणधर महाराजने गुंथन की। अब विचारनेकी बात है कि–मूलवृत्तान्तके साथमें इस बातका ताल्लुक ही क्या है ?। क्योंकि–आचारांगके पाठको यदि भगवान्का गुणवर्णन ही समझा जाय, तो ऐसा कोई पाठ तेरापंथी दिखा सकते हैं कि, जिसमें भगवान्की भूल दिखलाई हो। जैसा

कि–कोणिकका अविनय जाहिर किया । कोणिकका ही क्यों, खुद भगवान्के प्रथम गणधर श्रीगौतमस्वामीकी ही भूल जाहिर की है, तो फिर औरोंकी बात ही क्या ? केवली भगवान्के पास किसीका पक्षपात नहीं था ।

कहनेका तात्पर्य यह है कि–सूत्रोंमें जो कुछ वर्णन है, वह गणधर महाराजने अपने आपसे गुंथन नहीं कर दिया है। भगवान्ने जैसा फरमाया वैसाही गुंथन किया है। फिर भगवान्ने जैसे गुण दिखलाये, वैसे गुण, और अवगुण दिखलाये वैसे अवगुण । और ये भी भगवान्ने केवली अवस्थामें ही प्रकाशित किये हैं, इसलिये इनकी सत्यतामें अणुमात्र भी संदेह लाया नहीं जा सकता । अब भगवान्की निर्दोषता जैसे सूत्रोंमेंसे मिलती है, वैसे किसी जगह भगवान्के चूकनेका वृत्तान्त देखनेमें नहीं आता, इससे स्पष्ट मालूम होता है कि–तेरापंथियोंका, दया महादेवीसे–अनुकंपासे द्वेष होनेके कारण ही, भगवान्के ऊपर ऐसा असद्भूत कलंक उन्होंने लगाया है ।

तेरापंथी कहते हैं कि–" भगवान्ने गोशालेको बचाया, इसमें फायदा क्या निकाला ? । गोशालेने और मिथ्यात्व बढाया, और भगवान्को लोहीठाणा हुआ । गोशाला मरता तो दोनोंमेंसे एक भी बात न होने पाती । "

तेरापंथियोंका यह नियम यदि ठीक २ ही है, तो पहिले तो उन तेरापंथियोंको ही चाहिये कि–मरते हुए माता–पिताओंको या लडके लडकियोंको न बचावें । क्योंकि–वे भी तो जी करके अवश्य पाप करेंगे ही ।

लेकिन, यह कहो कि–भगवान्‌की उससमय यह दृष्टि नहीं थी कि–गोशालेको बचाऊंगा तो पीछेसे ऐसा अनर्थ होगा ? । भगवान्‌की दृष्टि सिर्फ किसी न किसी प्रकारसे जीवको बचानेकी ही थी । और इसीसे बचाया था । तभी तो हम कहते हैं कि–चाहे कैसा ही संसारमें पापोंको करनेवाला मनुष्य क्यों न हो, परन्तु वह भी अगर दुःखी अवस्थामें हो, तो उसे बचानेके प्रयत्न अवश्य ही करने चाहियें ।

कदाचित् कोई यह कहे कि–'भगवान्‌ने गोशालेको स्वीकार ही क्यों किया और बहुश्रुत ही क्यों किया, जो पीछेसे ऐसे अनर्थोंको करनेवाला हुआ ।' लेकिन यह कहना भी ठीक नहीं है । क्यों कि, भगवान् परम कृपालु थे । इसी लिये गोशालेको स्वीकृत और बहुश्रुत किया था । और साधु पुरुषोंका कर्तव्य भी यही है कि–दूसरेके हितकरनेमें तत्पर रहना । जैसे कहा है:—

" कस्याऽऽदेशात् क्षपयति तमः सप्तसप्तिः प्रजानां ?
छायां कर्तुं पथि विटपिनामञ्जलिः केन बद्धः ? ।
अभ्यर्थ्यन्ते नवजलमुचः केन वा:सृष्टिहेतो–
र्जात्यैवैते परहितविधौ साधवो बद्धकक्षाः " ॥ १ ॥

परन्तु पीछेसे गोशाला अपने दौर्भाग्यसे उलटे रस्तेपर चला गया, तो उसमें भगवान् क्या करें ? । और एक यह भी बात है कि–होनहारके आगे किसीका कुछ नहीं चलता । इसी लिये तो हम पहिले कह आए हैं कि–केवली भगवान्‌की प्रवृत्ति भी होनहारके अनुकूल ही होती है । यदि ऐसा न होता तो भगवान्‌ने, केवलज्ञान होनेके बाद भी जमालीको शिष्य ही क्यों किया, जो पीछेसे भगवान्‌के शासनमें निह्नव हुआ ? । क्या भगवान् यह नहीं जानते थे कि–' यह निह्नव होगा ? । जानते थे, परन्तु होनहारका प्रतीकार नहीं हो सकता ।

कदाचित् कोई यह कहे कि–' भगवान्ने जमालीको दीक्षा नहीं दी थी।' परन्तु यह ठीक नहीं है। जिस समय जमालीके माता–पिताने भगवान्के पास आकर भगवान्से शिष्यकी भिक्षा लेनेके लिये प्रार्थना की है, उस समय भगवान्ने स्वीकृत ही किया है। देखिये भगवती सूत्र, श० ९, उ० ३३ का पाठः—

' तं एसणं देवाणुप्पियाणं अम्हे सीसभिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सीसभिक्खं, अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं!" (पत्र ८३५)

अर्थात्–' हे देवाणुप्रिय! आपको हम, यह शिष्यभिक्षा देते हैं, इसको आप स्वीकार करें।' पश्चात्, भगवान्ने कहाः– ' यथासुखं, प्रतिबंध मत करो।'

बस, इससे स्पष्ट है कि—भगवान्ने जमालीको जरूर स्वीकृत किया था।

देखिये, इसी प्रकार भगवान् ऋषभदेवस्वामीने भी चार हजार पुरुषोंको दीक्षा दी। और वे सबके सब क्षुधावेदनाके परिषहको नहीं सहन करते हुए, भाग गये और गंगाके किनारे तापस हो कर जा बैठे। इतना ही नहीं, उन्हींमेंसे कई लोगोंने पाखंडमत भी चलाए। अब, बतलाईये, इसमें ऋषभदेव भगवान् क्या करें? । भगवान्ने तो उन लोगोंको तारनेके लिये दीक्षा दी थी। पीछेसे, उन लोगोंके दौर्भाग्यसे अनर्थ हुआ, तो इसमें भगवान्का क्या दोष ? । क्या यहाँ भगवान् ऋषभदेवस्वामीको भी चूके कहोगे ? । लेकिन नहीं, दौर्भाग्यके कारण अच्छे मनुष्योंकी बुद्धिमें भी विकार हो जाता है, परन्तु इसमें उपकारी पुरुषोंका दोष नहीं गिना जा सकता है

मनुष्यकी बुद्धिमें जब अजीर्ण होता है, तब उन्हें तत्त्वकी बातके समझनेकी शक्ति जरासी भी नहीं रहती। यही हाल तेरापंथियोंका भी हुआ है। तभी तो वे विना समझे ही ऐसी २ शंकाएं करते हैं कि—

" उपाश्रयमें किसी श्रावकको मृगी आई और वह गिर गया, उसको साधु उठावे नहीं, तो फिर साधुके सामने मालेमेंसे गिरे हुए पक्षीको उठा कर क्यों रक्खे ?। बिल्ली चूहेके पीछे पडी हो, तो उस चूहेको क्यों बचावे ?। जलते हुए मकानमेंसे, किंवाड खोल पशुओंको क्यों निकाले ?। गाडाके नीचे बालक आजाय तो उसको क्यों उठा ले ?। इत्यादि।" (देखो अनुकंपा-रासकी प्रथम ढाल)

इन शंकाओंसे तेरापंथियोंने अपने मतको जाहिर किया कि— 'मालेमेंसे पक्षी गिर पडे तो उसको उठाकर अलग नहीं छोडना चाहिये।' 'बिल्ली चूहेको और कुत्ता बिल्लीको मारता हो तो उन्हें नहीं बचाने चाहियें।' 'मकानमें पशु जल रहे हों, तो उस मकानका किंवाड नहीं खोलना चाहिये।' 'गाडाके नीचे बच्चा आ जाता हो, तो उसको भी उठाकर अलग नहीं रखना चाहिये।'

तेरापंथियोंकी दया उन्हींको मुबारिक रहे। क्या दुनियामें ऐसी दयावाला धर्म भी कहीं होगा ?। तेरापंथियोंने उपर्युक्त 'गृहस्थ' के दृष्टान्तके साथमें और बातोंका मुकाबला कर, निषेध किया है, यह बडी भारी भूल की है। श्रावकको मृगी आई और वह गिर गया, तो उसको साधु न उठावे, ऐसा कहा किसने ?। अगर उस स्थान-पर कोई गृहस्थ नहीं है, और वह श्रावक बहुत दुःखी हो

रहा है, तो उसको उठानेकी कहीं भी मना नहीं। हमारे साधुओंका हृदय, तेरापंथियोंके जैसा निर्दय नहीं है, कि–वे अपने सामने पडे हुए दुःखी जीवको, अपने धर्मकी रक्षापूर्वक, बचानेका प्रयत्न न करें।

तेरापंथी कहते हैं कि—

" मुसादिकने बचावता जी पिनकीने दुःख थाय "

अर्थात्–"बिल्ली चूहेको पकडती हो, तो उस समय यदि चूहेको बचाया जाय, तो बिल्लीको जरूर दुःख होगा। इस लिये उसको नहीं बचाना चाहिये। क्योंकि उसके भोजनमें अंतराय होगी। दूसरा यह भी कहते हैं कि–चूहेको बचानेसे चूहेपर राग और बिल्लीपर द्वेष होगा, इस लिये ऐसे राग–द्वेषका कार्य नहीं करना चाहिये।"

चूहेके नहीं बचानेमें तेरापंथियोंकी, ये दोनों युक्तियाँ निरर्थक ही हैं। देखिये। प्रथम तो बिल्लीको दुःख होनेका कहना ही झूठा है। मनुष्य चूहेको बचावेगा, वह इस अभिप्रायसे नहीं बचावेगा कि, मैं बिल्लीके भोजनको छीन कर उसे कष्ट पहुँचाऊं। चूहेको बचानेवालेका अभिप्राय जीवके बचानेका और बिल्लीको अधिक पापके करनेसे अटकानेका ही है। जैसे, एक विषमिश्रित दूधसे भरा कटोरा पडा है। उसको उठाकर एक अत्यन्त भूखा बालक उसे पीनेका प्रयत्न करने लगा। वहाँ बैठे हुए दुसरे मनुष्यने यदि वह कटोरा छीन लिया, तो कहिये, उस मनुष्यको धर्म होगा या पाप ?। और उस मनुष्यको अन्तराय लगेगी या नहीं ?। कहना ही होगा कि–उस मनुष्यको पाप नहीं, किन्तु धर्म होगा। अन्तराय नहीं लगेगी, किन्तु जीवके बचानेका महान् लाभ होगा।

इस मनुष्यका यहाँ यह इरादा–अभिप्राय यह नहीं है कि–मैं इस दुःखको छीनकर बालकको कष्ट पहुँचाऊं। उसका तो इरादा है बालकको बचानेका।

नैतिक रीतिसे भी यहाँ विचार किया जाय तो मालूम हो सकता है कि–बिल्लीका अधिकार ही क्या है, जो चूहे पर इस प्रकारके अन्यायसे आक्रमण करे ?। और ऐसे अन्यायको रोकना, यह क्या सज्जनोंका धर्म नहीं है ?। अवश्य है। सज्जनोंका यह परम कर्तव्य है कि, 'सबल जीव, दुर्बल जीवके ऊपर आक्रमण करता हो–अत्याचार करता हो–अन्याय करता हो, तो उसको रोकनेके लिये यथाशक्ति अवश्य ही प्रयत्न करें।'

दूसरा कारण राग-द्वेषका दिखलाते हैं, यह भी ठीक नहीं है। अर्थात् चूहेको बचानेसे चूहे पर राग और बिल्लीपर द्वेष नहीं होसकता। यहाँ राग–द्वेष होनेका कारण ही क्या है ?। चूहेने कौनसा हमारा कार्य कर दिया है कि जिसने उसपर राग हो। और बिल्लीने कौनसा हमारा कार्य बिगाड डाला है, जिससे हमारा उसपर द्वेष हो। अगर बिल्लीपर हमारा द्वेष ही होता तो, हम, उसी समयमें एक कुत्ता आकर बिल्लीको मारने लगे, तो, उस बिल्लीको क्यों बचावें ?। लेकिन नहीं, उस समय हम बिल्लीको भी बचावेंगे। अब कहाँ रहा राग–द्वेष ?। इस लिये समझना चाहिये कि–जीवोंको जो बचाये जाते हैं, वे रागसे नहीं, किन्तु दयाके परिणामसे–अनुकंपाकी बुद्धिसे। बस, इसी प्रकार जिस अभिप्रायसे, बिल्लीसे चूहेको और कुत्तेसे बिल्लीको बचाये जाते हैं, उसी अभिप्रायसे गिरे हुए पक्षीको मालेमें रखनेमें, जलते हुए मकानके किंवाडोंको खोल पशुओंको निकालनेमें और गाडेके नीचे आए हुए बच्चेको उठाकर अलग रखनेमें

किसी प्रकारकी हानि नहीं, किन्तु लाभ ही हैं। क्योंकि–यहाँ बचानेवालेके ऐसे तुच्छ अभिप्राय नहीं होते हैं कि पक्षी पशु और बच्चा, ये जीएंगे तो खायगें–पीएंगे–जंगल जाएंगे–विषय सेवन करेंगे, वगैरह पापकर्म करेंगे इसका पाप हमें लगेगा ?। बचानेवालेका परिणाम जीव बचानेका ही होता है। और जैसा परिणाम होता है, वैसाही लाभ होता है, यह तो पहिले ही कहा जा चुका है।

तेरापंथियोंने, दयाको (!) यहाँतक बढा कर कहा है कि:—

" गिरसतरे लागी लायो, घरबारे नीकलीयो न जायो।
बलता जीव त्रिलविल बोलै साधु जाय किंवार न षोलै"॥५॥

(अनुकंपारास, ढाल–६)

छीं छीं छीं, निर्दयताकी हद आ चुकी। घरमें रहे हुए अनेकों मनुष्य अग्निसे जलनेके कारण चिल्लाहट कर रहे हों, लेकिन साधु मजेसे देखता रहे। कितनी निर्दयता ? कितनी कठोरता ?। ऐसे भी धर्मको, लोग संसारसे पार उतारनेवाला समझते हैं ?। क्याही लोगोंकी मूर्खता ?। भगवान् महावीरदेव, प्रभु पार्श्वनाथ वगैरह तीर्थंकर, कि जिनको यह निश्चय है कि–हमारी इसी भवमें मुक्ति होनेवाली है, वे तो अनुकंपासे जीवोंको बचावें, और इस तेरापंथीके साधु (!) आनंदसे जीवोंको जलते हुए देखें। धन्य है इस पंथको।

तेरापंथियोंने, इस अनुकंपाके विषयमें, ऐसी तो ऊटपटांग बातें, विना समझे लिख मारी हैं, जिनको पढ कर बुद्धिमान लोग सिवाय उनपर तिरस्कार करनेके और कुछ नहीं कर सकते।

कहीं तो कह दिया 'यह अनुकंपा आज्ञामें है'। कहीं कह दिया 'यह अनुकंपा आज्ञा बाहर है।' कहींपर मोहके प्रसंगोंको अनुकंपामें ला घुसाये, और कहीं भगवानपर ही चूकनेका कलंक लगा दिया। यही तो अनुकंपाके रासमें पचरंगी पडदे हैं। पहिले अनुकंपा रासकी दूसरी ढालको देखिये। इस ढालमें पहिले तो यही दिखलाया है कि—

" वंछे मरणो जीवणो, तो धर्मतणो नहि अंस।
ए अणकंपा कीधां थकां, वधे कर्मनो वंस " ॥ १ ॥

मंगलाचरण क्याही अच्छा किया ?। जीवका मरना न चाहना यह तो ठीक, परन्तु जीना भी नहीं चाहना ?। अच्छा, तेरापंथी क्या यह भी कुछ कह सकते हैं, कि जीना मरना अपना नहीं चाहना, या दूसरे जीवोंका ?। अगर 'अपना' कहेंगे, तो हमें बतावें कि–रोज खाते–पीते क्यों है ?। बीमार पडते हैं तब दवाई क्यों कराते हैं ? और टट्टी भी क्यों जाते हैं ?। क्या यह 'जीना नहीं चाहा ?। अच्छा अगर यह कहा जाय कि–' दूसरे जीवोंका जीना मरना नही चाहना' तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि–यदि दूसरे जीवोंका जीना नहीं चाहते हैं तो, 'खुले मूँहसे बोलेंगे तो वायुकायके जीव मरेंगे' ऐसा समझ कर मूँहपर पट्टी क्यों बांधते हैं ?। दालमें मक्खी गिर जाती है, तो उसको निकालते क्यों हैं ?। कपडोंमें जूएं पडती हैं तो उनको धीरेसे निकालकर अलग क्यों रखते हैं ?। कहिये इन कार्योंमें जीवोंका जीना चाहा कि नहीं ?। यदि जीवोंका जीना नहीं ही चाहते हैं, तो फिर जो कुछ होवे सो होने ही देना चाहिये। और प्रयत्नोंके करनेकी आवश्यकताही क्या है ?। बल्कि हम तो यहांतक कह सकते हैं कि–उन लोगोंको चाहिये कि–दयाका नाम तक भी न

लें। जहाँतक 'दया' का नाम लेते रहेंगे—जीवोंके बचानेके इरादेसे क्रियाएं करते रहेंगे, वहाँतक 'जीवोंका जीना नहीं चाहते' यह कथन वाणीमात्रमें ही समझा जायगा।

आगे चलकर इसी दूसरी ढालमें कई प्रसंगोका विना समझे ही उल्लेख किया है। जैसेः--

"'चंपानगरीके वणिकोंका दृष्टान्त देकर, देवताके उपद्रव होनेपर भी अर्हन्नकश्रावकने अनुकंपा नहीं की, ऐसा दिखलाया है।' 'नमिराजऋषिने, इन्द्रके कहनेपर भी जलती हुई मिथिलाके सामने नहीं देखा।' 'केशवके बन्धु गजसुकुमालके सिरपर सोमलने मिट्टीकी पाल बांधी और अंगारे भरे, परन्तु श्रीनेमनाथजीने अनुकंपा नहीं की।' 'भगवान् महावीर स्वामीको देव—मनुष्य और तिर्यंचोंने अनेकों प्रकारके उपसर्ग किये, परन्तु कोई भी इन्द्र, इन उपसर्गोंको दूर करनेके लिये आया नहीं।' 'सारे द्वीप—समुद्रोंमें मच्छ गलागल हो रही है, अगर भगवान् इन्द्रको कहते तो शीघ्र वह मिटा सकता था, परन्तु भगवान्‌ने इन्द्रको भी नहीं कहा।' 'चुलणीपियाने पौषध किया, उस समय देवताने आकर अनेक कष्ट दिये, उसके पुत्रोंको, उसके सामनेही तेलमें तले, परन्तु चुलणीपियाने अनुकंपासे उनको बचानेके लिये नहीं कहा।' चुलणीपिया, जब अपनी माताको बचानेके लिये गया, उस समय उसका व्रत भांगा।' 'चेडा और कोणिककी लडाईमें एक क्रोड अस्सीलाख मनुष्य मरे, लेकिन भगवान्‌ने, अनुकंपा ला करके उनको बचानेके लिये न आप पधारे, और न अपने साधुओंको भेजे। और लडाई होनेके पहिले भी मनाई नही की।' 'समंदपालको, (समुद्रपाल) चोरके देखनेसे उत्कृष्ट वैराग्य उत्पन्न हुआ, परन्तु उसने चोरपर करुणा नहीं की।"

उपर्युक्त सारे प्रसंग भोले लोगोंको भ्रमित करने के लिये ही तेरापंथियोंने दिए हैं। वास्तवमें इन प्रसंगोंमें जो हकीकतें बनी हैं, उन बातोंको तेरापंथियोंने छिपाई हैं। अच्छा, एक एक प्रसंगको अनुक्रमसे देख लीजिये।

ज्ञातासूत्रके ८ वें अध्ययनमें अर्हन्नक श्रावककी कथा चली है। अर्हन्नक चंपानगरीके कई वणिकोंके साथ नावको लेकर देशान्तरोंमें जा रहा है। देवता उसकी धर्म दृढताकी परीक्षा करनेको आया है। देवताके किये हुए पिशाचरूपसे अर्हन्नकको छोडकर सभी वणिक् डर गये हैं। अर्हन्नकने विचार किया कि—'इस उपद्रवको दूर करनेके लिये कोशिश करनी चाहिये।' ऐसा विचार करके

"तएणं से अरहण्णए समणोवासए तं दिव्वं पिसायरूवं एज्जमाणं पासइ २ त्ता अभीए अतत्थे अचलिए असंभंते अणाउले अणुव्विग्गे अभिण्णमुहरागणयणवण्णे अदीणविमण-माणसे पोयवाहणस्स एगदेसंसि वत्थं तेणं भूमिं पमज्जइ २ त्ता ठाणं ठायइ २ त्ता करयलजाव तिकट्टु एवं वयासी णमोत्थुणं अरिहंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं जइणं अहं एत्तो उवसग्गओ मुंचामि तो मे कप्पइ पारित्तए अहण्णं जइणं अहं एत्तो उवसग्गाओ ण मुंचामि तो मे तहा पच्चक्खाएयव्वे तिकट्टु सागार-भत्तं पच्चक्खाइ।" (पृ० ७६०-७६१)

अर्थात्—अर्हन्नक श्रमणोपासकने, उस देवके पिशाचरूपको आते हुए देखा। देख करके, अभीत—अत्रासित—अचलित—असंभ्रान्त—अना-कुल—अनुद्वेग, तथा मुखकी आकृति और नेत्रोंका वर्ण बदला नहीं है एवं अदीनमन हो करके, नाव के एक देशमें जाके वस्त्रसे

भूमीका प्रमार्जन करके, उस स्थानपर बैठा। बैठ करके बद्धा-ञ्जलीपूर्वक नमुत्थुणं कहा। कह करके इस प्रकारका अभिग्रह किया कि–' मैं इस उपसर्गसे मुक्त हो जाऊंगा, तो काउस्सग्ग पारूंगा। नहीं तो मुझको सागारिक, भातपानीका पच्चखाण है।

अर्हन्नकने इस प्रकारका अभिग्रह क्यों किया? इस बातको प्रथम सोचना चाहिये। विचार करनेसे यही मालूम होता है कि–यहाँपर अनुकंपाके सिवाय और कोई कारण नहीं था। क्योंकि–अर्हन्नक स्वयं तो धर्ममें दृढ था ही–इसको किसी प्रकारका भी डर नहीं था। फिर भी अनुकंपाके ही कारणसे इस उपद्रवको दूर करनेके लिये इसने ऐसा किया है। तेरापंथी कहते हैं कि–' अर्हन्नकने अनुकंपा नहीं की।' यह उनकी भूल है। क्योंकि, अगर इसने अनुकंपा नहीं की थी, तो बतावें तेरापंथी, इस उपद्रवके होनेके पश्चात् इसको ऐसा अभिग्रह करनेका कारण ही क्या था?।

खैर, तिसपर भी 'तुष्यतु दुर्जनः' न्यायसे यह मान लें कि–अर्हन्नकने अनुकंपा नहीं की, तो यह कहना होगा कि–यहाँ अनुकंपा करनेका कोई कारण नही था। क्योंकि–अर्हन्नक यह जानता था कि–' यह मेरी परीक्षा करनेको आया है। और इससे कुछ होनेवाला भी नहीं है। और इसीसे तो अर्हन्नक, देवताके उपद्रवको देखकर अपने मनमें विचार करता है:–

" अहण्णं देवाणुप्पिया अरहण्णए णामं समणोवासए अभिगयजीवाजीवे णो खलु अहं सक्का केणई देवेण वा दाणवेण वा जाव निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा तुमण्णं जा सद्धा तं करेही त्तिकट्टु अभीए

जाव अभिण्णमुहरागणयणवण्णे अदीणविमणमाणसे णिच्चले णि-प्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।" (पृष्ठ–७६५–७६६)

अर्थात्–" हे देवानुप्रिय ! मैं अर्हन्नक श्रावक हूं। जीवा-जीवादिपदार्थोंको जानता हूँ। मुझको, कोई भी देव–दानव, निर्ग्रंथ प्रवचनके–सिद्धान्तसे चलाय मान करनेके लिये समर्थ नही है। अथवा न क्षोभित करनेके लिये समर्थ है और न विपरिणामी बनानेके लिये समर्थ है। अतएव तेरेको जो करना होवे सो कर।"

" इस प्रकार कह करके, जिसने अपने मुखका रंग बदला नही है, दीनमन किया नहीं है, ऐसा अर्हन्नक, निश्चलरूपसे अपने शरीरके अंगोंको नहीं हिलाता हुआ धर्मध्यानमें स्थित रहा।"

अब इस पाठ परसे विचारनेकी बात यह है कि–अर्हन्नकके मनमें निश्चय था कि–इस देवतासे कुछ भी होनेवाला नहीं है। अर्ह-न्नकको जब देवताने यह कहा कि–' तू अपने धर्मको छोड दे, नहीं तो मैं तेरी नावको डुबा दूंगा' तभीसे वह जान गया कि–' यह देवताकी झूठी ही करतूत है, करने–धरनेका कुछ नहीं है।' फिर वह अपने धर्मको छोड करके देवतासे क्यों प्रार्थना करे कि–' तू इन लोगोंको मत मार'। हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–' क्या देवताने उन वणिकोंको मार डाले हैं ?।' बिलकुल नहीं। अर्हन्नकने जैसा विचार किया, उसी प्रकारसे उन वणिकोंकी जरासी भी हानी नहीं हुई। और वे सबके सब जंहाँ जाना था, वहाँ पहुँचे हैं। देखिये उस पाठको:—

" तए णं से अरहण्णए समणोवासए णिरुवसग्गेत्तिकट्टु पडिमं पारेइ तएणं अरहण्णगपामोक्खा जाववाणियगा दक्खिणाणुकुलेणं वाएणं जेणेव गंभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छइ–"

(पृष्ठ ७७३–७७४)

अर्थात्–इसके बाद अर्हन्नक श्रावकने, निरुपद्रव हो करके काउस्सगको पारा, पश्चात् अर्हन्नक प्रमुख वणिक् दक्षिणदिशाके अनुकूल वायुसे जहाँ गंभीरपोतपट्टन है, वहाँ आते हैं।

इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि–उन वणिकोंको कुछ भी हानी नहीं हुई है। अब यहाँपर अनुकंपा करनेका कारण ही क्या है, जो तेरापंथी लंबी २ कुलाँचें मारते हैं ?।

हमारा तो यह भी कहना है कि– अनुकंपा भी की जाती है, तो वह अपने धर्मकी रक्षा पूर्वक की जाती है। अनुकंपा ही क्यों ? जितने संसारमें अच्छे कार्य हैं; वे भी, अपने धर्मको रख करके ही किये और कराये जाते हैं। हम पूछते है कि–तेरापंथीके साधुको कोई यह कहे कि–' आप एक घंटेभरके लिये मेरी पघडी पहनलें, तो मैं लाख सामायिक करूं '। क्या तेरापंथीके साधुजी इस कार्यको करना मंजूर करेंगे ? अथवा कोई गृहस्थ, तेरापंथी साधुसे यह कहे कि–' आप एक ही साधु गृहस्थ बन जाँय, तो, हम सौ आदमी दीक्षा लें। ' क्या तेरापंथीके साधु इस बातको स्वीकार करेंगे ?। अथवा एक ऐसा ही दृष्टान्त ले लीजिये कि, जैसे कोई स्त्री तुम्हारे साधुजीसे यह कहे कि–'आप मुझसे विषय सेवन कीजिये, नहीं तो मैं मर जाऊंगी '। कहिये साधुजी इस बातको स्वीकार करेंगे ?। कभी नहीं। इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि–अनुकंपादि अच्छे कार्य भी स्वधर्मकी रक्षापूर्वक ही किये जाते है।

अर्हन्नकको तो यहाँपर यह भी प्रसंग नहीं था। यहाँ तो केवल देवताका उपद्रव, अर्हन्नकको धर्मसे चूकानेके लिये था। और अर्हन्नक इस बातको अच्छी तरह जानता भी था। तो फिर क्यों धर्मसे चूके, और प्रार्थना करे।

दूसरा उल्लेख है नमिरायऋषिका। नमिराजा, अपनी मिथिला नगरी-राज-पाट-अन्तेउर वगैरह सबको छोड कर साधु हो गया। इसको संसारके किसी पदार्थपर अब ममत्व नहीं है। राजाके साधु हो जानेसे, सारी नगरीके लोग रुदन कर रहे हैं, इनको देख, नमिरायकी दृढताकी परीक्षा करनेके लिये इन्द्र, ब्राह्मणके वेषमें नमिरायऋषिके पास आया। इन्द्रने इसको चलायमान करने के लिये कहा है:—

" एस अग्गी य वाउ य एयं डज्झइ मंदिरं।
भयवं अंतेउरं तेणं कीसाणं नावपेक्खहि " ॥१२॥
" एयमट्ठं निसामित्ता हेऊकारणचोईओ।
तओ नमीरायरिसी देविंदं इणमब्बवी " ॥१३॥
" सुहं वसामो जीवामो जेसिं मो नत्थि किंचणं।
महिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झइ किंचणं " ॥१४॥
" चत्तपुत्तकलत्तस्स निव्वावारस्स भिक्खुणो
पियं न विज्जए किंचि अप्पियंपि न विज्जए " ॥१५॥

(उत्तराध्ययन सूत्र, पृष्ठ—२८३—२८४)

अर्थात्—हे भगवन्! यह अग्नि और वायु दिख रहे हैं। यह मंदिर जल रहा है। अंतेउर जल रहा है। आप सामने क्यों नहीं देखते हैं?।'

इन्द्रके, इस प्रकार कहनेपर, इस अर्थको सुन करके, नमिराय-ऋषिने, इन्द्रसे कहा:—" मैं सुखसे रहता हूँ। मेरी कुछ भी वस्तु नही है। मिथिला नगरीके जलनेसे मेरा कुछ नहीं जलता है। क्योंकि-जिसने पुत्र-कलत्रको छोड दिये हैं, ऐसे निर्व्यापार साधुको न तो कोई प्रिय है, और न कोई अप्रिय।"

अब, इस प्रसंगको विचार लीजिये। तेरापंथी यह कहते हैं कि-" इन्द्रने नमिऋषिसे यह कहा कि-'आप मिथिलाके सामने देखें तो वह जलती हुई शान्त हो जाय।' लेकिन ऐसा इन्द्रने कहा ही कहाँ है?। इन्द्रने तो यही कहा है कि-'आप सामने क्यों नहीं देखते ?।' तब उन्होंने कहा है कि—'मेरा कुछ है ही नहीं, तो मैं क्यों सामने देखुं ?।' अब, यहाँ अनुकंपाकी बातही क्या है। इन्द्र, नमिरायऋषिके मोहकी परीक्षा करता था, नकि यहाँ अनुकंपाका कोई कारण था। और वास्तवमें देखा भी जाय तो, जब नमिरायऋषि, संसारके समस्त पदार्थोंपरसे मोहको हटा करके साधु हो गए, तो फिर उनके संबंधियोंके रुदनसे अथवा मोहजन्य और चेष्टाओंसे उन्हें सामने देखनेकी आवश्यकता ही क्या थी ?। नमिरायऋषिकी ही क्यों बात करनी चाहिये ?। आज कलके जमानेमें भी बहुतसे मनुष्य संसारसे निर्मोही होकर साधु हो जाते हैं, उस समय, उनके पीछे अनेकों मनुष्य अनुकूल उपसर्ग करते हैं, लेकिन उन उपसर्गोंके सामने देखते ही नहीं हैं, तो क्या इससे अनुकंपाका निषेध हो गया ?। कभी नहीं, ऐसे प्रसंगोंमें अनुकंपाका कारण ही क्या है ?।

तेरापंथियोंने जितने प्रसंगोंको आगे किये हैं, वे सब ऐसेके ऐसे ही हैं। बिचारे भोलेलोग, कि जिनको इन वृत्तान्तोंसे

थोडा भी परिचय नही है, वे, ऐसी अधूरी २ बातोंसे भ्रमित हो सकते हैं। खैर, अभी और आगे बढिये।

गजसुकुमाल, जिस समय प्रतिमासाधन करनेके लिये स्मशानभूमीमें गये हैं, उस समय, सोमलब्राह्मणने उनके सिरपर मिट्टीकी पाल बांधी और अंगारे भरे। यहाँपर नेमनाथ भगवान्को अनुकंपा करके साधुओंको भेजनेकी कोई आवश्यकता थी ही नहीं, यह बुद्धिमान् लोग स्वयं विचार सकते हैं। क्योंकि–नेमनाथभगवान् भावीपदार्थोंको अच्छी तरह जानते थे। जब वे स्वयं केवलज्ञानसे जानते थे कि–गजसुकुमाल, इसी निमित्तसे ध्यानमें आरूढ हो कर कर्मोंको क्षय करनेवाले हैं, तो फिर वे इस उपद्रवको निवारण करनेके लिये भेजें ही क्यों ?। ऐसी प्रवृत्ति तो हम लोगोंको करनेकी है कि, जिनको भविष्यमें क्या होगा, इसका ज्ञान नहीं है। इस लिये यह प्रसंग भी स्थानोचित नही है।

'भगवान् महावीर देवको अनेकों उपसर्ग हुए, उस समय कोई भी इन्द्र, अनुकंपा करके रक्षा करनेके लिये नहीं आया।' यह भी कहना ठीक नहीं है। भगवान् महावीर देव, संसारके समस्त जीवोंपर अनुकंपा करते थे। जिन्होंने चारज्ञानोंको धारण करके समस्त कर्मोंको क्षय करनेके लिये कमर कसी थी, जिनको उपद्रवोंका सामना करके ही कर्मोंका क्षय करना था और जो इसी अभिप्रायसे ही ऐसे प्रसंगोंको प्राप्त करते थे, उन परमात्माकी हम जैसे पामर जीव क्या अनुकंपा कर सकते हैं ?। क्या तेरापंथियोंको इस बातका ख्याल ही नहीं है कि–तीर्थंकर देव किसीकी अपेक्षा नहीं करते हैं ?। क्या तेरापंथियोंने यह कभी पढा है कि–जिस समय परमात्मा महावीर देवको उपसर्ग होने लगे,

उस समय, इन्द्रने आकरके प्रार्थना की हैं कि—'हे भगवन्! आपको बारह वर्ष पर्यन्त उपसर्ग होनेवाले हैं, इस लिये मैं उनको निवारण करनेके लिये आपकी सेवामें रहूँ।' भगवान्ने उस समय साफ साफ कह दिया है कि–'अर्हन् दूसरोंके सहायकी जरासी भी अपेक्षा नहीं रखते।' देखिये, कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्य, अपने योगशास्त्रके प्रथम प्रकाशमें इसी मतलबको कहते हैं:—

" ततः प्रदक्षिणीकृत्य त्रिमूर्ध्ना प्रणिपत्य च।
इति विज्ञापयाञ्चक्रे प्रभुः प्राचीनबर्हिषा" ॥ ७३ ॥
" भविष्यति द्वादशाब्दान्युपसर्गपरम्परा।
तां निषेधितुमिच्छामि भगवन् पारिपार्श्विकः"॥७४॥
" समाधिं पारयित्वेन्द्रं भगवानूचिवानिति।
नापेक्षाञ्चक्रिरेऽर्हन्तः परसाहायिकं क्वचित्" ॥७५॥

(पृष्ठ–१०)

इन श्लोकोंका सार ऊपर देही दिया है। इस परसे स्पष्ट जाहिर होता है कि–भगवान् किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखते हैं। हां, यहाँपर अनुकंपाका विषयतो तब गिना जाता, जब कि–भगवान्ने इन्द्रकी सहायता चाही होती, और इन्द्रने, अनुकंपामें पाप समझ करके मूँह मोड लिया होता। लेकिन यह तो हुआ नहीं। इन्द्र तो भक्ति करनेके लिये आया ही था, और भगवान्ने, अपने ही पुरुषार्थसे कर्मक्षय करनेके लिये इन्द्रको निषेध कर दिया था। फिर इस प्रसंगकी यहाँ आवश्यकता ही क्या थी ?।

सारे द्वीपसमुद्रोंमें, मच्छगलागल हो रही है, उसको बंध करनेके लिये भगवान्ने इन्द्रको नहीं कहा, इसमें भी यही कारण

है कि–भगवान् भाविभावको सम्यक्प्रकारसे जानते थे, और तदनुकूल ही उनकी प्रवृत्ति होती थी। भाविभावमें, अर्थात् जैसी होनहार है, उसमें जरासाभी फर्क, कोई नहीं करसकते। हम लोग छद्मस्थ होनेके कारण भविष्यमें इसका क्या होगा ? यह ज्ञान नहीं होनेके कारण, हमें प्रत्येक कार्योंमें प्रवृत्ति करनी पडती है। यदि हमारेमें भी भावीपदार्थके यथार्थ जाननेका ज्ञान हो जायगा, तब, हम भी तदनुकूल ही प्रवृत्ति करेंगे। और यदि होनहार को भी तीर्थंकर भगवान् अन्यथा कर सकते हों, तो, हम तुमसे पूछते हैं कि—

वर्तमान समयमें महाविदेह क्षेत्रमें श्रीसीमंधरस्वामी बिराजमान हैं। यदि सीमंधरस्वामी इस बातको चाहें, कि–इन्द्रको कह करके संसारमेंसे मिथ्यात्वको मिटा देना चाहिये, तो मिटा सकते हैं। और इस बातको तो आप लोग भी अच्छा समझते हैं। फिर भी यह बतलाईये कि–श्रीसीमंधरस्वामी ऐसा क्यों नहीं करते ?।

चुलणीपिताका दृष्टान्त भी तेरापंथियोंने बेसमझसे ही दिया है। चुलणीपिता श्रावकने जब पौषध किया है, तब रात्रिके समय एक देवता उसकी परीक्षा करनेको आया है। देवताने साफ २ कह दिया है कि–'तू अपने धर्मको छोड दे, नहीं तो मैं तेरे पुत्रोंको मारूँगा।' इतना ही नहीं, चुलणीपिताकी धर्मदृढताको देख, इसको चलायमान करनेके लिये, उसके तीन पुत्रोंको लाकर मारते हुए भी दिखाए। तिसपर भी वह चलायमान नहीं हुआ। अन्तमें जब देवताने चुलणीपिताकी माताको मारनेका डर बताया, उस समय माताके मोहसे, उसने कोलाहल कर दिया। और इसको सुन माता, पौषधशालामें आई।

अब कहनेका मतलब यह है कि—यहाँपर चुळणीपिताने अनु-कंपाकी ही नहीं है। यहाँ तो मातापर इसको मोह उत्पन्न हुआ है। और यह मोह, इस समय अर्थात् पौषधमें करनेका नहीं होनेसे तथा कोलाहलके करनेसे, इसका व्रतभंग दिखलाया है। नकि, अनुकंपाके करनेसे। क्योंकि अनुकंपा तो यहाँ थी ही नहीं।

चेडा और कोणिकके संग्राममें एक क्रोड, अस्सी लाख मनुष्य मरे, इनको बचानेके लिये, भगवान्ने अनुकंपा लाकर, साधुओंको न भेजे, अथवा स्वयं न पधारे, ऐसा जो कहा जाता है, यह भी अज्ञानताका ही कारण है। क्योंकि—पहिले तो तेरापंथी, 'अनुकंपा' को ही समझे नहीं हैं। अनुकंपा 'दुःखितेषु अप-क्षपातेन दुःखप्रहाणेच्छा' अर्थात्—अपक्षपातसे, दुःखीके दुःख-के नाश करनेकी इच्छाको **अनुकंपा** कहते हैं। अब बतलाईये, यहाँपर अनुकंपाका कारण ही क्या है?। एक राजा, दूसरेके राज्यलेनेकी इच्छासे अथवा ऐसे ही अन्य कारणोंसे जान-बूझ करके लडाई करता है। फिर इसमें अनुकंपाका क्या कारण रहा?। और ऐसे तो क्या भरतराजाने साठ हजार वर्ष पर्यन्त युद्ध नहीं किया था?। लेकिन ये प्रसंग अनुकंपाके नहीं गिने जा सकते हैं। दूसरी बात यह भी है कि—भगवान् तो स्वयं भावीपदार्थोंको जानते हैं, फिर इस प्रकार प्रवृत्ति क्यों करें?।

अब अन्तमें समुद्रपालका दृष्टान्त आगे किया है। समुद्रपाल, एक दिन गोखमें बैठा था, उससमय राजपुरुष, एक चोरको बांध करके वध करनेको ले जाते थे। इसको देखकर, समुद्रपालको परमवैराग्य हुआ, और पश्चात् वह साधु हो गया। तेरापंथी कहते हैं कि—समुद्रपालने दया लाकर उसको छुडाया क्यों नहीं?।

लेकिन इस प्रसंगको समझना चाहिये। अनुकंपा दो प्रकारसे होती है। द्रव्यसे और भावसे। द्रव्यसे अनुकंपा वह कही जाती है कि–जो शक्तिके रहते हुए दुःखका प्रतीकार किया जाय। भावसे दया वह है, कि जो दुःखीको देख करके आर्द्र हृदय हो जाय। हम कहते हैं कि—' समुद्रपालने, यहाँ अनुकंपा नहीं की ' ऐसे कहनेवाले झूठे हैं। इसने यहाँपर भावअनुकंपा की है। अगर इसने भावअनुकंपा नहीं की होती, तो इसको वैराग्य उत्पन्न होता ही नहीं, और न वह साधु ही होता। उस दुःखी मनुष्यको, जिसका कि वध होनेवाला था, देखकर इसका हृदय जरूर आर्द्र हुआ। और इसीसे इसको वैराग्य भी हुआ। हां, द्रव्यअनुकंपा, अपनी शक्ति नहीं होनेके कारणसे नहीं की। एक मनुष्य, कि जिसको किसी अपराधके कारण राज्यकी तर्फसे ही वध करनेका हुकम हुआ हो, उसको छुडाना साधारण मनुष्यका कार्य नहीं है। यह कार्य तो राजा ही कर सकता है। अन्य नहीं।

अब तीसरी ढालको देखिये। तीसरी ढालमें अनुकंपाके अनेक दृष्टान्तोंको दे करके बहुतसे दृष्टान्त जिनआज्ञामें कहे हैं, बहुत जिनआज्ञा बाहर। लेकिन इन प्रसंगोंको जब हम सूत्रोंमें देखते हैं, तब हमें कहीं यह प्राप्त नहीं होता कि–यह अनुकंपा जिनाज्ञा बाहर है। और वास्तवमें देखा जाय तो अनुकंपाका कार्य जिनाज्ञा बाहर हो ही नहीं सकता। क्योंकि–अनुकंपा तो स्वयं भगवान्ने ही की है, और दूसरोंको करनेके लिये फरमाया भी है। तो फिर यह जिनाज्ञा बाहर कैसे हो सकती है ?। तब, यही कहना पड़ेगा कि–तेरापंथियोंने अनुकंपाको मूलसे उठानेके लिये ही ऐसी स्वकल्पित घटना की है। देखिये,

मेघकुमारने, हाथीके भवमें, ससलेकी भावीदुःखसे रक्षा की, इस अनुकंपाको जिनाज्ञामें कहते हैं। नेमनाथ भगवान्ने, अपने विवाहके समय मारनेके लिये इकट्ठे किये हुए पशुओंकी, भावीदुःखसे रक्षा की इसको भी जिनाज्ञामें कहते हैं। धर्मरुचिअनगार, ' जीवोंकी विराधना होगी ' इस अभिप्रायसे, कटुतुंबेके शाकको स्वयं खा गये, इसको भी आज्ञामें कहते हैं। और भगवान्का गोशालेको बचाना; हरिणैगमेषीदेवका, सुलसाके वहां छहां पुत्रोंका छोडना; मेघकुमारके गर्भमें आनेपर, धारिणीरानीका, अनुकंपासे इच्छित अशनादिकका खाना, हरिकेशीकी रक्षाके कारण यक्षदेवताका, ब्राह्मणोंको उल्टेकर देना; वृद्ध पुरुषपर दया लाकर कृष्णजीका, उसकी ईंटें घरपर लाना, इत्यादिको जिनाज्ञा बाहर कहते हैं।

लेकिन, यह सोचनेकी बात है कि--अमुक अनुकंपा आज्ञा बाहर है, ऐसा, जब तक कोई प्रमाण न मिले, तब तक कैसे माना जा सकता है ?। क्या अन्तःकरणके दयार्द्र परिणाम, आज्ञा बाहर हो सकते हैं ?। कभी नहीं। चाहे, जीवोंके भावी दुःखोंके लिये दयार्द्र परिणाम हुए हों, चाहे, जीवोंके वर्तमान दुःखोंके लिये हुए हों। परन्तु दयावाला परिणाम होना, यह तो एकान्त लाभकर्ता ही है।

मेघकुमारने, अपने पैरके नीचे आए हुए ससलेपर पैर न रख करके उसकी रक्षाकी। नेमनाथ भगवान्ने, अपने विवाहके समय, मारनेके लिये लाए हुए जीवोंकी, रक्षा की। और धर्मरुचि अनगारने, कटुतुंबके शाकको खा करके, मरनेवाले जीवोंकी रक्षा की। इसी प्रकारसे जिस अनुकंपाको, तेरापंथी जिनाज्ञा बाहर कहते हैं, उसमें भी जीवोंकी रक्षा और उचित भक्तिका ही कारण है, और कोई नहीं। देखिये उन प्रसंगोंको

भगवान्ने गोशालेको बचाया, इसका सारा वृत्तान्त सूत्रके पाठोंके साथ पहिले लिख आए हैं। इस लिये पुनः लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

हरिकेशी मुनि, जिस समय यज्ञपाटकमें आए हैं, उस समय ब्राह्मणोंने आपका बहुत तिरस्कार किया है। तिसपर भी हरिकेशी मुनि मौन ही रहे हैं। इनको देखकर तंदुकनामक वृक्षमें रहनेवाले एक यक्षको मुनिजीपर भक्ति उत्पन्न हुई है, और इस भक्तिके कारणसे ही, यक्षने मुनिजीके शरीरमें प्रवेश किया है। जैसे उत्तराध्ययन सूत्रके बारहवें अध्ययनमें कहा है:—

"जक्खो तहिं तिंदुयरुक्खवासी अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स।
पच्छायइत्ता नियगंसरीरं इमाइं वयणाइं उदाहरित्था॥८॥पृ.३५३।

अर्थात्—तंदुकनामक वृक्षमें रहनेवाले मुनिके भक्त यक्षने, अपने शरीरको अदृश्य करके (मुनिजीके शरीरमें प्रवेश करके) इस प्रकार बोलने लगा।

अब यहाँपर जो अनुकंपा दिखलाई है, यह भक्ति अर्थमें हैं। क्योंकि–बडोंके प्रति छोटोंका जो कर्तव्य होता है, वह भक्ति अर्थमें ही लिया जाता है। जैसे पुत्र अपने माता–पिताकी रक्षा करता है, यह अनुकंपा भक्ति अर्थमें ही है। और ऐसे दृष्टान्त शास्त्रोंमें भी अनेकों स्थानोंमें मिलते हैं। देखिये–

परमात्मा महावीरदेव, जिससमय माताकी कुक्षिमें आए हैं, उस समय माताकी अनुकंपासे, अर्थात् माताको कष्ट न हो, इस अभिप्रायसे अपने अंगोपांगोंको गोपन कर दिये हैं। देखिये, कल्पसूत्रमें खास लिखा है:—

"तएणं समणे भगवं महावीरे माउय अणुकंपणट्ठयाए णिचले णिप्फंदे णिरेयणे अल्लीणपल्लीणगुत्ते आवि होत्था" ॥ ९१ ॥

(पत्र–११४)

यहाँपर अंगोपांगोंको गोपनकरने–निश्चल, निस्पंद होनेमें मातकी अनुकंपा ही कारण लिखा है। तो कहना होगा कि–यहाँ अनुकंपाका अर्थ भक्ति करनेका है। और टीकाकारोंने भी 'मातुर्भक्त्यर्थम्' यही अर्थ किया है।

जिस समय हरिणैगमेषी देवने इन्द्रकी आज्ञासे, गर्भापहरण किया है, उस समय भी 'हिआणुकंपएणं' अर्थात् 'हितानुकंपकेन भगवतो भक्तेन' कहा है। यहाँ पर भी 'अनुकंपा' से भक्ति अर्थ लिया है।

इसी प्रकार, अनुकंपाका 'भक्ति' अर्थ बहुत जगह होता है। क्योंकि कहा भी है कि:—

"आयरिअणुकंपाए, गच्छो अणुकंपिओ महाभागो।
गच्छाणुकंपणाए, अव्वुच्छित्ती कया तित्थे" ॥ १ ॥

(धर्मसंग्रह, पृ० २३०)

अर्थात्–आचार्यकी अनुकंपासे, महाभाग गच्छ भी अनुकंपित ही है। और गच्छ की अनुकंपासे, तीर्थ कदापि व्युच्छिन्न नहीं होता है।

कहनेका मतलब यह है कि–ऐसे प्रसंगोंमें जो 'अनुकंपा' शब्द आया उसका अर्थ 'भक्ति' करनेका है। और यह उचित भक्ति होनेके कारण इसको आज्ञा बाहर कभी नहीं कह सकते। क्योंकि–उचित कार्योंके करनेका तो शास्त्रकारोंका फरमान ही है।

बस, जैसा हरिकेशीमुनिका प्रसंग है, वैसा ही, हरिणैगमेषी-देवने, सुलसाकी अनुकंपासे, देवकीके छहों पुत्रोंको ला ला करके सुलसाके पास रक्खे हैं। यह भी प्रसंग है। यहाँपर भी हरिणैगमेषी देव, सुलसाका भक्त हुआ है। और इस भक्तिके कारण हीसे इसने, देवकीके छहों पुत्रोंको लाकर रक्खे हैं। इस लिये यह भी आज्ञा बाहर नहीं कहा जा सकता। यदि यह अनुकंपा–भक्ति आज्ञा बाहर होती, तो जिस समय देवकीने भगवान्से अपने पुत्रोंका वृत्तान्त पूछा है, उस समय भगवान्ने यह तो कहा ही नहीं है कि–'हरिणैगमेषीदेवने तेरे पुत्रोंको वहाँ रक्खे हैं, यह अनुचित किया है।' फिर इसको आज्ञा बाहर कैसे कह सकते हैं ?।

अच्छा, अब आईये धारिणीकी बातपर। तेरापंथी कहते हैं कि–मेघकुमार जिस समय धारिणीकी कुक्षिमें आया, उस समय धारिणीने गर्भकी अनुकंपासे इच्छित अशनादिकका आहार किया है। तेरापंथी इस अनुकंपाको आज्ञा बाहर कहते हैं।

हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–गर्भकी रक्षा करनेमें धारिणीका ही क्यों दृष्टान्त लिया गया ?। संसारमें ऐसी कौन स्त्री है कि–जो अपने गर्भकी रक्षा करनेके लिये प्रयत्न नहीं करती है ? फिर धारिणीने ही क्या गुन्हा किया कि–जो उसका दृष्टान्त आगे किया गया ?। औरोंकी बाततो जाने दीजिये। जिस समय तीर्थंकर, माताकी कुक्षिमें आते हैं, उस समय तीर्थंकरकी माता भी, जिस प्रकार गर्भको नुकसान न पहुँचे, तदनुकूल ही अशनादि आहार करती है, तो बतलाईये, यह किस आशयसे ? कहना होगा की गर्भकी अनुकंपाके आशयसे ही। तब तो फिर तीर्थंकरोंकी माताकी अनुकंपाको भी आज्ञा बाहर कहना चाहिये।

लेकिन नहीं, यह अनुकंपा आज्ञा बाहर नहीं है। क्योंकि माताका यह उचित कर्तव्य ही है। और यदि इस उचित कर्तव्यको न करे, तो प्राणघातका महान् पातकके लगनेका भय है।

हाँ, यह बात जरूर है कि-यह पक्षपाती अनुकंपा है। क्योंकि-कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यने, अनुकंपाकी व्याख्या करते हुए, यह स्पष्टीकरण किया है कि-" अनुकंपा दुःखितेषु अपक्षपातेन दुःखप्रहाणेच्छा। पक्षपातेन तु करुणा स्वपुत्रादौ व्याघ्रादीनामप्यस्त्येव " (योगशास्त्र, द्वितीयप्रकाश, पृ० १८२) परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि-यह पक्षपाती अनुकंपा आज्ञा बाहर है। यदि यह अनुकंपा आज्ञा बाहर होती तो संसारमें कोइ भी धर्मात्मा स्त्री (तीर्थंकरकी माता जैसी), अपने गर्भकी रक्षा करनेके लिये प्रयत्न करती ही नहीं। ऐसी अनुकंपा पक्षपाती होने पर भी कर्तव्य स्वरूपा, अर्थात् करने लायक ही है। न कि उपेक्षा करने लायक। क्योंकि, इस अनुकंपाके प्रति उपेक्षा करनेसे जीवहत्याका पातक लगनेका भय रहता है।

कई तेरापंथी यह भी कहते हैं कि—" धारिणीको अकाल वृष्टि होनेका दोहला उत्पन्न हुआ। और उस दोहलेको पूरा करनेके लिये, अभयकुमारने देवताकी आराधना कर, अनुकंपासे अकाल वृष्टि करवाई, यह भी जिनाज्ञा बाहर है "। परन्तु यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि—अभयकुमारका यह कर्तव्य था कि—किसी भी प्रकारसे माताका दोहद (विचार) पूर्ण करना। इसी कर्तव्यको पालन करनेके लिये, अभयकुमारने भक्ति स्वरूपा अनुकंपा की है, तो यह जिनाज्ञा बाहर नहीं हो सकती। हम पूछते हैं कि—जब तीर्थंकर, माताके गर्भमें आते हैं, तब उनकी

माताके भी समस्त दोहद पूरे किये जाते हैं, क्या यह भी जिनाज्ञा बाहर है ! कभी नहीं । दोहदोंके पूरे करनेकी बात तो दूर रही परन्तु उत्तम और धर्मज्ञ पुरुषोंका तो यही कर्तव्य दिखलाया है कि:—

" पितुर्मातुः शिशूनां च, गर्भिणीवृद्धरोगिणाम् ।
प्रथमं भोजनं दत्त्वा, स्वयं भोक्तव्यमुत्तमैः " ॥ १ ॥
(धर्मसंग्रह, पृष्ठ २०६)

अर्थात्—पिता, माता, बालक, गर्भिणी, वृद्ध और रोगी, इन्होंको पहिले भोजन करा करके, पश्चात् उत्तम पुरुषोंने स्वयं भोजन करना चाहिये ।

इतना ही नहीं:—

" चतुष्पदानां सर्वेषां, धृतानां च तथा नृणाम् ।
चिन्तां विधाय धर्मज्ञः , स्वयं भुञ्जीत नान्यथा " ॥२॥
(धर्मसंग्रह, प० २०६)

अर्थात्–धर्मज्ञपुरुष, समस्त पशुओंकी, और अपने आश्रित मनुष्योंकी चिन्ताकरनेके पश्चात् स्वयं भोजन करें ।

अब विचारनेकी बात है, जब उत्तम और धर्मज्ञ गृहस्थ पुरुषोंके यहाँतक कर्तव्य दिखला दिये, तो फिर अभयकुमार जैसा धर्मात्मापुरुष, अपनी माताके दोहदको पूरा करनेके लिये भक्ति स्वरूपा करे, इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है ? ।

यह समझनेकी बात है कि–अभयकुमारका यह उचित ही कर्तव्य था । और इस प्रकार जो उचित नहीं करता है, वह श्लाघनीय भी नहीं गिना जाता है । देखिये, इसके लिये कहा है:—

" संतत्तबहुगुणोवि हु जो न मुणइ सम्ममुचियमायरिउं।
सलहिज्जइ सो न जणे ता मुणिऊणं कुणह उचियं " ॥१॥
(श्राद्धगुणविवरण, पत्र-४७)

अर्थात्-जो मनुष्य, सम्यग् प्रकारसे उचित आचरणको नहीं करता है, वह बहुगुणोंको धारण करते हुए भी, श्लाघाको प्राप्त नहीं कर सकता। अतएव उचित कर्तव्यको अवश्य करना चाहिये।

अभयकुमारका यह उचित कर्तव्य था-भक्तिस्वरूपा अनुकंपा थी, इस लिये, यह जिनाज्ञा बाहर कभी नहीं हो सकती।

अब रही कृष्णने की हुई, वृद्धकी दयाकी बात। यह भी आज्ञा बाहर नहीं है। क्योंकि-एक वृद्ध पुरुष ईटें उठा उठा कर ले जा रहाथा, उसको देख कर कृष्णको दया आई है। और इस दयाके कारण उसको सहायता की है। क्या ऐसे दुःखी मनुष्यको सहायताका करना अनुचित था, जो इस दयाको हम आज्ञा बाहर कहें ?। क्या इस प्रसंगमें कहींपर यह लिखा हुआ दिखा सकते हैं कि-' इसको आज्ञा बाहर कहना, ' अथवा ' यह अनुचित कार्य था ?।' कहीं नहीं। बल्कि-सूत्रमें तो यही मिलता है कि-जिस समय, कृष्णजी भगवान्के पास गये, उस समय भगवान्ने यही कहा है कि-" हे कृष्ण ! जैसे तुम्हारी सहायतासे, उस वृद्ध पुरुषकी शीघ्र कार्य सिद्धि हो गई, वैसे ही सोमलकी सहायतासे गजसुकुमालकी मोक्षप्राप्तिरूप कार्य सिद्धि शीघ्र हुई है।

अब विचार कीजिये, अगर कृष्णका सहायता करना अनुचित होता तो, भगवान् इस कार्यका जिकर करते हुए, योंही कह देते कि-' तुमने रास्तेमें आते हुए वृद्धपुरुष पर उपकार किया

है, वह अनुचित है।' लेकिन ऐसा तो कहा ही नहीं। बल्कि इस कार्यको तो प्रशंसा रूपमें कहा है। फिर इसको आज्ञा बाहर कैसे कह सकते हैं ?।

स्थूलबुद्धिसे विचार किया जाय, तो भी यह मालूम हो सकता है कि—संसारमें परोपकार करना, यह तो परमधर्म माना गया है। और इसी प्रकार बडे लोग, दुःखीमनुष्योंके ऊपर परोपकार करते ही आए हैं। और परोपकार तब ही होता है, जब दुःखीको देख करके अन्तःकरणमें दया आती है। फिर इसको आज्ञा बाहर कहना, कितनी अज्ञानताका कारण है ?।

इस प्रकार और भी बहुतसी बातें निर्दयताकी इस तीसरी ढालमें लिखी है। जैसे कि—'कोई जीव मरता हो, तो उसको उठाकर छायामें नहीं रखना चाहिये।' 'कोई मनुष्य जंगलमें भूला पड गया हो, उजाडमें जा रहा हो, और बहुत दुःखी हो रहा हो, तो उसको सीधा रस्ता नहीं दिखाना चाहिये। उसको वहाँ ही अनशन कराकरके स्वर्गमें पहुँचा देना चाहिये।' इत्यादि। लेकिन इन बातोंका जवाब लिख, पिष्टपेषण करना अच्छा नहीं समझते।

अच्छा, अब चतुर्थ ढालको देखिये। चोथी ढालमें, तेरापंथ मतके उत्पादक भीखमजीने, अपनी मानी हुई दयाका उल्लेख कर, ऐसी कुयुक्तियोंसे लोगोंको भ्रमित करनेकी चेष्टा की है, कि जिसको पढकर सचमुच भीखुनजी और उसके अनुयायियोंपर भावदया ही आती है। इस चतुर्थ ढालको पढकरके, हम यह तो अवश्य कह सकते है कि— भीषमजीने, अपने मतके प्रचार करनेके कारण, इस बातपर तो बिलकुल ख्याल ही नहीं किया

है कि–किसी भी कार्यके करनेमें मनुष्यके परिणाम खास करके देखे जाते हैं। और इसीका यह परिणाम है कि–इस चौथी ढालमें अनेक प्रकारके कुतर्क करके वास्तविक बातको छिपाई है। देखिये। भीखुनजी कहते हैं: —

"कीडी मांकादिक लटा गजायां, ढांढारा पग हेठे चीथ्या जावे। भेषधारी कहे में जीवबचावां, तो चुणचुण जीवांने कायनै उठावे" ॥ ९ ॥

यह कहा किसने कि–'जिससमय कोई पशु जा रहा हो, और उसके नीचे अगर कोई जीव आ जाता हो, और दृष्टिमें अगर आ जाय, तो उसको न उठावे?। जरूर उठाकर अलग रक्खे। अगर वहाँपर कोई गृहस्थ न होवे, तो साधु स्वयं उठाकर अलग रक्खे, तो उसमें कोई हर्जकी बात नहीं है। और यह कहना भी बिलकुल भूल है कि–'साधुको, वैसे ही दिनभर जीवोंको उठाते फिरना चाहिये।' क्योंकि अच्छे कार्य भी समयपर ही किये जाते हैं। हम तेरापंथी साधुओंसे पूछते हैं कि-आप लोग, जीवको बचानेमें पाप समझते हैं, परन्तु सामायिक करानेमें तो धर्म समझते हो। अच्छा, इसमें अगर धर्म समझते ही हो, तो फिर दिन भर लोगोंके मकानोंमें घूमघूम करके लोगोंको सामायिक क्यों नहीं करवाते?। क्योंकि–स्थानमें बैठकरके तो तुम्हारे उपदेशसे जितने आदमी सामायिक करेंगे। उससे घरघर घूमकर सामायिक कराते फिरोगे, तो बहुत आदमी करेंगे। तो फिर ऐसा क्यों नहीं करते?। लेकिन, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। इसी तरहसे हम भी जीवको बचानेके लिये उसी समय प्रयत्न करते हैं, जब कि, हमारे सामने ऐसा

कोई प्रसंग आ गया हो। हां, ऐसे प्रसंगमें, हम तुम्हारे जैसी निर्दयता नहीं रख सकते हैं।

आगे चलकर भीखमजी कहते हैं:–

" अव्रती जीवांरो जीवणो चावे, तिण धरमरो परमारथ नहि पायो।
सरधा अगिनानीरी पगपग अटके, ते न्याय सुणज्यो भवियण चित्तल्यायो " ॥ १७॥

भीखमजीके कहनेका सार यह है कि–अव्रतीजीवांका जीना–मरना नहीं चाहना चाहिये। लेकिन यह भीखमजीकी समझकी ही भूल है। यदि अव्रती-असंयती जीवांका जीना भी नहीं चाहना यह सिद्धान्त सही सही होता, तो आज संसारमें दयाका नाम तक रहने नहीं पाता। पार्श्वनाथ प्रभुने जलते हुए काष्ठमेंसे जिस सांपको निकलवाया था, वह क्या व्रती था ?। नेमनाथ भगवान्ने जिन पशुओंको बचाए थे, वे क्या व्रती थे ?। मेघरथ राजाने जिस कबूतरको बचाया था, वह क्या संयमी था ?। उतनी दूर क्यों जाना चाहिये ?। आप लोग ही, जिन वाउकायके जीवोंको बचानेके लिये मूँहपर पट्टी बांधते हो, वे क्या व्रती है ?। जिस जीवोंको बचानेके लिये आप लोग लंबासा ओघा (रजोहरण) रखते हैं, वे क्या व्रती हैं ?। तुम्हारे भोजनमें, जो मक्खी वगैरह जीव गिर जाते हैं, और उनको झटसे बाहर निकाल बचाते हो, वे क्या व्रती हैं ?। बल्कि यों ही क्यों न कह दिया जाय कि जिन जीवोंकी रक्षा करनेके लिये आप लोगोंने घर छोडा है, वे क्या व्रती हैं?। कभी नहीं ? जब वे व्रती नहीं थे–संयमी नहीं थे, तो फिर, उन पूर्व पुरुषोंने ऐसी प्रवृत्ति क्योंकी ? और आपलोग क्यों करते हो ?। तब कहना पडेगा कि–यह सिद्धान्त बिलकुल मनःकल्पित झूठा ही है।

वास्तवमें, इससिद्धान्तके माननेमें जो भूलखाई है, उसका स्पष्ट खुलासाकर पाठकोंको सच्चा ज्ञान कराना, हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

सूत्रोंमें बहुत जगह ऐसे पाठ आते हैं, कि–जिसका मतलब ऐसा होता है कि–' साधु, असंयतजीवनको न चाहे। ' बस, इसी मतलबको ले करके तेरापंथी, अपने साधुओंको छोड करके, संसारमें अन्य किसी जीवोंका जीना नहीं चाहते। परन्तु ऐसा माननेमें, तेरापंथियोंने कैसी भूल की है, इस बातको देखिये।

पहिले सूयगडांगसूत्रको ही देखिये। सूयगडांगसूत्रके, प्रथम श्रुतस्कंधके तेरहवें अध्ययनमें इस प्रकारका पाठ है:—

" आहत्तहीयं समुपेहमाणे सव्वेहिं पाणेहिं णिहाय दंडे।
णो जीवियं णो मरणाहिकंखी परिव्वएज्जा वलयाविप्पमुक्के"।२३।

(पृष्ठ–५०६)

अर्थात्–यथातथ्यमार्गको जानता हुआ, समस्त प्रकारके जीवोंकी हिंसासे रहित, एवं जीवितव्य तथा मरणकी वांछा नहीं करता हुआ (साधु), संयमकी पालना करे, और मिथ्यात्व मोहसे विप्रमुक्त होवे।

अब, इस पाठमें जीना–मरना नहीं चाहना कहा। लेकिन किसका? साधु, अपना जीना-मरना न चाहे। औरोंका नहीं। क्योंकि–' णो जीवियं णो मरणाहिकंखी ' यह साधुका ही विशेषण है।

इसी प्रकार सूयगडांगसूत्रके, और पाठोंको भी देखिये।

" निक्खम्म गेहाओ निरावकंखी, कायं विउसेज्ज नियाणछिन्ने।
णो जीवियं णो मरणावकंखी, चरेज्ज भिक्खू वलया विमुक्के॥२४॥

(प्र० श्रु०, अ० १०, पृ० ४१७)

अर्थात्-गृहस्थावासको छोडकरके, साधु, निरपेक्षी हो कर, अपनी कायाको वोसिरावे, अर्थात्-शरीरपर ममत्वभाव न रख करके निदान रहित, और जीने-मरने की नहीं आकांक्षा करते हुए एवं संसारसे विप्रमुक्त होते हुए विचरे।

"सुयक्खायधम्मे वितिगिच्छतिण्णे, लाढेचरे आयतुले पयासु।
आयंन कुज्जा इहजीवियट्ठी चयं न कुज्जा सुतवस्सि भिक्खू॥३॥
(प्र० श्रु० अ० १०, पृ० ४०१)

अर्थात्-(परमात्माके कहे हुए) श्रुताख्यात धर्ममें शंका रहित रहे निर्दोष आहारको ले, समस्त जीवोंको आत्मतुल्य माने। अपने जीवनके लिये आश्रवको न सेवे अर्थात्-असंयमाश्रव न करे। एवँ सुतपस्वी साधु, धन-धान्यादिका संग्रह भी न करे।

अच्छा, और आगे चलिये—

"जेहिं काले परिक्कंतं न पच्छा परितप्पए।
ते धीरा बंधणमुक्का नावकंखंति जीवियं" ॥ १५ ॥
(प्र० श्रु० अ० ३, पृ० २१२)

अर्थात्-जिसने समयपर (धर्ममें) पराक्रम किया है, वह, पीछली अवस्थामें पश्चात्ताप न करे। और वह धीरमनुष्य, बंधनसे मुक्त होते हुए जीवितव्यकी (असंयम जीवितव्य) आकांक्षा न करे।

"जीवितं पिट्ठओ किच्चा अंतं पावंति कम्मुणं।
कम्मुणा संमुहीभूता, जे मग्गमणुसासई" ॥ १० ॥
(प्र० श्रु०, अ० १५, पृ० ५४२)

अर्थात्-वह मनुष्य (असंयम) जीवितव्यका निषेध करके कर्मका नाश करे। और शुभ अनुष्ठानसे मोक्षके सम्मुख होते हुए जिन मार्गका आचरण करे।

कहाँ तक लिखें, सूयगडांगसूत्रमें ऐसे ऐसे अनेकों स्थानमें असंयमजीवितव्यके नहीं चाहनेके लिये पाठ मिलते हैं। परन्तु इससे दयाका निषेध कैसे हो सकता है ?। क्योंकि–उपर्युक्त प्रसंगोंमें और अन्य प्रसंगोंमें असंयमजीवितव्यके नहीं चाहनेकी बात आई है, किन्तु यह बात नहीं आई है कि–'असंयती दुःखी जीवोंको न बचाना।'

सूत्रोंका रहस्य तो यह है, और तेरापंथी इसको ले बैठे कि–'असंयतजीवोंका जीना ही नहीं चाहना।' अर्थात् 'कोई असंयत जीव, कष्टोंसे मर रहा तो उसको नहीं बचाना।' कैसा उत्तम (!) तत्त्वनिकाला ?। बुद्धिमत्ताका है कुछ ठिकाना ?। यह सूत्रोंमें कहा है कब कि–कोई असंयती जीव मरता हो तो उसको न बचावो ?। परन्तु ठीक है, जिनके हृदय दयासे करुणासे–अनुकंपासे शून्य हो गये हो, वे मजेसे दुःखी जीवोंके दुःख देखते रहे इसमें आश्चर्य ही क्या है।

शायद यहाँपर कोई यह शंका करे कि–जब साधु, अपने ही असंयतजीवनको नहीं चाहता है, तो फिर अन्य जीवोंका असंयतजीवन क्यों चाहे ?।'

ठीक है, इस बातको तो हम भी स्वीकार करते हैं। साधु ऐसा चाहे ही क्योंकि दुनियाके प्राणी असंयत रहें ? साधुओंकी तो हमेशाके लिये यह भावना रहती है कि–'दुनियाके समस्त प्राणी, संयती–संयमी–व्रती–साधु–मुमुक्षु हो जाँय और उनका मोक्ष हो।' परन्तु ऐसा मानकरके, दुःखी प्राणीको बचानेकी कोशिश क्यों न करे ?। क्या नेमनाथप्रभु, पार्श्वनाथ प्रभु तथा श्रीमहावीरस्वामि, कि जिन्होंने जीवोंको बचाए हैं, वे जीवोंका असंयतजीवन चाहते थे ?। जब नहीं चाहते थे, तो फिर भी उन्होंने क्यों

बचावे ? । तब कहना होगा कि–' असंयतजीवन नहीं चाहना ' इसका मतलब यह नहीं है कि–असंयती जीवोंको नहीं बचाना । क्योंकि, ' असंयतजीवनका नहीं चाहना ' और ' असंयती जीवोंको बचाना ' ये दोनों भिन्न २ चीजें हैं । अत एव यह सिद्ध नहीं हो सकता है कि–' मरते हुए जीवोंको नहीं बचाना । '

इसी चोथी ढालमें भीखमजीने, अपने आपसे ही ऐसे २ कुविकल्प किये हैं कि—' अमुक प्रसंगमें साधु जीवको क्यों न बचावे ? ' । ' अमुक स्थानमें क्यों न बचावे ? ' लेकिन यह सब झूठी ही कल्पनाएं है । जिनका हृदय दयासे परिपूर्ण है, जो लोग जीवोंको बचानेमें धर्म समझते हैं, वे किसी भी प्रसंगमें दुःखी जीवोंको अपनी आंखोंसे नहीं देखसकेंगे । द्रव्य या भाव दोनोंमेंसे एक प्रकारकी तो अनुकंपा अवश्य ही करेंगे ।

तेरापंथियोंकी एक और फिलासोफीने तो कमाल कर दिया है । भीखमजी इसी चोथी ढालमें आगे जा करके कहते हैं:—

" साधु तो साधुने जीव बतावे, ते पोतारो पाप टालणरे काजे ।
श्रावक श्रावकने जीव नही बतावे, तो किसो पाप लागे किसो व्रत भाजे " ॥ ४२ ॥

बस, हद आ चुकी । भीखमजीने अपने श्रावकोंको खूब ही उपदेश दिया । बस, श्रावक संसारमें कितने ही अनर्थ करें, तेरापंथीयोंके मन्तव्यानुसार, उनको पाप लगेंगे ही नहीं । हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि—मेघरथ राजाने कबूतरको बचाया था, वह क्या साधु अवस्थामें बचाया था ? । पार्श्वनाथ प्रभुने सांपको निकलवाया था, वह क्या साधु अवस्थामें निकलवाया था ? । नेमनाथ प्रभुने जीवोंको बचाये थे, वे साधु अवस्थामें बचाये थे ? ।

नहीं, गृहस्थावस्थामें ही। तब फिर यह कैसे कहा जाय कि—गृहस्थ, कोई जीव मरता हो तो दिखावे ही नहीं ?। क्या भगवान्ने दया करना साधुओंके लिये ही कहा, गृहस्थोंके लिये नहीं ?। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता है ?। भगवान्ने, जीवोंको बचाना—बचवाना यह मनुष्य मात्रके लिये कहा। फिर वह साधु होवे चाहे गृहस्थ।

प्यारे पाठक ! तेरापंथियोंका तो यहाँ तक सिद्धान्त है कि—'श्रावक श्रावकको जीमावे, तो भी पाप लगे।' अर्थात् एक दूसरेको खिलाना—पिलाना भी नहीं। खूब कही। क्या तेरापंथी इस बातको नहीं जानते हैं कि—श्रावक यदि शक्ति होनेपर साधार्मिकवात्सल्य न करे अर्थात् स्वधर्मीबन्धुओंको न जिमावे, तो दर्शनाचारका पालन नहीं हो सकता है। (दर्शनातिचार लगता है) देखिये पन्नवणा सूत्रका पाठः—

" निसंकिय निकंखिय णिव्वित्तिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूहथिरीकहणे वच्छल्लपभावणे अट्ठ " ॥ १४ ॥

(प० ६५)

अर्थात्— १ समस्तप्रकारकी शंकाओंसे रहित पना, २ समस्त प्रकारकी कांक्षासे रहितपना, ३ फलप्राप्तिकी शंकासे राहित्य (साधु विषयक दुगंच्छा करके रहित, ऐसा भी अर्थ होता है) ४ अमूढदृष्टि, अर्थात् अन्यदर्शनीय आडंबरसे चलायमान न होना, ५ उपबृंहण अर्थात् स्वधर्मीबन्धुकी प्रशंसा करनी, ६ स्थिरीकरण, यानि धर्मसे खेदित होते हुए को स्थिर करना, ७ वात्सल्य अर्थात् स्वधर्मियोंकी भक्ति करना, और ८ प्रभावना यानि धर्मोत्सवादि।

उपर्युक्त आठ, दर्शनके आचार दिखलाये हैं। यदि इतनी बातें शक्त्यनुसार न करे, तो दर्शनातिचार लगे। (यही गाथा उत्तराध्ययन सूत्रके ८११ वें पृष्ठमें भी है)

अब सूत्रोंमें तो इस प्रकार, श्रावकोंको आपस २ में भक्ति करनेको दिखलाया है, तो फिर तेरापंथी ऐसे कार्योंमें पाप कैसे दिखलाते हैं ?। क्या श्रावकोंके लिये दया-दानका विधान है ही नहीं ? जरूर है। हम तो यहाँतक कहते हैं कि-वह महा-श्रावक ही नहीं कहा जा सकता है कि-जो दुःखी जीवोंको देख करके दया बुद्धिसे, यथ शक्ति धनादिसे उसके दुःखको दूर कर-नेकी चेष्टा नहीं करता है। देखिये, इस विषयमें, कलिकाल सर्वज्ञ प्रभुश्रीहेमचन्द्राचार्य योगशास्त्रमें क्याही स्पष्ट खुलासा करते हैं:-

"न केवलं सप्तक्षेत्र्यां धनं वपन् महाश्रावक उच्यते, किन्त्वतिदीनेष्वपि निःस्वान्धबधिरपङ्गुरोगार्तप्रभृतिषु कृपया केवलया धनं वपन् , न तु भक्त्या। भक्तिपूर्वकं हि सप्तक्षेत्र्यां यथोचितं दानम्। अतिदीनेषु त्वविचारितपात्रापात्रमविमृष्ट-कल्पनीयाऽकल्पनीयप्रकारं केवलयैव करुणया स्वधनस्य वपनं न्याय्यम्। भगवन्तोऽपि हि निष्क्रमणकालेऽनपेक्षितपात्रापात्र-विभागं करुणया सांवत्सरिकदानं दत्तवन्त इति। तदेवं भक्त्या सप्तक्षेत्र्यां दीनेषु चातिदयया धनं वपन् महाश्रावक उच्यते।"

(पृ० ५१४-५१५)

अर्थात्—केवल सात क्षेत्रोंमें धनका व्यय करे, उसको ही महाश्रावक नहीं कहते हैं, किन्तु अत्यन्त दीन, निर्धन, अन्ध, बधिर, पङ्गु और रोगोंसे दुःखी आदिमें केवल दयाकी बुद्धिसे द्रव्यव्यय भी करे, उसको महाश्रावक कहते हैं। ऐसे दीना-

दिकोमें द्रव्यव्यय भक्तिसे नहीं किया जाता है। भक्तिपूर्वक तो सातक्षेत्रोंमें ही यथोचित दान कहा है। और अतिदीनादिमें तो पात्र–कुपात्र, कल्पनीय–अकल्पनीय वगैरह विचारोंको छोड केवल दया–करुणा–अनुकंपासे ही स्वधनका व्यय करना योग्य है। और इसी तरह भगवान् भी दीक्षा लेनेके समय पात्रापात्रका विभाग नहीं करके करुणासे सांवत्सरिक दान देते हैं। कहनेका सार यह है कि–भक्तिसे सातक्षेत्रोंमें, दयासे दीनोंमें जो धन-व्यय करे उसीका नाम महाश्रावक है।

अब बतलाईये, तेरापंथियोंका सिद्धान्त कैसे शास्त्रोक्त कहा जा सकता है?। स्वबुद्धिसे भी कोई यह कहनेका साहस नहीं कर सकेगा कि–'श्रावकोंको पाप लगता ही नहीं' और 'किसीको खिलाना-पिलाना चाहिये ही नहीं।' शास्त्रकार तो यह कहते हैं कि–यदि दयासे गरीब मनुष्योंकी रक्षा न करे, तो उसको श्रावक ही नहीं कहा। और तेरापंथीयोंने तो श्रावकोंको यहाँतक छूट दे दी कि–उनको कोई पाप ही न लगे। तब तो तेरापंथी साधुओंसे, तेरापंथी श्रावकोंकी मुक्ति पहिले हो जायगी। जब ऐसा ही है, तो फिर साधु क्यों हो जाते हैं?। अस्तु,

इस चतुर्थ ढालमें भीषमजीने, यह भी बडे महत्त्वकी बात कहि है कि–"किसीके वहाँ लाय लगी हो, तो उसको बुझानेके लिये नहीं जाना चाहिये। अगर लायके बुझानेमें फायदा होता हो, तो कसाईको मारदेनेमें भी फायदा ही होना चाहिये।" जैसे कहा है:—

"जो लाय बुझायां जीव बचे तो, कसाईने मार्यां बचे घणा प्राणो॥
लाय बुझायां कसाईनें मार्यां दोयां रो लेखो सरीखो जाणो"॥५९॥

भीखमजीकी बुद्धिकी हम कहाँ तक तारीफ करें ? । जिनमें इतनी भी समझनेकी शक्ति नहीं है कि–लायको क्यों बुझाई जाती है, और कसाईको क्यों नहीं मारा जाता है ? । लायको बुझानेमें एकेन्द्रियजीवोंकी विराधनाके सिवाय अन्य कौनसा नुकसान है ? । परन्तु कसाईको मारनेमें पंचेन्द्रिय मनुष्यके मारनेका महान् पाप लगता है । हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–क्या एकेन्द्रियजीवोंके और पंचेन्द्रियजीवोंके पुण्य एक समान हैं ? । क्या एकेन्द्रियजीवोंकी विराधनामें और पंचेन्द्रियकी विराधनामें समान पाप लगता है ? । यदि ऐसा ही सिद्धान्त है तो फिर तुम्हारे श्रावक अन्नको क्यों खाते हैं ? । पंचेन्द्रियजीवोंको ही क्यों पका पका कर नहीं खाते ? । क्योंकि–तुम्हारे हिसाबसे तो एकेन्द्रिय–पंचेन्द्रिय समान ही हैं । और इस हिसाबसे तो हस्तितापसों जैसी प्रवृत्ति करनी पडेगी । खैर, इस निर्दयताके ऊपर हम विशेष लिखना नहीं चाहते, सिर्फ एक दृष्टान्तको ही लिख कर इसका उत्तर मांगना चाहते हैं ।

हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–तुम्हारे किसि साधुके पास, एक मनुष्य ऐसा आया कि, जो हमेशा कंदमूलको खाता है, और रोज सौ सौ बकरोंको भी मारता है । वह आ करके कहे कि–' आप मुझे दोनोंमेंसे एक सोगन दीजिये । यातो कंदमूल खानेकी कसम दे दीजिये, अथवा तो सौ बकरों मारनेकी कसम दे दीजिये । अब बतलाईये, तुम्हारे साधुजी किस बातका सोगन देंगे ? । कंदमूल नहीं खानेका, या कि बकरोंके, नहीं मारनेका ? । इसका जवाब दें ।

आगे चल करके पांचवीं ढालमें, एक यह भी विचारणीय बात कही हुई है कि–' द्रव्य देकरके किसीके प्राण न बचाने चाहियें, और जीव मार करके जीव न बचाने चाहियें । ' जैसेः–

" धन देराषे परमाणने, क्रोधादिक हो अठारेइ सेवाय,
एहजि कामां पोते करी, परजीवांने हो मरतां राषे ताह" ॥२२॥
" जीव मारी जीव रापणा, सूतरमें हो नहीं भगवंत वेण,
ऊंधो पंथ कुगुरां चलावियो, शुद्ध न सूझे हो फूटा अंतर नेण"॥२५॥

ये दोनों बातें मतिभ्रमसे लिखी हुई मालूम होती हैं। द्रव्य दे करके जीवोंको बचानेमें नुकशान कौनसा है ? यह पहिले सोचना चाहिये। हमारी दृष्टिसेतो इसमें दो प्रकारके लाभ देखे जाते हैं। एकतो उतने, द्रव्यपरसे मूर्च्छा कम होनेका और जीवके बचानेका। फिर द्रव्य देकरके क्यों न बचाना ?। और ऐसे तुच्छ बिचार तो अज्ञानी लोग ही कर सकते हैं कि–'रुपये दे करके जीवोंको छुडाये जायेंगे, तो उन रुपयोंके और जीव ला करके मारेगा।' जिसके हृदयमें दया देवीने निवास किया है, वह मनुष्य, अपने सामने मरते हुए जीवको कभी नहीं देख सकेगा। बचानेवालेका अभिप्राय तो उस मरते हुए जीवको बचानेका ही होता है। नकि रुपये दे करके और जीवोंके मरानेका। यदि द्रव्यव्ययसे जीवोंके बचानेका निषेध ही करते हो तो हम उन तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि, आपके साधु-साध्वियाँ, जीवोंको बचानेके लिये जिन उपकरणोंको रखते हैं, वे क्या द्रव्यव्ययके सिवाय आते हैं। तुम्हारे साधु–साध्वी जब बीमार पडते हैं, तब उनकी डॉक्टर-वैद्योंसे दवाई करवानेमें क्या द्रव्यव्यय नहीं होता है ?। फिर क्यों कर कह सकते हैं कि–जीवोंके बचानेमें द्रव्यव्यय नहीं करना चाहिये ?।

अब रही जीव मारकर जीव बचानेकी बात। सो यह भी ठीक नहीं है। जीवोंके मारनेकी बुद्धिसे जीव बचाये नहीं जाते हैं। किन्तु उस समय जीवोंके बचानेके ही परिणाम होते हैं।

और यदि तेरापंथियोंका यही सिद्धान्त सत्य हो कि–' एकेन्द्रिय जीवोंकी विराधनाके भयसे पंचेन्द्रिय जीवोंको नहीं बचाने चाहिये।' तो हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–मानलीजिये कि–तुम्हारी कोई साध्वी गोचरी लेनेको जा रही है। उस समय एक सांढ उसके पीछे पडा। और किसी तेरापंथीने अपनी दुकान परसे उसको देखा भी। अब बतलाइये, वह तेरापंथी, अपनी दुकान पर बैठे २ देखता ही रहेगा या कि दौड करके उस साध्वीको बचानेका प्रयत्न करेगा ?। क्या दुकानसे उठ कर उस साध्वीको बचावेगा, तो क्या उसमें एकेन्द्रियजीवोंकी विराधना नहीं होगी ?।

वैसे ही एक और दृष्टान्तको भी सुन लीजिये। आपके दो साधु, जिनमें एक गुरु है और एक चेला, कहीं पर जा रहे हैं। गुरुजीके सामने एक सांप काटनेके लिये धस आया। अब कहिये, दूर पर रहा हुआ चेला, दौड करके गुरुजीकी जानको बचानेका प्रयत्न करेगा या नहीं ?। यदि दौड करके बचावेगा, तो उसमें जीव विराधना जरूर ही होगी। और यह तो कह ही नहीं सकते हो कि–चेला, गुरुको बचानेका प्रयत्न न करे। क्यों कि–ऐसा करनेसे तो भक्ति भंगका महान् पाप लगेगा।

तब यह कहना ही होगा कि–संसारमें ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं है कि–जीव विराधना विना किये ही, जीवको वर्तमान दुःखसे बचाता हो। तो फिर ऐसी झूठी कल्पनाएं करके निर्दयताको क्यों बढाना चाहिये। हां, एक बात जरूर है कि, प्रत्येक कार्यमें मनुष्यको लाभालाभ और अधिकार अवश्य देखना चाहिये। और उसको देख करके ही कार्यमें प्रवृत्ति करनी चाहिये। अस्तु,

अब आगे चलिये। इसी पांचवीं ढालमें, राजाश्रेणिकने जो अमारी पटह बजवाया था, उसका भी उल्लेख किया गया है।

लेकिन इस कार्यको, भीखमजीने राजनीतिमें दिखलाया है, धर्ममें नहीं। इसमें कई एक कुतर्क भी किये हैं कि–' अगर धर्म होता तो अन्य चक्रवर्त्यादि राजाओंने **अमारी पटह** क्यों नहीं बजवाया ? ' वगैरह ।

भीखमजीकी बुद्धिका परिचय ऐसी बातोंमें खूब ही मिल जाता है। क्योंकि—भीखमजीको अभी तक यह भी मालूम नहीं है कि—अमारी पटह बजवाना, यह राजाओंके लिये राजनीतिका विषय नहीं है, किन्तु धार्मिक बात है। धार्मिक बातोंके लिये यह नहीं कहा जा सकता है कि—"अमुकने यह कार्य किया, तो औरोंने क्यों नहीं किया ? '

अगर ऐसा नहीं है, तो हम पूछते हैं कि—तुम्हारे मजहबमें इतने ही साधु-साध्वी क्यों है ? जितने पुरुष स्त्री हैं, वे सभी साधु--साध्वी क्यों नहीं हो जाते ? ।

अच्छा, अब तेरापंथी इस अमारी पटहके कार्यको राजनीति समझते हैं, यह उनकी बडीभारी भूल है। यदि यह राजनीतिका कार्य होता तो, सभी राजाओंने इस कार्यको करना चाहिये था। और किया तो नहीं है, तो फिर इसको राजनीति कैसे समझी जाय। तेरापंथी क्यों भूलते हैं ? । महाराजा कुमारपालने, क्या कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्यके उपदेशसे, अपने राज्यमें जीवहिंसा नही बंध करवाई थी ? । मुसलमान पादशाह अकबरने जैनाचार्योंके उपदेशसे क्या एक सालमें छ महिनो तक हिंसा नहीं बन्द की थी ?। क्या इन कार्योंको तेरापंथी, राजनीति समझेंगे ? यह कभी नहीं हो सकता ? । अमारी पटह बजवाकर जीवहिंसा बन्द करवाना यह धर्मकार्य ही है। देखिये प्रश्नव्याकरणसूत्रके पृष्ठ ३३५ से ३३९ में

दया के साठ नाम दिखलाए हैं, उनमें भी ५४ वाँ नाम अमाघाओ है। जिसका अर्थ होता है अनाघात यानि अमारीपटह। अब बतलाइये, इसको अधर्म कैसे कहा जा सकता है ?।

भीखमजीकी बुद्धिका एक और नमूना भी देख लीजिये। भीखमजी कहते हैं कि—" दो स्त्रियाँ कसाईके वहाँ चली गईं। एकने अपने पासके आभूषणोंको दे करके एक हजार जीव छोडाये, और एक स्त्रीने कसाईसे विषय भोग करके हजार जीव छोडाये। अब इन दोनोंमें किसीको धर्म नहीं हुआ। क्योंकि—एकने पाँचवा आश्रव सेवन किया और दूसरीने चौथा। फिर दोनोंमेंसे किसीको भी क्यों धर्म होवे ?। "

इससे तो यही मालूम हुआ कि—आश्रव किसका नाम है, यह भी भीषम नहीं जानता था। अच्छा, इस आश्रवके तत्त्वको हम समझावें, उसके पहिले, भीषमजीके, उपर्युक्त दृष्टान्तके प्रत्युत्तरमें एक और दृष्टान्तको सुनलीजिये।

आपकी दो श्राविकाएं, आपके पूज्यजीको वंदणा करनेके लिये जा रहीं थीं। रस्तेमें चोर मिल गये। एक श्राविकाने अपने पासके आभूषणोंको दे करके अपनी जान बचाई, और एकने विषय सेवन करके अपनी आत्मा बचाई। अब बतलाइये, आपके गुरुजी प्रायश्चित्त किसको देंगे ?। तुम्हारे हिसाबसे तो दोनोंको देना चाहिये, क्योंकि—एकने पांचवाँ आश्रव सेवन किया है, और एकने चोथा। लेकिन नहीं, जिसने अपने आभूषणोंको देदिये हैं, उसने आश्रवको नहीं सेवन किया, बल्कि, उन आभूषणों परसे मूर्च्छाको उतार दिया है। फिर उसको पांचवाँ आश्रव कैसे कहा जाय ?।

हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि--पांचवा आश्रव कहते किसे हो ? देखो पांचवें आश्रवका नाम है परिग्रह। अब, यह सोचना चाहिये

कि परिग्रह किसको कहते हैं ? । परिग्रह, खान–पान वस्त्र–पात्र इत्यादिको नहीं कहते हैं, किन्तु उनमें की हुई मूर्च्छाको कहते हैं । यदि मूर्च्छाको परिग्रह नहीं मान करके, वस्त्र--पात्र और खाने-पीने वगैरहको ही परिग्रह माना जाय, तो संसारमें किसीको केवलज्ञान होना ही नहीं चाहिये । क्योंकि–सभी मनुष्य, चाहे साधु हों, या गृहस्थ, खाते हैं, पीते हैं और वस्त्र भी रखते हैं । और जिनको केवलज्ञान हो भी गया है, वे भी तो खाते--पीते और वस्त्र रखते थे । फिर उनको केवलज्ञान कैसे हुआ ? । लेकिन नहीं, वस्त्रपात्रको परिग्रह नहीं कहते हैं, किन्तु मूर्च्छाको परिग्रह कहते हैं । और यही बात, भगवान्के वचनानुकूल है । क्योंकि–भगवान्ने अठारह पापस्थानोंको, जिनमें परिग्रह भी है, चारस्पर्शी कहे है । और वस्त्र–पात्र वगैरह तो आठ स्पर्शी हैं, फिर इनको (वस्त्र–पात्रादिको) परिग्रह नहीं कहना चाहिये, किन्तु मूर्च्छाको ही परिग्रह कहना चाहिये ।

अब छठी ढालको देखिये । छठी ढालके प्रारंभमें लिखा है:—

" जे अणकंपा साधु करे, तो नवां न बांधे कर्म ।
तिणमांहिली श्रावक करे, तो तिणने पिण होसी धर्म"॥२॥
" साधश्रावकदोनांतणी, एक अणकंपा जाण ।
अमृत सहुने सारखो, तिणरी मकरो ताण " ॥ ३ ॥

इससे यह दिखलाया कि–जो अनुकंपा साधुको करनेकी है, वह अनुकंपा श्रावकको भी करनी चाहिये । जब ऐसा ही नियम है तो फिर, भीखमजीने, किस भंगके नशेमें, चोथी ढालमें ऐसा लिख मारा कि–" साधुके पाँऊ नीचे जीव आता हो, तो दूसरा साथ चलनेवाला साधु उसको दिखावे । लेकिन, गृहस्थके पैर नीचे जीव आता हो, तो उसको दूसरा श्रावक न दिखावे । "

देखिये, भीषमजीका पूर्वापर विरोध। अब, इसके लिये क्या कहा जाय, जिसके वचनका ही ठिकाना नहीं है?।

तेरापंथियोंका एक यह भी कहना होता है, कहना क्या होता है, भीषमजीने लिखा भी है कि–' यदि कोई मनुष्य, किसी जीवको मारता हो, तो उसको द्रव्यादि दे करके छोडाना तो दूर किनार रहा, किन्तु 'मतमार' ऐसा भी नहीं कहना चाहिये'। अब बतलाईये। यहाँतक जिसका उपदेश है, उसको क्या कभी मजहब कह सकते हैं?।

अच्छा, और देखिये। आठवी ढालमें कहा है:—

" पहिली हिंस्या कीयां पछे धरम बतावै।
तो कुगुरुवाणी, जेहवी वेहती घाणी " ॥ यां० ॥२०॥

भीखमजीके कहनेका मतलब यह है कि–जिस धर्मके कार्यमें पहिले हिंसा होती हो, तो उस धर्मके कार्यको भी अधर्मका ही समझना चाहिये। हम तेरापंथी साधुओंसे पूछते हैं कि–आप लोग जितनी क्रियाएं करते हैं, उन सबमें जीवविराधना–हिंसा होती है कि नहीं?। अगर होती है तो फिर उन सब कार्योंको अधर्मके कार्य क्यों नहीं कहते?। तुम्हारे श्रावक लोग, दूरदूरसे अनेक प्रकारके आरंभ समारंभोंके साथ तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेके लिये जाते हैं, उसको भी अधर्मका कार्य क्यों नहीं समझते?। अनेक प्रकारकी हिंसा करके पाट महोत्सव करते हो, उसको भी अधर्म क्यों नहीं समझते? बल्कि हम तो यहाँ तक कहते हैं कि–आपका, व्याख्यान वांचना, प्रतिक्रमण पडिलेहण करना, गुरु वंदन करना, गोचरी जाना, ठंडील (जंगल) जाना, उन सभी कार्योंको छोड करके एक जगह पर चुपचाप बैठ जाना

चाहियें। तब कहना ही होगा कि–प्रत्येक कार्यमें लाभालाभ देखा जाता है। जैसे किसी मनुष्यने एक लाख रुपयोंका व्यापार किया। उसमें उसको पांचसौ रुपये महसूलके भी लग जाते हैं, परन्तु व्यापारी इन पांचसौ रुपयोंके खर्चको नहीं देखता है, किन्तु इस व्यापारमें, इसको जो दश–पांच पचीस हजारका फायदा होनेवाला होता है, उसीको देखता है। बस इसी तरहसे, धर्मके कार्योंमें भी कथंचित् हिंसाका दोष लग भी जाय, तो भी विशेष लाभ की दृष्टिसे इसकी गिनती नहीं की जा सकती है। और वह हिंसा भी, स्वरूप हिंसा है, अनुबंध हिंसा नहीं। और जो स्वरूप हिंसा होती है, उसमें पाप बन्ध नहीं होता है।

जो मनुष्य जिस विषयको अच्छी तरह समझा ही नहीं है, वह यदि उस विषयकी चर्चा करने लग जाय, अथवा यों ही कहिये कि–विना समझे ही अनधिकार चर्चामें प्रवेश करे, तो उसको बातबातमें ठोकरें खानी पडती हैं। तेरापंथ–मतके उत्पादक भीखमजी, दया–अनुकंपाका स्वरूप नहीं समझ करके ही अनुकंपाकारास लिखने बैठे मालूम होते हैं। अगर ऐसा न होता तो वे नववी ढालमें दयाका–अनुकंपाका स्वरूप ऐसा दिखलाते ही क्यों कि:—

"जीव जीवे तें दया नहीं, मरे ते हो हिंसा मति जाण।
मारण वालाने हिंसा कही, नही मारे हो तेतो दयागुणखाण"॥११॥

हमने मान लिया कि–मारनेवालेको हिंसा कही। परन्तु जो न मारे, उसको दया नहीं कही है। हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि—

एक मनुष्य जंगलमें शिकार खेलनेको गया है। उसके रोम–रोममें किसी पशुके मारनेका परिणाम हो रहा है, लेकिन वह

पशु, अपने आयुष्यकी प्रबलतासे उस शिकारीके हाथमें नहीं आता है। अब बतलाईये, उस शिकारीको क्या आप लोग उस समय दयालु कहेंगे ?। अगर भीषमजीके वचनको सत्य मानते हो, तो तुम्हें, उसको दयालु ही कहना पडेगा। क्योंकि-उसने पशुको मारा नहीं है। और भीखमजी तो यही कहते हैं कि-' मारे नहीं उसको दया कही।' लेकिन नहीं, भीखमका कहना नितान्त झूठा है। यदि ऐसा ही सिद्धान्त जिनशासनका होता, तो 'परिणामसे बन्ध' ऐसा कहा ही न जाता। परमात्माके शासनका तो यही सिद्धान्त है कि—चाहे मनुष्य जीवको मारे चाहे न मारे, परन्तु जबसे उसके, हिंसाके परिणाम होते हैं, तबसे उसको पातक लगता ही है।

तेरापंथियोंके सिद्धान्तसे तो एक यह भी बात निकलती है कि—जो लोग, स्वयं जीवको न मारकर, कसाई वगैरहके वहाँसे तय्यार मांसको ला करके पका खाते हैं, उनको पातक न लगने चाहियें। क्योंकि—तेरापंथियोंका तो सिद्धान्त यही कहता है कि—" जीवको मारे उसीको हिंसा लगती है, और तो सब दयालु ही है।" लेकिन, जब हम जैन और जैनतर शास्त्रोंको भी देखते हैं, तब तो यही दृष्टिगोचर होता है कि—मारनेवाला अकेला पातकी नहीं है, किन्तु उसके पीछे और भी मनुष्य पातकी बनते हैं। जैसे, हिन्दूओंके धर्म ग्रंथोंमें लिखा है:—

" अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः " ॥१॥

अर्थात्—मारनेमें सलाह देनेवाला, मरे हुए जीवोंको शस्त्रसे पृथक् २ करनेवाला, मारनेवाला मोललेनेवाला, बेचनेवाला, सँवारनेवाला, पकानेवाला और खानेवाला ये सब घातक ही कहलाते हैं।

अब बतलाईयें, ' मारे नहीं उसको दया कहो, ' यह सिद्धान्त कैसे सिद्ध हो सकता है ? तब कहना ही होगा कि-' दया ' इसीका नाम है कि-" दुःखितेषु दुःखप्रहाणेच्छा " अर्थात् दुःखी जीवोंको दुःखसे मुक्त करनेकी इच्छाको ' दया ' कहते हैं। दया उसको नहीं कहते हैं कि-मूँहपर मुहपत्ती बांध करके किसी स्थानमें बैठ जाना। पहिले दयाके रहस्यको समझना चाहिये। 'दया दया' करनेसे दयाका गुण नहीं प्राप्त हो सकता, दया अन्तःकरणके आर्द्र परिणामको कहते हैं। और मनुष्यमें मनुष्यत्व भी यही है कि-' किसी दुःखी जीवको देख करके अपने अन्तःकरणमें दुःखी होना। और इस प्रकार हो करके, उसको दुःखसे मुक्त करनेके लिये प्रयत्न भी करना। '

अब इस विषयमें भीखमजीके अनुकंपा रासकी विशेष आलोचना करके पाठकोंका अधिक समय लेना, व्यर्थ है। क्योंकि-जो मनुष्य, दयाके स्वरूपको समझ ही नहीं सका है, अथवा यों ही कहिये कि-दया किसका नाम है, यह भी नहीं जानने पाया है, वह मनुष्य अपने मनःकल्पित दृष्टान्तोंको देदे कर भद्रिकजीवोंके भावप्राणोंके लेनेका प्रयत्न करे तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। लेकिन बुद्धिमान् लोगोंको तो, एकाध बातसे ही, लिखनेवालेके ज्ञानसागरकी थाह अच्छी तरह मिल जाती है। बस, इसी नियमानुसार, भीखमके उपर्युक्त वचनसे ही विज्ञ पाठकोंने, उसके झूठे दृष्टान्त-दलीलोंकी कल्पना कर ली होगी, तिसपर भी सन्तोषके लिये, उसके दिये हुए सात दृष्टान्तों पर कुछ विचार कर, अनुकंपा रासकी आलोचनाको खतम करेंगे। और पश्चात् अनुकंपा विषयक और भी दो एक पाठोंको देकर, इस पुस्तककी परिसमाप्ति की जायगी।

अनुकंपारासकी सातवीं ढालमें इस प्रकारके सात दृष्टान्त दिये हैं:—

१ मेंढक–मच्छ वगैरह जीवोंसे भरे हुए पानीके कुंडमें भैंस पानी पीनेको आई।

२ खडे हुए अनाजके ढेरको, जिसमें बहुत जीव हैं, खानेके लिये एक बकरा आया।

३ जमीनकंदसे भरे हुए गाडेको देखकर एक बैल खानेके लिये आया।

४ अनछने कच्चे पानिके घडे भरे हुए पडे हैं, उनको देख एक गाय पानी पीने आई।

५ किसी सडे हुए खातमें बहुत जीव पडे हैं, उनको खानेके लिये कुर्कुट (कूकडे) वगैरह जीव आए।

६ एक स्थानमें बहुत चूहे फिर रहे हैं, उनको पकडनेके लिये बिल्ली आई।

७ खांड–गुडके ऊपर बहुत मक्खियें बैठी हैं, उनको पकडनेके लिये मकोडे आये।

अब तेरापंथी, कहते हैं कि–" साधु, इन सातों प्रसंगोंमें मौन रहे। क्योंकि–उसका तो समस्त जीवोंपर समभाव है, फिर चाहे एकेन्द्रिय हों, चाहे पंचेन्द्रिय।"

लेकिन तेरापंथियोंने ऐसा समभाव दिखलाकर बडा भारी अनर्थ किया है। साधु, कहाँपर मौन रहे? और कहाँपर जीवोंके बचानेका प्रयत्न करे, यह खास समझनेका विषय है। और यह बात तब ही समझी जा सकती है, जब कि–जीवोंके एकेन्द्रियादि भेद समझे जाँय। तेरापंथियोंमें इस प्रकारका ज्ञान नहीं होनेसे ही वे ऐसे

२ अनर्थ कर बैठे हैं। जीव एकेन्द्रियसे ले करके पंचेन्द्रिय पर्यन्त होते हैं। और एक एक इन्द्रियके बढते जानेसे उनका पुण्य भी बढता जाता है। अर्थात् एकेन्द्रियसे बेइन्द्रियका, बेइन्द्रियसे ते इन्द्रियका, तेइन्द्रियसे चउरिन्द्रियका, और चउरिन्द्रियसे पंचेन्द्रियका पुण्य कई गुना अधिक है। पंचेन्द्रियमें भी सबका समान नहीं। ज्यों २ अधिकार बढता जाता है, त्यों २ पुण्यमें भी आधिक्य माना जाता है। जैसे आचारांगनिर्युक्तिमे कहा है: —

" सत्तविराहणपावं असंखगुणीयस्स एगभूयस्स।
भूयस्साणंतगुणं पावं इक्कस्स पाणस्स ॥ १ ॥
बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय तहेय चेव पंचिंदी।
लक्खसहस्सा तह सय गुणंतपावं मुणेयव्वं " ॥ २ ॥

अर्थात्—असंख्यातगुणे पृथ्वी-अप्-तेज-वाऊ कायके सत्त्वोंके हननेसे एक वनस्पति कायके भूतको हननेका पाप लगता है। और अनन्तगुणे भूत वनस्पतिकायके हननेसे एक बेइंद्रिय प्राणके हननेका पाप लगता है। लक्ष बेइंद्रियके विनाशसे एक तेइन्द्रियके हननेका पाप लगता है। हजार तेइन्द्रियके विनाशसे एक चउरिंद्रियका पाप लगता है। सौ चउरिंद्रियके नाशसे एक पंचेंद्रियका पाप लगे।

कहनेका मतलब यह है कि—इस प्रकार जीवाके भेदोंको समझ करके ही साधुको ऐसे कार्योंमें प्रवृति करनेकी है। साथ ही साथ दूसरी बात यह भी है कि—साधुको लाभालाभ भी देखना चाहिये अमुक कार्यके करनेसे कितना लाभ है ? और कितना नुकशान ? इसको भी अवश्य सोचना चाहिये। यदि इन बातोंको विना सोचे, विना समझे, सभी विषयोंमें समभावकी ही माला जपने लग जाँय,

तो संसारमें साधुके हृदयमें दयाका नाम तक रहने न पावे। इस लिये विचार करनेसे मालूम होगा कि–तेरापंथियोंके दिये हुए उपर्युक्त सातों प्रसंगोंमें समानता हर्गिज नहीं हैं। उनमें कई प्रसंग, साधुको मौन रहने लायक हैं, और कई बचाने लायक। क्योंकि जहाँ जैसा अधिकार–जैसा लाभ है, वहाँ वैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिये।

संक्षेपसे कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि–भिखमजीने, उपर्युक्त सात प्रसंग विना समझे ही दिये हैं। इसी प्रकार पांचवीं ढालमें सौ सौ मनुष्योंको, अन्न खिला कर, पानी पिला कर, हुक्का पिला कर, वगैरह एकेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा पूर्वक बचानेके सात दृष्टान्त दिये हैं। लेकिन, वे भी, भीखमकी अज्ञानताको ही जाहिर करते है कि उसमें यह ज्ञान था ही नहीं कि– एकेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा होते हुए भी पंचेन्द्रियके बचानेमें कितना लाभ होता है ?।

इन सात दृष्टान्तोंमें तो भीखमजीने एक और भी रीतिसे, अपने पांडित्य (!) का परिचय कराया है। वह यह है कि–बहुतसे दृष्टान्त तो असंभवित ही दिये हैं। देखिये, क्या यह कभी हो सकता है कि–सौ मनुष्य मुले–गाजर खाकरके ही बचें, और किसी उपायसे न बचे ?। क्या यह कभी माना जा सकता है कि–सौ बीमार मनुष्य हुक्केके पीनेसे ही बचे, और किसी उपायसे न बचें ?। और, क्या कभी किसीने सुना भी है कि–मरते हुए सौ मनुष्योंको बचानेके लिये किसी एक मनुष्यके मस्तकमेंसे ममाई निकाली जाय ?। लेकिन बहादुरी हैं भीखमजीकी, कि जिन्होंने भोले जीवोंको फँसानेके लिये ऐसे असंभवित भी दृष्टान्त दे दिये हैं। (ममाई मनुष्यके मस्तकमेंसे बनाई जाती है, यह भी बात झूठी है। ममाई, किसी अन्य पदार्थसें बनाई जाती है, ऐसा वैद्योंका अभिप्राय है।)

अच्छा, अभी एकाध बात और भी सुन लीजिये। तेरापंथियोंका एक यह भी सिद्धान्त है कि–"कोई मनुष्य आकरके साधुके गलेमें फांसी दे गया हो, और साधुजी बडे कष्ट पाते हों, तो भी साधुजीके गलेमेंसे फांसी नहीं खोलनी चाहिये।" खूब कहा। साधुजीकी फांसी खोलनेमें कौनसा पाप लग जाता है ?। यदि यह कहा जाय कि–'साधुजी महाराज अपने कर्मोंको भोग रहे हैं, उसमें अन्तराय नहीं करनी चाहिये।' लेकिन, यह कहना बिलकुल असत्य है। क्योंकि–यदि ऐसा ही है तो फिर हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–तुम अपने साधु साध्वियोंको आहारपानी क्यों देते हो ? उनको, अपने कर्मोंको भोगने दीजिये। मालमसाले और पानी देकरके, कर्मोंको भोगनेमें अन्तराय क्यों करते हो ?। जब तुम्हारे साधु–साध्वी बीमार पडते हैं, तब डॉक्टर या वैद्यके लिये दौड–धूप क्यों करते हो ?। उनको अपने कर्मोंको अच्छी तरह भोगने दीजिये। तब कहना ही होगा कि–साधु मुनिराज इस बातको न चाहें कि–'मेरी फांसी कोई खोले'। परन्तु गृहस्थोंका यह धर्म है कि–फांसीको खोल करके साधुको शाता पहुँचावे। जैसे, उत्तराध्ययनसूत्रके, ३५ अध्ययन, पृ० १०१२ में कहा है कि —

"अच्चणं सेवणं चेव वंदणं पूयणं तहा।
इड्ढीसक्कारसम्माणं मणसावि न पत्थए" ॥ १८ ॥

अर्थात्—साधु, अपना, अर्चन, सेवन, वंदन, पूजन तथा ऋद्धि, सत्कार–सन्मान, इनकी मनसे भी अभिलाषा न करे। फिर वचन–कायकी तो बातही क्या ?)

अब बतलाइये, साधु, वंदन-पूजनको न चाहे, तिसपर भी उसको गृहस्थ लोग वंदन–पूजन करते हैं, उस समय निषेध नहीं

किया जाता है, बस, इसी प्रकार साधु, यद्यपि फांसी खुलवानेकी भावना न करे, तो भी गृहस्थोंका धर्म है कि–साधुकी फांसी खोलें।

संसारमें देखनेसे मालुम होता है कि–मनुष्य ही नहीं, बल्कि प्राणि मात्र अपने २ प्राकृतिक–स्वाभाविक धर्मोंको पालन करते ही हैं। इसकी दृढताके लिये, पाठक, एक छोटेसे दृष्टान्तको यहाँ सुन ले।

" एक समयकी बात है। एक बिछू, अत्यन्त उष्ण रेतीमें पडा हुआ बहुत कष्ट पा रहा था। एक छोटे लडकेने उसको देखा। और लडकेका बचपनसे यह शिक्षा मिली हुई थी कि–कोई भी जीव यदि कष्ट पा रहा हो, तो उसको कष्टसे मुक्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। लडकेने झटसे बिछूको पकडा, और छायामें रख दिया। कहनेकी आवश्यक्ता नहीं है कि–बिछूका क्या स्वभाव होता है ?। लडकेने ज्योंही बिछूको पकडा, त्योंही उसके हाथमें डंक मारा। थोडी देरके बाद वही बिछू फिर उष्ण रेतीमें आ गया और दुःखी होने लगा। दूसही दफे भी लडकेने उठा कर छायामें रख दिया, और बिछूने काटा भी। ऐसे तीन बार लडकेने बिछूको उठाया, और तीनों बार बिछूने काटा। उस समय वहाँ एक मनुष्य खडा था, उसने उस लडकेसे कहा–अरे! यह क्या तेरेको सूझा है ?। तीनों-दफे तुझको बिछूने काट खाया, लेकिन फिर भी तू उसको उठा उठा कर अलग रखता है ?। तब उस लडकेने यही जवाब दिया, कि–' देखिये बिछू जैसा प्राणी भी अपने स्वाभाविक धर्मको नहीं छोडता है,' तो भला, मैं मनुष्य हो करके, अपने स्वाभाविक धर्मको कैसे छोड सकता हूँ। अर्थात् बिछू, अपने काटनेके धर्मको पालन कर

रहा है, तो फिर मैं मेरे दया धर्मको (जो कि—मनुष्योंके अन्तःकरणमें स्वाभाविक ही रहा हुआ है) कैसे छोडूं।

कहनेका मतलब यह है कि—चाहे साधु हो, चाहे गृहस्थ, अगर वह किसी आफतमें आ फँसा हो, तो उसको अवश्य छोडने-छोडानेका प्रयत्न करना ही चाहिये फिर चाहें वह (फँसा हुआ मनुष्य), अपने अन्तःकरणमें कैसी ही भावना रखता हो।

बहुतसे तेरापंथी, वंदितासूत्रकी

" सुहिसु अ दुहिएसु अ जा मे असंयसु अणुकंपा
रागेण व दोषेण व निंदे तं च गरिहामि " ॥३१॥

इस गाथाको आगे करके कहते हैं कि—" देखो, इस गाथामें असंयतीमें अनुकंपा की हो, उसकी निंदा—गर्हा की है।" लेकिन यह समझना भूल है। इस गाथामें बडा भारी रहस्य रहा हुआ है। पहिले इसका अर्थ समझ लेना चाहिये। इसका अर्थ यह है:—

" सुखी अथवा दुःखी, ऐसे असंयतीमें, राग या द्वेषसे जो अनुकंपाकी हो, उसकी मैं निंदा—गर्हा करता हूँ। "

इस गाथामें, असंयतीकी अनुकंपा करनेमें दो कारण दिखला कर उन दो कारणोंकी निंदा की है। वे दो कारण है राग और द्वेष। जैसे, कोई अपना स्वजनादिक असंयती हो, और उसपर प्रेम—रागसे जो अनुकंपा की हो, उसकी निंदा है, और 'द्वेष'से यह है कि—जैसे किसी असंयतीको, ' देखो तुम तो हमारे शासनके द्रोही हो—प्रत्यनीक हो, तिसपर भी हम तुमको देते हैं ' ऐसे द्वेषपूर्वक अनुकंपा की जाय, उसकी निंदा है।

अब, विशेष स्पष्ट करनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि—वह निंदा अनुकंपा की नहीं, किन्तु राग—द्वेष की है। लेकिन, इस राग-

द्वेषकी निंदासे, यह कभी नहीं निकल सकता है कि–करुणा बुद्धिसे असंयती जीवोंपर अनुकंपा नहीं करनी चाहिये।

उपर्युक्त गाथाके, 'वंदारुवृत्ति' 'श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति,' 'धर्मसंग्रहवृत्ति' वगैरह ग्रंथोंमें तीन प्रकारके अर्थ किये हैं, परन्तु उन तीनों प्रकारके अर्थोंमें 'राग–द्वेषकी ही निंदा–गर्हा' होनेसे तीनोंमेंसे एक ही अर्थ यहाँ पर दिया गया है। विशेष जाननेकी इच्छा होवे, वे उन ग्रन्थोंको देख सकते हैं।

जब मनुष्यका, येन केन प्रकारेण अपनी बातके रखनेका ही इरादा होता है, तब यह शब्दार्थ वा प्रकरणके ऊपर खयाल नहीं रखता है। यही हाल तेरापंथियोंका भी है। तेरापंथी कहते हैं कि–

"भगवतीसूत्रके आठवें शतकके पांचवें उद्देशेमें असंयतिके पोषणका निषेध किया है।" लेकिन यह बिलकुल असत्य बात है। तेरापंथी उस प्रसंगको समझे ही नहीं है। बात यह है:–

भगवतीसूत्रके आठवें शतकके पांचवें उद्देशेमें, पनरह कर्मादानोंका प्रसंग चला है। उन पनरहकर्मादानोंमें 'असईपोसणया' ऐसा भी नाम है। देखिये वह पाठः—

"ईंगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे फोडीकम्मे दंतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे केसवाणिज्जे रसवाणिज्जे विसवाणिज्जे जंतपीलकम्मे निलंछणकम्मे दवग्गिदावणिया सरदहतलावपरिसोसणया असईपोसणया" (पत्र ६०९)

इन पनरह कर्मादानोंमें, पनरहवाँ 'असईपोसणया' दिखलाया है। इसका अर्थ 'असंयतीका पोषण' नहीं होता है, किन्तु 'असतीका पोषण' होता है। और इस असतीके पोषण करनेके लिये भगवान्‌ने निषेध फरमाया है। अर्थात् जैसे चौदह प्रकारोंके व्या-

पारोंका भगवान्ने निषेध फरमाया, वैसे 'असती' के व्यापारका भी निषेध दिखलाया। जैसे कोई मनुष्य, अनेक दासियोंको रक्खे, और उनको किराये पर दूसरोंको दे कर पैसा पैदा करे, इस व्यापारका निषेध किया है। और टीकाकार भगवान्ने भी 'असइपोसणया' का यही अर्थ किया है कि:—

"दास्यासत्कभाटीग्रहणाय, जनेन च कुक्कुटमार्जारादिक्षुद्र जीवपोषणमप्याक्षिप्तं दृश्यमिति"

टीकाकार भगवान्ने दासीके उपरान्त कुक्कुटमार्जारादि क्षुद्रजीवोंके पोषणका भी ग्रहण कर लिया है। ठीक है, यह व्यापार भी निंदनीय ही है। अब यहाँपर असंयतीके पोषणका प्रसंग ही क्या है?

विचारनेकी बात है कि–उपर्युक्त पनरहकर्मादान, श्रावकके सातवें व्रत भोगोपभोग के अतिचारमें गिनाए हैं। और 'असई-पोसणया' का अर्थ कदाचित् 'असंयतीका पोषण' किया जाय, तो आनन्दादि जिन २ श्रावकोंने बारहव्रत अंगीकार किये थे, उनकी करणीमें असंयतीका पोषण होना ही नहीं चाहिये। लेकिन हम जब उनकी करणीको देखते हैं, तब तो यही मालूम होता है कि—उन व्रतधारी श्रावकोंने भी गाय–भैंस–बैल वगैरह पशुओंका रक्षण किया है और दास–दासियोंका भी पोषण किया है अब बतलाईये कि, बारह व्रतधारी होनेपर उन्होंने, उन असंयतीयोंका पोषण क्यों किया? । लेकिन, नहीं, कहना होगा कि, यहाँपर 'असईपोसणया' का अर्थ, 'असंयतीका पोषण' नहीं है, किन्तु 'असतीका पोषण' है। और 'असतीपोषण' व्यापार निमित्त किया जाय, तब ही वह पनरह कर्मादानोंके अन्दर

गिना जा सकता है। अतएव तेरापंथी जो अर्थ करते हैं, वह बिलकुल असंगत ही है।

अब एक और बात देख लीजिये। निशीथसूत्रके बारहवें उद्देशेमें इस प्रकारका पाठ है:—

"जे भिक्खू कोलुणपडियाए अणयरं तसपाणजायं तणपासएण वा मुंजपासएण वा कट्ठपासएण वा चम्मपासएण वा वेत्तपासएण वा रज्जुपासएण वा सुतपासएण वा बंधइ बंधंतं वा साइज्झइ, जे भिक्खू बंधेलयं वा मुयइ मुयंतं वा साइज्झइ—

इस पाठको लेकरके तेरापंथी कहते हैं कि—"करुणा (अनुकंपा) करके किसी त्रस जीवको बांधे—बंधावे और बांधतेको अच्छा जाने, उसको चौमासी प्रायश्चित्त आवे, और अनुकंपासे छोडे—छोडावे और छोडतेको अच्छा जाने, उसको भी चौमासी प्रायश्चित्त आवे, ऐसा सूत्रमें कहा है।"

प्रथम तो तेरापंथी 'कोलुणपडियाए' का अर्थ ही नहीं समझे हैं। और दूसरे साधुके लिये यह प्रसंग कब संभवित हो सकता है, इसको भी नहीं विचारा है। अस्तु, पहिले उपर्युक्त पाठके अर्थको देख लीजिये। उपर्युक्त पाठका अर्थ यह है:—

"जो कोई साधु, कोलुणपडियाए अर्थात् कारुण्यप्रतिज्ञासे अन्य त्रस प्राणीकी जातिको, तृणके बंधसे, मुंजके बंधसे, काष्टके बंधसे, चमडेके बंधसे, वेत्रके बंधसे, रज्जुके बंधसे, अथवा सूत्रके बंधसे बांधे, अथवा बांधनेवालेको सहायता करे तो, एवं बांधे हुए को छोडे अथवा छोडनेवालेको सहायता करे तो चौमासी प्रायश्चित्त आवे।"

अव्वल तो तेरापंथी उपर्युक्त पाठका अर्थ ही झूठा करते हैं। क्योंकि—उपर्युक्त पाठमेंसे यह नहीं निकलता है कि—"बांधे-

बंधावे और बांधने वालेको अच्छा जाने, तथा छोडे छोडावे और छोडने वालेको अच्छा जाने उसको चौमासी प्रायश्चित्त आवे।" उपर्युक्त पाठमेंसे तो "बांधे और बांधनेवालेको सहायता करे, छोडे और छोडनेवालेको सहायता करे उसको चौमासी प्रायश्चित्त आवे" यही अर्थ निकलता है। यदि इस अर्थपर तेरापंथियोंने खयाल रक्खा होता, तो उन्हें मालुम हो जाता कि—साधुके लिये ऐसा प्रसंग कब उपस्थित हो सकता है?। क्योंकि—साधु गृहस्थसंबंधि समस्त कार्योंसे पृथक् हो गये हैं। अतएव उन्हें न किसी त्रस जाति (गाय-भेंस वगैरह्) के बांधने छोडनेका काम पडता है, और न उनके पासमें तृण, मुञ्ज, काष्ठ, चाम, वेत्र, वगैरह् के बंधन (रस्सीएं) ही रहते हैं। फिर भी ऐसे प्रसंगमें प्रायश्चित्त क्यों कहा?। इसके लिये ऐसा प्रसंग खोजना पडेगा और वह यही प्रसंग मालूम होता है कि—जैसे,

कोई साधु गृहस्थके घरपर भिक्षाके लिये चला गया हो। उस समय साधु भिक्षाकी लालचसे, यह विचार करे कि-'इसके गाय-भेंसको बाँधूँ तो यह मुझको अच्छी तरह भोजन देगा।' ऐसा विचार करके उसके गाय भैंसको बांधे, अथवा गृहस्थ बांधता हो तो सहायता करे, एवं छोडे अथवा छोडता हो तो सहायता करे। बस ऐसे प्रसंगोंके लिये चौमासी प्रायश्चित्त कहा है। और इसी लिये, 'कोलुणपडियाए' पाठ दिया है, जिसका अर्थ होता है 'कारुण्यप्रतिज्ञासे।' अर्थात् यहाँपर साधुके मनका यह अभिप्राय है कि—यदि मैं इसका काम करुंगा, तो मेरे पर अनुकंपा लाकर अच्छी तरह आहार देगा। लेकिन इससे अनुकंपाका निषेध नहीं होता है। यदि यह प्रसंग अनुकंपाके लिये होता, अर्थात् साधुके पशुओंको बांधने-छोडनेमें अनुकंपा

दिखलाई होती, तो 'कोलुणपडियाए' पाठ न होता, किन्तु 'अणुकंपयणट्ठाए' ऐसा पाठ होता, और ऐसा है तो नहीं। तब कहना होगा कि—यह प्रायश्चित्त इसी लिये दिखलाया है कि—साधुको भिक्षाके लिये किसी प्रकारकी मूर्छा रखनेका निषेध होनेपर मूर्च्छा की और दूसरे अपने भिक्षाके स्वार्थके लिये गृहस्थका काम किया।

इस लिये निशीथके उपर्युक्त पाठको ले करके तेरापंथी अनुकंपाका निषेध करते हैं, यह भी उनका भ्रमप्रदर्शक ही है।

अच्छा एक और पाठको भी देख लीजिये। भगवतीसूत्रके श० ८, उ० ६, पत्र ६१० से ६१२ में इस प्रकारके तीन पाठ हैं:—

"समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ? गोयमा! एगंतसो से निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जइ।"

"समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ? गोयमा! बहुतरिया से निज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ।"

"समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं असंजयअविरयअपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा असणपाणजाव किं कज्जइ? गोयमा! एगंतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से काइ निज्जरा कज्जइ।"

उपर्युक्त पाठोंके अर्थ ये हैं:—

" हे भगवन् ! तथारूप श्रमण माहणको फासुएषणीय, अशन--पानखादिम--स्वादिम देनेसे श्रमणोपासकको क्या होता है ?, हे गौतम ! एकान्त निर्जरा होती है, पाप कर्म नहीं होता है।"

" हे भगवन् तथारूप श्रमण--माहणको अफासु, अनेषणीय अशन--पान--खादिम--स्वादिम देनेसे श्रमणोपासकको क्या होता है ?, हे गौतम ! बहुत निर्जरा होती है और अल्पतर पापकर्म होता है।"

" हे भगवन् ! तथारूप असंयती-अविरती तथा जिसने प्रत्याख्यान करके पापकर्मको दूर नहीं किया है, ऐसेको, अर्थात् अप्रत्याख्यानीको, फासु या अफासु, एषणीय या अनेषणीय, अशन-पान--खादिम--स्वादिम देनेसे, श्रमणोपासकको क्या होता है ? हे गौतम ! एकान्त पाप कर्म होता है, निर्जरा बिलकुल नहीं होती है।"

अब तेरापंथीलोग, इन तीनों पाठोंमेंसे प्रथमके दो पाठोंको छिपा करके तीसरे पाठको आगे करते हैं। और कहते हैं कि--' देखो भगवतीसूत्रमें भी असंयती--अविरतीको दान देनेसे एकान्त पाप दिखलाया है।' परन्तु इन तीनों पाठोंमें, जोकि एक साथ दिये हुए हैं, बडा भारी रहस्य रहा हुआ है। वह यह है उपर्युक्त तीनों पाठ मोक्षफलकी विवक्षासे दिये हुए हैं। क्योंकि--यहाँ सुपात्रदानकी बात चली है। और जो सुपात्र दान होता है, उसका फल मोक्ष दिखलाया है। और यही बात भगवान् टीकाकारने भी यों लिखी है:--

" सूत्रत्रयेणापि चानेन मोक्षार्थमेव यद्दानं तच्चिन्तितं, यत्पुनरनुकम्पादानमौचित्यदानं वा तन्नचिन्तितम् " (प० ६१२)

अर्थात्--उपर्युक्त तीनों सूत्रोंसे मोक्षार्थ दानका ही विचार किया गया है। और अनुकम्पा और उचितदान की यहांपर चिन्ता नहीं

की गई है। और विचार करनेसे भी मालूम हो सकता है कि-यदि यहाँपर मोक्षार्थ दानकी बात न चली होती तो प्रथमके दो पाठोंमें श्रमण-माहणको देनेकी बात न कहते-किन्तु सामान्य ही कहते। जब यह बात स्पष्ट हुई कि-ये तीनों पाठ मोक्षार्थ दानके लिये ही दिये हुए हैं, तब इस तृतीयपाठमें भी मोक्षार्थ दानकी ही अपेक्षा की गई है। और यह तो हम भी स्वीकार करते हैं कि-यदि असंयमी-अविरति- अप्रत्याख्यानी को, सुपात्र समझ करके-गुरु समझ करके-गुणवान् समझ करके दान दिया जाय, तो इससे एकान्त पाप अवश्य ही होता है। लेकिन इससे अनुकंपाका निषेध हर्गिज नहीं हो सकता। हां, यहाँ अनुकंपाका प्रकरण चला होता-अनुकंपाकी विवक्षा की गई होती, तो जरूर हम अनुकंपासे एकान्त पाप मान लेते। परन्तु यह तो है ही नहीं। और होवे भी कैसे? क्योंकि-अनुकंपाका तो निषेध, कहीं पर भी भगवान्ने नहीं किया है। देखिये, उपर्युक्त तीसरे पाठकी टीकामें भी कहा हैः-

"मोक्खत्थं जं दाणं तं पइ एसो विही समक्खाओ।
अणुकंपादाणं पुण जिणेहिं न कयावि पडिसिद्धं" ॥१॥

अर्थात्-यह विधि (उपर्युक्त तीनपाठोंकी), मोक्षार्थ दानके प्रति कही हुई है। और अनुकंपा दानका प्रतिषेध तो कहीं पर तीर्थंकरोंने नहीं किया है।

जब ऐसा ही है तो फिर अनुकंपासे एकान्त पाप कैसे माना जा सकता है?।

उपर्युक्त तीनों पाठोंमें, (तीसरे पाठमें भी) अनुकंपा दानका वर्णन नहीं है, किन्तु, गुरु-साधु-पात्र मान करके दे, इसका वर्णन है, ऐसा माननेमें एक और भी कारण है। वह यह हैः—

पहिलेके दो पाठोंमें, दान देनेवालेका नाम श्रमणोपासक रक्खा है, वैसे ही तीसरे पाठमें भी श्रमणोपासक ही दिखलाया है। इसी प्रकार, जैसे प्रथमके दो पाठोंमें 'पडिलाभेमाणे कि कज्जइ ?' यह प्रश्न किया गया है, वैसे ही तीसरे पाठमें भी 'पडिलाभेमाणे किं कज्जइ ?' यही प्रश्न किया गया है।

अब विचारनेकी बात है कि–'पडिलाभे माणे' यह शब्दप्रयोग वहाँ ही होता है,जहाँ पूज्यबुद्धिसे–गुरुबुद्धिसे दान दिया जाता है। और जहाँ अनुकंपाकी बुद्धि होती है, वहाँ 'पंडिलाभेमाणे' यह शब्द कहा ही नहीं जाता है। सूत्रोंमें जहाँ २ दानशालाओं वगैरहके कार्य दिखलाए हुए हैं, जोकि खास अनुकंपाकी बुद्धिसे किये जाते हैं, वहाँ 'पडिलाभेमाणे' यह शब्द मिलता ही नहीं है।

प्रचलित व्यवहारपर ख्याल करनेसे भी मालूम हो सकता है कि जैसे साधु–मुनिराजको यह कहा जाता है कि–महाराज 'लाभ दीजिये' वैसे किसी रंक–दुर्बल–दुःखी मनुष्यको कुछ देनेकी इच्छा होती है, तब यह कहा नहीं जाता है कि—'आप लाभ दीजिये'। क्योंकि, यहाँ 'अनुकंपा' का प्रसंग है, और साधु--मुनिराजको, देनेके समय गुरुत्वबुद्धिका—–सुपात्रदानका प्रसंग है।

तब कहना होगा–मानना पडेगा कि—तीसरे पाठमें भी प्रसंग तो मोक्षार्थदान ही है, परन्तु, असंयती--अव्रती होनेपर भी उसमें गुरुत्वबुद्धि--पात्रबुद्धि रख करके देनेसे एकान्त पाप दिखलाया है। और अनुकंपा दानके लिये तो पात्रापात्रके विचार ही करनेकी आवश्यकता नहीं दिखलाई है, तो फिर निषेध करनेकी तो बात ही क्या ? जिसकी पुष्टि हम पहिले अच्छी तरह कर आए हैं, इस लिये पुनः लिखनेकी आवश्यकता ही क्या है ?

प्यारे पाठक, यहाँतक तो हमने तेरापंथियोंकी ही युक्तियोंको तथा वे सूत्रोंके जिन पाठोंका आगे करते हैं, उन्हींपर विचार किया। अब हम अन्तमें अनुकंपाकी पुष्टिके और कतिपय प्रमाण लिख कर इसको समाप्त करेंगे।

ठाणांगसूत्रके दशवें ठाणे के पाठको देख लीजिये। ठाणांगसूत्रके दशवें ठाणेमें दश प्रकारके दान दिखलाए हैं। वे दान ये हैं:—

"अणुकंपा संगहे चेव भयाकालुणिए ति य।
लज्जाये गारवे णं च अधम्मे पुण सत्तमे ॥ १ ॥
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते काहिई य कयं ति य"।

१ अनुकंपादान, २ संग्रहदान, ३ भयदान, ४ कारुण्यदान (शोकदान), ५ लज्जादान, ६ गौरवदान, ७ अधर्मदान, ८ धर्मदान, ९ करिष्यतिदान और १० कृतदान।

इन दश प्रकारके दानोंमें सबसे प्रथम 'अनुकंपा' दानको रक्खा गया है। इस अनुकंपा दानका स्पष्टीकरण करते हुए टीकाकार भगवान् भी कहते हैं कि:—

"अनुकंपया कृपया दानं दीनानाथविषयमनुकंपादानम्, अथवा अनुकंपातो यद्दानं तदनुकंपादानम्।"

अर्थात् अनुकंपासे--कृपासे दीन—अनाथ—संबंधि जो दान है, उसको, अथवा दयासे जो दिया जाता है, वह अनुकंपा दान है।

फिर येही टीकाकार श्रीउमास्वातिवाचकजीके शब्दोंमे भी कहते हैं कि:—

"कृपणेऽनाथदरिद्रे व्यसनप्राप्ते च रोगशोकहते।
यद्दीयते कृपार्थादनुकंपा तद्भवेद्दानम्" ॥ १ ॥

अर्थात्—कृपण, अनाथ, दरिद्र, दुःखप्राप्त और रोग–शोकसे हनाये हुएको दयासे जो दिया जाता है, वह अनुकंपादान है।

अब बतलाईये, ऐसे अनुकंपा दानका क्योंकर निषेध हो सकता है ? फिर आगे चलीये।

उत्तराध्ययन सूत्रके २१ वें अध्ययनमें कहा है कि:—

" सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी खंतीखमे संजयबंभयारी।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो चरिज्ज भिक्खू सुसमाहि इंदिए॥१३॥

(पृ० ६४५)

अर्थात—समस्त भूतोंमें हितोपदेशरूप दया करके, अनुकंपा करनेका स्वभाववाला, तत्त्वचितवनरूप क्षान्ति करके दुर्वचन–ताडनादि रूप उपसर्गोंको सहन करनेवाला, संयमी, ब्रह्मचारी, सावद्ययोगोंका परित्याग करनेवाला और वशीकृत है इन्द्रियाँ जिसकी ऐसा होके साधु विचरे।

अब देखिये, इस गाथामें समस्त जीवोंकी अनुकंपा करनेका और हित वांछनेका कहा। फिर भी अनुकंपाका निषेध हो, यह बडे आश्चर्य की बात है।

कदाचित् कोई यह कहे कि—" उपर्युक्त गाथामें तो अनुकंपा करनेको कहा, परन्तु दुःखी जीवोंको दुःखसे मुक्त करनेका और शाता उपजानेको तो नहीं कहा ?।" लेकिन नहीं, यह भूल है। जीवको नहीं मारना, उसीका नाम अनुकंपा–दया नहीं है, किन्तु जीवकी रक्षा करना—बचाना--दुःखमेंसे मुक्त करना इसका नाम अनुकंपा–दया है। अगर ऐसा न होता तो, भगवान् भगवतीसूत्रके सातवें शतकके छठवें उद्देशेमें, प्राणातिपात, प्राणातिपातविरमण, प्राणानुकंपा और परपीडन इन चार प्रकारके कारणोंसे चार प्रकारके कर्म रूप कार्य कभी न दिखलाते। क्यों-

कि–' नहीं मारना ' और ' अनुकंपा ' ये दोनों एक ही अर्थके सूचक होते तो, प्राणातिपात विरमण (जीवको मारनेसे हटना से अकर्कश वेदनीयकर्म और प्राणकी अनुकंपासे शातावेदनीयकर्म, ऐसे भिन्न २ कर्म भगवान् नहीं दिखलाते। देखिये इस पाठको:–

" अत्थि णं भंते ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? हंता अत्थि। कहण्णं भंते ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं एवं खलु गोयमा ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति। अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! एवं जाव वेमाणियाण ॥ अत्थि णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? हंता अत्थि। कहण्णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणं, जाव परिग्गहवेरमणेणं, कोह विवगेणं, जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगेणं, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति। अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? णो इणट्ठे समट्ठे, एवं जाव वेमाणियाणं, ण वरं मणुस्साणं जं जीवाणं ॥ अत्थि णं भंते ! जीवाणं सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? हंता अत्थि। कहण्णं भंते ! जीवा सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, जीवाणुकंपयाए, सत्ताणुकंपयाए, बहूणं पाणाणं जावसत्ताणं अदुक्खणयाए, असोयणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अपिट्टणयाए, अपरियावणयाए, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति, एवं नेरइयाण वि, जाव वेमाणियाणं ॥ अत्थि णं भंते ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

हंता अत्थि । कहण्णं भंते ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, परजूरणयाए, परतिप्पणयाए, परपिट्टणयाए, परपरितावणयाए, बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं दुक्खणयाए, सोयणयाए, जाव परियावणयाए, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति, एवं नेरइयाणवि, जाव वेमाणयाणं ॥ "

(पत्र ४७५ से ४७७)

अर्थात्–हे भगवन् ! जीव, कर्कश वेदनीयकर्म उत्पन्न करे ! करे । हे भगवन् ! जीव कर्कश वेदनीय कर्म कैसे उत्पन्न करे ? गौतम ! प्राणातिपातसे, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य अर्थात् अठारह पापोंसे कर्कश वेदनीयकर्म उपार्जन करे । हे भगवन् ! नारकीके जीवोंको कर्कश वेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं ? । होते हैं, यावत् वैमानिक जीवोंपर्यन्तको होते हैं ।

हे भगवन् ! जीव अकर्कशवेदनीय कर्म उत्पन्न करते हैं ? करते हैं। हे भगवन् ! अकर्कशवेदनीय कर्म कैसे उत्पन्न होते हैं ?, हे गौतम ! प्राणातिपातविरमणसे, यावत् परिग्रह विरमणसे, और क्रोधके त्यागसे, यावत् मिथ्यादर्शन शल्यके त्यागसे जीवोंको अकर्कश वेदनीयकर्म उत्पन्न होते हैं ? हे भगवन् ! नारकीके जीवोंको अकर्कशवेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् नहीं होते है, यावत् वैमानिक पर्यन्त । लेकिन मनुष्योंको तो, जैसे जीवको कहा, वैसे समझना । अर्थात् मनुष्योंको यह कर्म उपार्जन होते हैं ॥

हे भगवन् ! जीवोंको शातावेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं ? होते हैं। हे भगवन् ! किस प्रकारसे शातावेदनीयकर्म उत्पन्न होते

हैं? हे गौतम ! प्राणकी अनुकंपासे, भूतकी अनुकंपासे, जीवकी अनुकंपासे, सत्त्वकी अनुकंपासे, और बहुत प्राणिभूत-जीव-सत्त्वोंको दुःखके नहीं देनेसे, दीनपनेके नहीं करानेसे, शोकके नहीं करानेसे, अश्रुआदिके नहीं करानेसे, यष्ट्यादिके ताडनके अभावसे, शरीरके तप्त करनेके अभावसे, जीव शातावेदनीय कर्म उपार्जन करते हैं। इस प्रकार नारकीके जीवोंसे लेकर वैमानिक पर्यन्त समझ लेना ॥

हे भगवन् ! जीवोंको अशातावेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं ? होते हैं। हे भगवन् ! जीवोंको अशातावेदनीय कर्म कैसे उत्पन्न होते हैं?, हे गौतम ! परको दुःखदेनेसे, परको दीनपना करानेसे, परको शोक करानेसे, अश्रुआदिके गिरवानेसे, यष्ट्यादिसे ताडन करनेसे, और शरीरको तप्त करनेसे तथा बहुत प्राणियोंको पीडन करनेसे, यावत् शरीरको तप्त करनेसे जीव अशातावेदनीय कर्मको उपार्जन करता है। इस प्रकार नारकी के जीवोंसे लेकर वैमानिक पर्यन्त समझ लेना ॥

अब विचारनेकी बात यह है कि-उपर्युक्त पाठमें चार प्रकारके कर्मोंके उत्पन्न होनेमें, कारण भी भिन्न भिन्न ही दिखलाए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि-" जीवोंको नहीं मारना, ' इसीका नाम ' अनुकंपा ' नहीं है किन्तु एक जीवोंकी रक्षा करना-दुःखोंसे मुक्त करना, इसीको भी कहते हैं। और इसमे भी अनुकंपा करनी, यह जाहिर होता है ।

अब, आगमोंके प्रमाणोंसे अनुकंपाका विशेष स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है, तो भी यह कहना अनुचित न होगा कि-' निरनुकंपा ' यह अनार्य के लक्षणोंमे दिखलाई हुई है। जैसे सूयगडांगसूत्रके प्रथम श्रुतस्कंधके पृ० २६२ में अनार्यके लक्षण दिखलाते हुए कहा है कि:—

" पावा य चंडदंडा अणारिया णिग्घिणा णिरणुकंपा "

इससे भी सिद्ध हुआ कि–आर्यपुरुष, अनुकंपासे रहित नहीं हो सकते । कहिये, इससे बढकर और क्या कहा जा सकता है ?।

हम दावेके साथ कह सकते है कि–चाहे पैंतालीस आगमोंको देख लीजिये, चाहे बत्तीस, लेकिन किसी स्थानमें अनुकंपाका निषेध नहीं देखनेमें आवेगा ।

इन आगमोंको ही क्यों ? हम पहिले कह आये हैं, उसी तरह संसारके समस्त धर्मके, धर्म ग्रन्थ को देख लीजिये, किसी-मेंसे यह नहीं पाया जायगा कि–'जीवोंकी रक्षा नहीं करनी चाहिये–' 'जीवो पर दया नहीं करनी चाहिये'–'जीवोंको नहीं बचाना चाहिये' । यदि ऐसे ही सिद्धान्त संसारमें प्रचलित होते, आज संसारमे मनुष्य, मनुष्य ही नहीं कहे जाते, किन्तु उनका कुछ और ही नाम होता ।

हम कहते हैं कि–सूत्र--सिद्धान्तोंके उन गूढ रहस्योंको जाने दीजिये, हमारे तत्त्ववेत्ताओंने–ऋषि–महर्षियोंने, उन रहस्योंका भी मक्खन निकालकर, हमारे सामने जो सुभाषित रक्खे हैं, उन्हींपर हम ख्याल करे, तो हमें मालूम हो सकता है कि–अनु-कंपा क्या चीज हैं ? वह हमें करने लायक है या नहीं ?। देखिये, एक जगह कहा हैं:–

" विद्या विवादाय धनं मदाय,
शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतवृत्तिः,
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय " ॥ १ ॥

अर्थात्–दुर्जनकी विद्या विवादके लिये, धन मदके लिये, और शक्ति दुसरोंके दुःख देनेके लिये होती है। किन्तु, साधु पुरुषकी इससे विपरीतवृत्ति होती है। अर्थात साधु–सज्जनकी विद्या ज्ञानके लिये, धन दानके लिये और शक्ति दूसरोंकी रक्षाके लिये होती है।

कैसा उत्तम सुभाषित! यदि इस एक ही सुभाषित पर खयाल रक्खा जाय, तो मनुष्योंको मालूम हो सकता है कि–दान करना और जीवोंकी रक्षा करना, ये दोनों मनुष्योंके परम कर्त्तव्य ही हैं।

शास्त्रकारोंने तो आगे बढ़ करके यहाँतक कहा है कि:–

"वर्षन् क्षारार्णवेऽप्यब्दो मुक्तात्वं क्वापि जायते।
सर्वेषां ददतो दातुः पात्रयोगोऽपि संभवेत्" ॥ १ ॥

अर्थात्–जो मनुष्य हमेशां देता ही रहता है–दान करता ही रहता है, उसको कभी न कभी पात्रका योग मिल ही जाता है, जैसे क्षारसमुद्रमें भी वर्षते हुए मेघका जल, कभी न कभी मोती पनेको भी प्राप्त कर लेता है।

इस लिये मनुष्योंको हमेशां दान देते ही रहना चाहिये। यों नहीं समझना चाहिये कि–यह तो असंयमी है–यह तो अव्रती है, इसको कैसा कर दिया जाय? । नहीं, व्रती–अव्रतीका, पात्र–अपात्रका विचार मोक्षार्थदानमें करनेका है, अनुकंपा दानमें नहीं। इसके लिये कहा भी है कि:–

"इयं मोक्षफले दाने पात्रापात्रविचारणा।
दयादानं तु सर्वज्ञैर्न क्वापि प्रतिषिध्यते" ॥ १ ॥

अर्थात्-यह पात्रापात्रका विचार मोक्षफल संबंधी दानमें करनेका है, परन्तु दया–दान (अनुकंपा) का तो सर्वज्ञप्रभुने कहीं

भी निषेध नहीं किया। क्योंकि—" **दीनाय देवदूष्यार्धं यथाऽदात् कृपया प्रभुः**" स्वयं परमात्माने भी अपना आधा-देवदुष्यवस्त्र, दीन ऐसे ब्राह्मणको अनुकंपासे दिया ही है। फिर इसका निषेध करना-इसमें प्रवृत्ति न करना, यह बडी भारी अज्ञानताका कही जा सकती है।

अगर बुद्धिमत्तासे विचार किया जाय, तो मालूम हो सकता है कि--धर्मके शोभित होनेमें करुणा—अनुकंपा ही एक कारण है। बल्कि योंही क्यों न कहा जाय कि धर्मका मूल ही दया--अनुकंपा—करुणा है। सिवाय अनुकंपाके सिवाय दयाके धर्मरूपी वृक्ष कभी खडा रह ही नहीं सकता है। इसी लिये एक कविने भी कहा है:—

" लक्ष्म्या गार्हस्थ्यमक्ष्णा मुखममृतरुचिः श्यामयाऽम्भोरुहाक्षी
भर्त्रा न्यायेन राज्यं वितरणकलया श्रीर्नृपो विक्रमेण।
नीरोगत्वेन कायः कुलममलतया निर्मदत्वेन विद्या
निर्दम्भत्वेन मैत्री किमपि करुणया भाति धर्मोऽन्यथा न"॥१॥

अर्थात्—गृहस्थीपना लक्ष्मीसे, मुख आंखसे, चन्द्र रात्रीसे, स्त्री पतिसे, राज्य न्यायसे, लक्ष्मी दान करनेसे, राजा विक्रमसे, शरीर निरोगत्वसे, कुल पवित्रतासे, विद्या निरभिमानतासे, मैत्री निष्कपटभावसे और धर्म करुणासे शोभित होता है। अन्यथा नहीं।

कहाँ तक कहा जाय? दया और दानकी महिमा शास्त्रोंमें स्थान स्थानमें पाई जाती है। बल्कि योंही अगर कह दें कि—'संसारके समस्त शास्त्रोंका 'दान और दया करना' यही सार है,' तो इसमें जरा सी भी अत्युक्ति नहीं कही जा सकती

अतएव, अन्तमें निम्नलिखित भावनाके साथ ' हितशिक्षा ' की पूर्णाहुति की जाती है कि:—

" इस श्रेयस्कर उद्यम द्वारा, पुण्य मुझे उपजा है जो,
आशा करता हूँ मैं, उससे मिथ्याविभ्रमका लय हो।
और इसीसे भविजन पाओ शिवपदके अविचल पथको,
रागद्वेष–विभाव–तिमिरसे कोई भी अन्धा न बनो " ॥१॥

" देवें सर्व मनुष्य, दान दिलसे दुःखी तथा दीनको,
पीडा–विह्वलका प्रपालन करें, रक्खें दया भावको " ।
आशीर्वाद यही प्रदान करके, सद्भावनासे भरे,
' शिक्षा ' पुस्तकका समापन यही विद्या विनोदी करे ॥२॥

भव्यानामुपकाराय हितशिक्षामिमां व्यधात् ।
धर्माचार्यपदोपासी श्रीविद्याविजयो मुनिः ॥३॥

समाप्त.



|| अर्हम् ||



|| परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ||

शिक्षा–शतक.

१

मित्रो! देखो एक जगत्में ऐसा पंथ निराला है,
मानें नहि कुछ धर्म–कर्म, मन मानी मौज उडाता है।
चेतन–जडका भेद न जाने, शास्त्र कुशस्त्र बनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

२

सुनो सर्व सिद्धान्त इसीका, सार सार दिखलाता हूँ,
नहीं लेखिनी माने तो भी, हृदय कठोर बनाता हूँ।
दया दानका मूल उखाड़ा, प्रतिमा पत्थर माना है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

३

जो अनुकंपा मानी जगने, उससे भी मुख मोडा है,
सावद्य–निरवद्य भेद दिखाकर, [१]रास भयंकर जोड़ा है।

---

१ तेरापंथ मतके उत्पादक भीखमजीने, 'अनुकंपा रास' बनाया है, जिसमें निर्दयताकी ये सब बातें लिखी हूई हैं।

सूत्रोंमें नहि भेद दिखाया, अपने आप जमाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

४

जो बिल्ली चूहेको पकड़े, उसे नहीं छोड़ाता है,
बिल्लीको उसमें दुख माने, निर्दयभाव बढ़ाता है ।
नहीं समझते ही 'दुख देना', किसका नाम कथाया है ?
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ।

५

"पानीके विण तड़फ रहा जन, आकुल–व्याकुल होता हो,
हाय हायरे! बाप मुआ! बोले मुझको कोई जल दो ।
नहि देना उसको भी पानी," ऐसा मत मन–माना है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६

"पानी देकर उसे बचावें, तो पापोंको सेवेगा,
अन्न खायगा, जल पीएगा, फिर विषयोंको सेवेगा ।
वे सब हमको पाप लगेंगे, हमने क्योंकि बचाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

७

"जिस वाडेमें गौएं रहतीं, उस वाडेमें आग लगी,
मत खोलो फाटक उसकी तुम, कारण गौएं जीएंगी ।
जीकर वे तो पाप करेंगी," यह उपदेश सुनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

८

" किसी गृहस्थका घर जलता है, उसमें बहुत मनुष्य भरे,
किलबिल किलबिल वे करते हैं, हाय मरे! रे हाय मरे।
पर मत खोलो किंवाड उसका, " ऐसा धर्म मनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

९

" गाडा नीचे बच्चा आवे, उसको भी न उठाओ कोई,
मरता हो तो मरने दो, चिंता न करो जीनेकी कोई।
जीना-मरना कभी न चाहो " यह सिद्धान्त दिखाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१०

" साधु-संतको किसी दुष्टने आकर फांसी दीनी है,
भोगन दो उसको वह अपनी, जैसी करणी कीनी है।
मत खोलो फांसी उसकी तुम, " ऐसा ज्ञान कराया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

११

" जाडेसे मरते को मत दो, कपडेका टुकडा तुम एक, "
" भूखोंको मत अन्न खिलाओ, ऐसी मनमें रक्खो टेक " !
ऐसी दया प्ररूपी जिसने, क्या क्या नहि दिखलाया है ?
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१२

" कोई मारे जीव मार्गमें, पैसा दे मत छूडाओ, "

" सबल जीव दुर्बलको मारे, धर्म छुडाये मत मानो । "
" लाय बुझाओ–कसाइ मारो, दोनों सम समझाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१३

" विद्याशाला–दानभवन–हॉस्पिटल और पानीकी पो,
ऐसे कार्योंके करनेसे, धर्म–पंथको बैठे खो । "
यही बोध है इसी पंथका, क्या ही तत्त्व निकाला है ?,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१४

" जीवोंका जीना नहि चाहें " ऐसी डींग अडाते हैं,
फिर भी मक्खी गिरे दालमें, तुरत निकाल बचाते हैं ।
वायुकायके जीव बचानेको पाटा बंधाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१५

" जीवोंका हम तरना चाहें " इसी भूतके कारणसे,
मरतेको सुखसे वे देखें, क्या है ऐसे तारणसे ? ।
आया इसका यही नतीजा, दया–दान उठवाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१६

यह तरना वे भी तो चाहें:–कसाइ नाम धराते हैं,
ईश्वरका ले नाम, पशुव्रजका जो जभे कराते हैं ।
रहा फरक क्या इन दोनोंमें ? नहीं समझमें आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१७

करूँ कहाँ तक वर्णन इसका ? बहुत विषय कहनेका है,
दया-वृक्षको तोड दिया, बी बोया निर्दयताका है।
आर्द्रभावको दूर किया, निज मन पाषाण बनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१८

दया दयाका नाम पुकारें, दया नहीं जानें लवलेश,
'दुःखीको दुखसे छोडाना,' कही दया यह ही परमेश।
इसी दयाको, पर, नहीं जानें, मानें मन जो आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१९

"जीव मारनेसे लगता है, पाप एक, मारे उसको,
पाप अठारों लगे उसीको, मरतेको परिपाले जो।"
यह सिद्धान्त खास है इसका, इसमें सब कुछ आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

२०

"जो कुछ देना सो हमको दो, मत दो और किसीको कुछ,
नहीं पात्र हैं और जगत्में, हमहीको समझो सब कुछ।"
साध्वाभासोंकी यह शिक्षा, नवीन पंथ चलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

२१

अब कुछ सुनो सूत्रकी बातें, जो इसने पलटाई हैं,
नहीं समझकर अर्थ इन्हींके, कुयुक्तियाँ दिखलाई हैं।

जहाँ चली नहि एक, वहाँ तब 'प्रभु चूके' दिखलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

२२

रयणादेवीके रोनेसे हुआ **शोक** उस जिनरिखको,
ज्ञाताके नववें अध्ययनमें '**करुण**' शब्दको तुम देखो ।
'करुण' शब्दको 'करुणा' कहकर झूठा अर्थ लगाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२३

दिया दान वार्षिक, प्रभुने जब, अनुकंपाके आशयसे,
बार वर्षका कष्ट बतावें, प्रभुको, दारुण विभ्रमसे ।
दान दिया सब अर्हन्तोंने, औरोंको न कहाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२४

[2]प्रज्ञप्त्यागम पनरशतक[3]में, मंखलिपुत्र बचाया है,
'अनुकंपा' शब्दके देखते, 'प्रभुचूका' दर्शाया है ।
चार ज्ञानके स्वामी प्रभुपर, यही कलंक लगाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२५

निर्दोषी प्रभु थे, अप्रमादी, कभी न चूके संयममें,
श्रीआचारे[4] यही बताया, देखो नववें अध्ययनमें[5] ।

---

१ पृष्ठ ९५८-९५९ । २ भगवतीसूत्र । ३ प० १२१७-१२१८ ।
४ आचारांगसूत्र । ५ पृष्ठ १५०-१५२ ।

'प्रभु चूके' का पाठ नहीं, फिर अपने आप दिखाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२६

अरणकका दृष्टान्त बताकर, कहें:-'न की करुणा इसने,'
पर करुणाका काम वहाँ क्या, सुरलीला जानी इसने।
'नहि छोडेंगे धर्म हमारा' यह अरणक फरमाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२७

'नहीं करेगा हर्ज हमारा' यही बात इसके मनकी,
फिर यह क्योंकर करे प्रार्थना, बनियोंके संरक्षणकी ?।
ज्ञातसूत्रमें[१] स्पष्ट बात है, फिर भी झूठ चलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२८

मिथिलापति नमिराय, 'ऋषीश्वर' होकर चलदें जंगलमें,
रुदनकरें सब लोग नगरके, अपने अपने मंदिरमें।
नहीं मोह उन पर ऋषिजीको, यही सत्य फरमाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२९

गया इन्द्र, हो विप्र, वहाँपर, मोह-परीक्षा करनेको,
वैक्रियद्वारा पुरी जलाकर, पूछे 'क्यों न इसे देखो?'।
इसको भी 'करुणा' बतलाकर, दया-धर्म उठवाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

---

१ पृ०७६५।

३०

प्रतिमाके साधन करनेको, पहुँचा मरघट[1] गजसुकुमाल,
सोमलने आकर इसके सिर, बांधी है मिट्टीकी पाल।
उसमें भरे ज्वलित अंगारे, यही सूत्रमें आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३१

कहें, 'न क्यों अनुकंपा की प्रभुने,' यह झूठ बताते हैं,
भाविभावको जानें प्रभुजी, नहीं प्रयत्न उठाते हैं।
इसी निमित्तसे कर्मनाश, प्रभुने इसका समझाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३२

"महावीरको हुए अनेकों कष्ट, देव–मनु–तिर्यक्से,
की नहि रक्षा क्यों सुरपतिने अनुकंपाके कारणसे ?"
सार इसीका नहीं समझते, देखो यह बतलाया है:–
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३३

आया सुरपति सेवा करने, जहाँ जिनेन्द्र बिराजे हैं,
पर, प्रभुने फरमाया ऐसे " जिननिरपेक्षक होते हैं।
करें कर्मक्षय स्वकीय बलसे " योगशास्त्रमें[2] आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३४

चेडा-कोणिक समरसमयमें, भी है सार समझनेका,

---

१ स्मशान। २ पृ० १०।

"नहीं किया क्यों प्रयतन प्रभुने, जीवोंके परिपालनका" ?।
भाविभावको जानें जिससे, नहीं प्रयत्न कराया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमे ढोंग मचाया है ॥

(३५)

" चुलणिपियाके तीन पुत्रको मारे पौषधशालामें,
पर, नहि की अनुकंपा उनपर, रहा धर्मकी दृढतामें "।
प्रसंग था वह मोहरायका, उसको और बताया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(३६)

माताके आनेपर इसने, कोलाहलको बहुत किया,
रजनीका था समय, अतः व्रतभंग इसे तो कही दिया ।
सूत्र उपासकमें[१] यह आया, दया–निषेध न आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(३७)

" मच्छ गलागल नितप्रति होती, सारे द्वीप समुद्रोंमें,
इनको क्यों न बचावें प्रभुजी, रहे इन्द्र जब आज्ञामें ? । "
भाविभावको जानें जिनवर, जैसा होनेवाला है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(३८)

कइ अनुकंपा 'जिनआज्ञामें' कइको 'आज्ञाभिन्न' गिनें,
नहीं भेद दिखलाए कहिंपर, फिरभी अपने आप गिनें ।

---

१ पृ० १४० ।

मनमाने ये भेद दिखाकर, मूलतत्त्व उठवाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबनें, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३९

" नेमनाथने पशुओंको रक्षा की है भावी दुखसे, "
" धर्मरुचीने जीव बचाये, भाविकालमें मरनेसे । "
" मेघकुमरने ससलेको भी इसी प्रकार रखाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४०

वे अनुकंपा जिन आज्ञामें, इनको आज्ञा रहित गिनेः-
" हरिकेशी पर भक्ति जगाकर, यक्ष, शरीर प्रवेश करे । "
" धारिणिने अनुकंपा लाकर इच्छित भोजन खाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४१

" हरिणिगमेषी देव, दयासे षट् पुत्रोंको लाया है, "
" अनुकंपासे ही जिनवरने, मंखलिपुत्र[1] बचाया है । "
" हरिका ईंट उठाना, " " सुरने जलधरको बरसाया है "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४२

क्या अनुकंपा हो सकती है, प्रभु आज्ञासे रहित कभी ?
दुःखनाशकी इच्छा तो रखते हैं, मानवमात्र सभी ।
फिर भी इसको नहीं मानते, यही इन्होंकी माया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

---

१ गोशाला.

(४३)

" अव्रतिजीवन नहीं चाहना ' यह सूत्रोंमें आया है,
नहीं समझ कर अर्थ इसीका, इसको यों पलटाया है–
" अव्रति जीवोंका जीना नहि चाहो, यह बतलाया है "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(४४)

ऐसा झूठा अर्थ समझकर, दया हृदयसे खो डाली,
दान–पुण्य शुभकरणी अपने ही हाथोंसे धो डाली ।
समकितको खो बैठ हृदयसे, जो मिथ्यात्व बसाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४५

पार्श्वनाथने सांप बचाया, शान्तिनाथने कबुतरको,
नेमनाथने पशु बचवाये, देखो उन अधिकारोंको ।
नहीं व्रतीथे, फिर भी उनका, क्यों रक्षण करवाया है ?
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४६

शास्त्रोंमें तो यही बताया, श्रावक यह कहलाता है:–
" सात क्षेत्रमें भक्ति–प्रेमसे धनका व्यय जो करता है ।
दीन दुखीमें धनका व्यय भी जिसने नित्य कराया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४७

फिर भी इसको नहीं मानकर, दान–पुण्य भगवाया है,

श्रावक–श्रावकको न खिलावे, इसको धर्म बताया है ।
" दीन–दुखीको कुछभी नहि दे, यह श्रावक कहलाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४८

एकेन्द्रियादि भेद दिखाये जीवोंके, जो सूत्रोंमें,
पुण्य–पाप भी भिन्न बताये, जीने–मरने दोनोंमें ।
नहीं मानकर इन भेदोंको, सबको सम समझाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४९

नहीं समझमें आता मुझको, क्यों वे रोटी खाते हैं ?
इसके बदले बडे अजोंको[1], क्यों वे नहीं उडाते हैं ? ।
पाप लगेंगे दोनोंमें सम, कारण, यही मनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५०

' जीव मारकर जीव न रखना, ' यह जो बात बनाते हैं,
आवे यद्यपि सांढ सामने, कैसे भागे जाते हैं ? ।
'क्या भगनेमें जीव न मरते ?, ' फिर भी झूठ बताया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५१

दया दयाका नाम पुकारें, दया किसीकी नानी है ?
दया रही अंतर ही घटमें नहीं, बडा वह पापी है, ।

---

१ बकरोंको ।

इसी दयाका मूल उठाकर, क्रूरकर्म फैलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबनें, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५२

दया दानका मूल उठाया, इतना भी तो नहीं किया,
अपनी पूजा ही के कारण, प्रभुपूजाको उठा दिया ।
अपनी प्रतिमाको मानें, जिन-प्रतिमाको न मनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५३

सूत्रोंमें तो ठौर ठौर अधिकार जिन प्रतिमाका है,
पाठ छिपाकर इसका, इसने कृत्य किया चोरीका है ।
प्रभुवाणीकी चोरी करके, साहूकार बनाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५४

जिनप्रतिमा–जिनवाणी, ये दोनोंका हमें सहारा है,
मानें इनमें एक, उसे क्या कहना ? यही विचारा है:–
'बाप विनाका पुत्र समझ लो' यही उचित समझाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५५

जिन प्रतिमाके दर्शनसे, दर्शन ही निर्मल होता है,
'दर्शन व्रतका मूल कहावे,' जिन आगम यह कहता है ।
इसी मूलका मूल उखाडा, क्या ही जग भरमाया है ?,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५६

भेजी प्रतिमा अभयकुंवरने, आर्द्रकुमरके पास सही,
    देख, हुआ उस समय उसीको 'जातिस्मरण' ज्ञान वहीं।
सुयगडांगके छठे अध्ययनमें, यह अधिकार बताया है,
    ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

५७

कहें कुपंथी 'भेजा ओघा,' नहीं तत्त्वको सोचा है,
    ओघेको कहता आभूषण क्या ? उसने जो सोचा है।
इसी कल्पना हीके कारण, नहीं तत्त्वको पाया है,
    ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

५८

दोवेइने जिन प्रतिमा पूजी, ज्ञाता यह फरमाता है,
    स्पष्ट पाठ मिलने पर, क्यों यह मूढमती शरमाता है ?।
प्रभुपूजा–प्रभुदर्शनके विण, यों ही जन्म गमाया है,
    ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

५९

देव–देवियोंको मानें, फिर जाकर नाक घिसाते हैं,
    प्रभुप्रतिमाके आगे जानेको, क्यों ये हिचकाते हैं ?।
नहीं शरम आवे इनको, यह नवीन पंथ चलाया है,
    ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

६०

नाम 'अहिंसा' के दिखलाए, उसमें 'पूजा' दिखलाई,

१ द्वितीय श्रुतस्कंधमें। २ द्रौपदी। ३ पृ० १२५५।

प्रश्नव्याकरणसूत्र कहे, यह आंख खोल देखो भाई।
पकडा सो पकडा यह रक्खे, छोडे नहि पकडाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६१

समकित धारी सूरयाभने प्रभुप्रतिमा पूजी देखो,
इसी सूत्र रायपसेणीमें नाटक भी इसका देखो।
स्पष्ट पाठ होनेपर, कैसा फिर, इसको पलटाया है:—
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६२

" नाटककी जब आज्ञा मांगी, वहाँ वीरप्रभु मौन रहे, "
कहें कुपंथी ' धर्म कहाता, क्यों आज्ञा प्रभु नहि देते ? '
समझ नहीं इस न्याय नीतिकी:—'अनिषिद्ध, स्वीकृत होता है'
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६३

अगर न होती प्रभुकी आज्ञा, जब गौतमने पूछा था,
क्यों करते वर्णन नाटकका ? कहते 'अनुचित ही यह था'।
इन बातोंको नहीं समझकर, ठोके जो मन आया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६४

जिन प्रतिमाकी सेवा करता साधु, निर्जरा करता है,
ऐसा खुल्लंखुल्ला देखो, प्रश्नव्याकरण कहता है।

---

१ पृ० ३३९। २ पृ० ७५ से। ३ पृ० ४१५।

भाव–भक्तिका पाठ दिखाया, फिर भी मूँह छिपाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है।

६५

जिन प्रतिमाकी पूजा करनेवाला सम्यग्दृष्टी है,
पूजासे जो विमुख रहा नर, वह तो मिथ्यादृष्टी है।
महाकल्पके इसी पाठको, जिसने नहीं मनाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

६६

जब आणंदने व्रत लिये, उस समय प्रतिज्ञा यह की है:–
'अन्य तीर्थके देव न वांदुं' प्रतिमा सिद्ध इसीसे है।
अक्कल नहीं ठिकाने जिसकी, मूढ पंथ भरमाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

६७

जिन प्रतिमाकी तरह साधुकी सेवा करने वालेको,
दीर्घायुष्य शुभ कर्म बंधाते, देखो [1]तीजे ठानेको।
उपमासे प्रतिमाकी पूजा, नहीं हृदयमें लाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

६८

इसी सूत्रमें फिर भी देखो, **ठवणा सत्य** बताया है,
निक्षेपे जो चार बताये, उसमें **ठवणा** आया है।
इन सबको भी नहीं मानकर, कैसा ऐब लगाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

---

१ ठाणांगसूत्र पृ० ११७

६९

उंववाइ 'अरिहंत चेइयाणि,' क्या यह पाठ बताता है?,
अंबड़ने भी प्रतिमा पूजी, यही सूत्र दिखलाता है।
अपने घरकी बात न जानें, झूठा ढोंग मचाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

७०

सतर भेदसे जिनप्रतिमाकी, पूजाका अधिकार कहा,
इसी सूत्र रायपसेणीमें, प्रतिमाको '**जिनसदृश**' कहा।
'निःश्रेयस' का फलभी आया, फिर भी हठ पकडाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है॥

७१

आलोयण विधि चली सूत्रमें, उसमें भी यह दर्शायाः-
"साधु, पास प्रभुप्रतिमाके जा, आलोयण ले" यह आया।
करें अर्थ, इसका क्या वे जो, जिनने मुख बंधाया है?,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है॥

७२

भरतरायने अष्टापद पर, मणिमय बिंब भराये हैं,
गौतमस्वामी जिनवंदनके हेतु यहाँ पर आये हैं।
संप्रतिने भी सवाक्रोड जिन बिंबोंको बनवाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है॥

७३

महानिशिथमें यही बताया, 'जो जिनबिंब भराता है,

१ पृ० २९६-२९७। २ पृ० १९०।

श्रावक करणी वही पालकर, स्वर्ग बारवें जाता है'।
इस करणीको नहीं मानकर, समकित बीज जलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७४

प्रतिमाका आकार देख कर, और मच्छ भी बूझे हैं,
समकित पाकर जातिस्मरणसे, पूर्वभवोंको पेखे हैं ।
तिसपर मानें नहीं, जिन्होंने सच्चा अर्थ चुराया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७५

अंग पांचवेंमें[1] गणधरने, ब्राह्मी लिपिको वांदी है,
फिर भी प्रतिमाके निंदकने, पूरी निंदा ठोकी है ।
सुनो कुतर्कोंको भी इसके, जिनसे जग भरमाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७६

कहें कुपंथी, "पत्थरकी गौ क्या हमको पय देती है?
इसी तरहसे पत्थरकी प्रतिमा न हमें कुछ देती है"।
कहा खूब, अक्कलका परिचय अपने आप कराया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७७

पत्थरकी गौसे क्या हमको गौका ज्ञान न होता है?
ऐसे ही जिनप्रतिमासे, जिनेका[2] उद्बोधन[3] होता है ।

१ भगवतीसूत्र । २ तीर्थंकरका । ३ ज्ञान ।

कहिये, माता-पुत्री-स्त्रीमें क्योंकर भेद मनाया है?
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७८

नाम मात्रके ही लेनेसे, इष्ट-सिद्धि क्या होती है?
नाम रटो दिनभर लड्डूका भूख नष्ट क्या होती है ?।
नाम-मूर्ति इन दोनोंसे ही कार्यसिद्ध दिखलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७९

साधु कदाचित् पघड़ी पहने, क्या वह साधु कहावेगा ?
साधु मानते लोक वेषसे, नहिं तो [1]गेही होवेगा।
नहीं मूर्ति, तो है क्या यह भी ? क्यों कुलको लजवाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

८०

जिनसूत्रोंको 'प्रभुवाणी' कहते हैं, इसको भी देखो,
प्रभुवाणी तो चली गई, अब बनी मूर्ति उसको पेखो।
फिर भी प्रतिमाको नहि मानें, पोलंपोल चलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

८१

प्रतिमामें यह शक्ति रही है, परिणामों बदलानेकी,
जैसे [2]चित्रित वनिताओंमें, 'इससे न वहाँ रहनेकी।
आज्ञा तीर्थंकरने दी है' यह मनमें न जचाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

---

१ गृहस्थ। २ स्त्रियोंके चित्रोंमें।

८२

अब कुछ सुनो मजेकी बातें, जो है चूरणकी गोली,
देकर, मित्रो ! खतम करुं बस, इतनेमें इसकी होली ।
वेष और आचार इन्होंने, शास्त्रविरुद्ध रखाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

८३

जैनीका तो नाम धरावें, नहीं जैनका लेश रहा,
आचारोंको छोड़, वेषको तोड़, दैत्यका रूप धरा ।
मैले कपड़े रक्खें, मानो तेली राजा आया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

८३

मुखपर पाटा बांधा, लंबा पूंछ बगलमें मारा है,
कपड़ेकी गाती बांधी, यह देखो भील गँवारा है ।
नहीं वेष मुनियोंका है यह, अपने आप धराया है,
देखो ऐसे अजब मजबने अपना जन्म गमाया है ॥

८५

शास्त्रोंमें नहि यह फरमायाः–' मुखपर पाटा बांधो तुम ',
साफ साफ तो यही कहाः–' जब बोलो यतना रक्खो तुम । '
कहा इसीमें धर्म [1]वीरने, क्यों इसको न मनाया है ?
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

---

१ महावीरस्वामीने ।

८६

गौतमस्वामी गये मृगावतीके वहाँ, जब यही कहाः—
'भगवन्! मुखको बांधो' ऐसा श्रीविपाक[1]में साफ कहा।
बांधी हो, तो क्योंकर कहती? इसमें कुछ न विचारा है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

८७

आवश्यक[2]में विधि बतलाई, काउस्सगके करनेकी,
मुहपत्ती हाथमें कही है, फिर भी मुखको दे ताली।
दशवैकालिक और अनेकों, सूत्रोंमें बतलाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

८८

डंडा रखनेका दिखलाया, भगवत्यादि अनेकोंमें,
फिर भी इसको नहीं ग्रहें, करते ऐसे सब बातोंमें।
बात एक भी नहीं रखी, साधूका वेष लजाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

८९

सब चीजोंको खानेवाले, बनकर बैठे बावाजी,
'खमा', 'पूज्यपरमेश्वर' में, हैं और बने पूरे काजी।
वासि-विदल और मधु-मक्खन भी, जो आया, सो खाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

९०

लाला कर, आर्याएं[3] देती हैं, जो हरदम रहती हैं,

---

१ पृ. २२। २ आवश्यकनिर्युक्तिमें, काउस्सगके अधिकारमें। ३ साध्वीएं।

पास इन्हींके बैठ मजेसे भोजनको करवाती हैं।
ललनाओंका ढेर हमेशा, दिनभर पास जमाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९१

एक दिवसके अन्तरसे, उस घरमें भिक्षा जाते हैं,
हलवा-पूरी और रायता, सब कुछ ही ले आते हैं।
आधाकर्मी दोष न देखें, सबको इसने खाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९२

कच्चा पानी पिएं राखका, जो सूत्रोंमें नहीं कहा,
बरतणके धोअणको लेलें, जिसमें हैं उच्छिष्ट भरा।
ऐसे करनेसे अपने पर 'म्लेच्छ' कलंक लगाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९३

अजब बात, रखते ही नहि हैं, रात्रिसमयमें पानीको,
करते क्या होंगे यह सोचो, जब जावें वे जंगलको ?।
अशुची रखनेका तो देखो, दंड निशिथमें आया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९४

'रजस्वला' यह धर्म न मानें, मानें फोड़ा फूटा है,
उससे भी भिक्षा मंगावें, सब कुछ इसको छूटा है।
करुं कहाँ तक श्लाघा इसकी? धर्म-कर्म सब खोया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

---

१ रजस्वलावाली स्रीसे।

९५

बाहिर काले, भीतरकाले, काले कृत्य कराते हैं,
कूड़-कपटकी खान समझ लो, आडंबर रखवाते हैं ।
सूत्र-अर्थका भेद न जानें, भोला जग भरमाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९६

सब तीर्थोंको छोड़ जगत्के, आप तीर्थ बन बैठे हैं,
गागा कर गीतोंको दिनभर, मूढोंको बहकाते हैं ।
शास्त्रोंकी तो बात न करते, ठोक दिया मन आया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९७

'तीर्थेश्वर' का अर्थ न जानें, तीर्थेश्वर बन बैठे हैं,
'खमा' 'घणी खम्मा' की धुनमें, फूले नहीं समाते हैं ।
जा पूछा यदि प्रश्न किसीने, बस, झघडा उठवाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९८

'देव' गिनें वे भीखमजीको, 'गुरु' मानें कालूजीको,
'धर्म' प्ररूपा भीखमका है, छोडे प्राकृतन[1] पूज्योंको ।
इन्हीं तीन तत्त्वोंको ले कर, धोका पंथ चलाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९९

'तीर्थंकर' का नाम छुडाकर, 'भीखम' नाम सिखाते हैं,

१ प्राचीन-पूर्वके ।

'भीभाराजिममाडाका' की माला नित्य फिराते हैं।
इसी तरहसे सबकुछ फेरा, यह पाखंड बढ़ाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

१००

'करो कभी मत संगत इसकी,' अन्तिमकी यह शिक्षा है,
'मानो मेरा वचन हृदयसे,' बस, यह मेरी भिक्षा है।
स्नेहिमित्रको शतक सुनाओ, जो इस मतमें चलता है,
सेवो दान-दया-जिनप्रतिमा, जिससे पाप पिगलता है ॥

मुझमें जरा नहि शक्ति है, पद जोड़नेकी भी सही,
भाषा न हिन्दी जानता, फिर और क्या कहना यही ?
तो भी कृपासे धर्मगुरुकी, भाव अंतर जो मेरे,
व्यक्त कर, उनको जगत्के सामने विद्याधरे ॥



१ भीखम, भारमल, रायचंद जीतमल, मघराज, माणकचन्द, डालचंद और कालूराम, इन आठोंके आद्यक्षरोंको मिलाकर तेरापंथी लोग माला फिराते हैं॥

परमगुरुशास्त्रविशारद-जैनाचार्यश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

तेरापंथ-मत समीक्षा ।

लेखक,

मुनिराज विद्याविजय ।

प्रकाशक,

अभयचंद भगवान गांधी.

धी "विद्या विजय" प्रिन्टिंग प्रेसमे शाह पुरुषोत्तमदास गीगाभाई पांचभायाने मुद्रित किया—भावनगर.

वीर सं० २४४१ । सन् १९१५ ।

परमगुरुशास्त्रविशारद-जैनाचार्यश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः।

तेरापंथ-मत समीक्षा।

लेखक,

मुनिराज विद्याविजय।

प्रकाशक,

अभयचंद भगवान गांधी.

धी "विद्या विजय" प्रिन्टिंग प्रेसमें शाह पुरुषोत्तमदास गीगाभाई पांचभायाने मुद्रित किया—भावनगर.

वीर सं० २४४१। सन् १९१५।

सज्जनो ! इसको अवश्य पढो !



इस पुस्तकको छपे करीबन एक साल हो गया, परन्तु इस पुस्तकमें पूछे हुए ७१ प्रश्नोंके उत्तर, अभी तक किसी तेरापंथी महाशयकी तरफसे नहीं मिले। अतएव पुनः सूचना की जाती है कि–उन लोगोंको चाहिये कि–वे, अपने माने हुए ३२ सूत्रोंके मूल पाठों-से, सभ्यताके साथ, इन प्रश्नोंके उत्तर दे करके, अपनी इज्जत पर लगी हुई कालिमाको दूर करें।





भूमिका।

इस पुस्तकमें भूमिकाकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि पुस्तकके उपक्रममें ही भूमिका योग्य वक्तव्य कह दिया है। तिसपर भी इस पुस्तककी रचनाके विषयमें एकाध बात, यहाँ कह देनी समुचित समझता हूँ।

यह नियम है कि–'कारणके सिवाय कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती।' इस पुस्तकके निर्माणमें भी कुछ न कुछ कारण तो जरूर ही है।

संसारमें ऐसा भी एक मत है, जो कि दया–दान–मूर्तिपूजाको नहीं मानता है। इस मतका नाम है तेरापंथ–मत। इसकी प्रसिद्धि प्रायःकरके राजपूताना–मारवाडमें अधिक है। और तेरापंथी साधुओंका अधिकतर विचरना वहाँ ही होता है, जहाँ हमारे संवेगी साधुओंका विचरना बहुत कम, बल्कि नहीं होता है। ऐसे क्षेत्रोंमें, हजारों भोले मनुष्य, इन साधुओंके उपरि आडंबरसे फँस जाते हैं। इस लिये मेरा कई दिनोंसे इरादा था कि–'तेरापंथी–मतके विषयमें एक पुस्तक लिखुं, और इन्होंने शास्त्रके विरुद्ध की हुई कल्पनाएं, तथा जिनागमके असल सिद्धान्त (दया–दान) को मूलसे उखाड दिया है, वगैरह इनके, दुर्गतिमें ले जानेवाले मन्तव्योंकी तस्वीर दुनियाको दिखलाउँ।' ऐसे विचारमें था ही, इतनेमें पाली–मारवाडमें, हमारे परमपूज्य प्रातःस्मरणीय

गुरुवर्य शास्त्रविशारद–जैनाचार्यश्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज. तथा इतिहासतत्त्वमहोदधि उपाध्यायजी श्रीइन्द्रविजयजी महाराजका पधारना हुआ, उस समय वहाँ के तेरापंथियोंने आपसे चार दिन तक चर्चा की। अन्तमे वे लोग निरुत्तर हो गये, तब उन्होंने तेईस प्रश्नोंका एक चिट्ठा दिया, और उनके उत्तर मांगे।

बस, इसी निमित्तको लेकरके, उनके तेईस प्रश्नोंके उत्तरोंके साथ इस पुस्तकके निर्माण करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

इस पुस्तकमे तेरापंथी मतकी उत्पत्ति, उसके मन्तव्योंके देनेके बाद पालीकी चर्चाका संपूर्ण वृत्तान्त तथा उनके पूछे हुए तेईस प्रश्नोंके उत्तर दिये गये है। और अन्तमें तेरापंथियोंसे ७५ प्रश्नोंके उत्तर उनके माने हुए ३२ सूत्रोंके मूल पाठोंसे मागे है।

मुझे इस बातके कथन करनेमे संकोच उपस्थित नहीं होता है कि–इस पुस्तकके पढनेमें लोगोंकी अभिरुचि अवश्य बढी है। क्योंकि इसका यही प्रमाण है कि–प्रकाशकको, इसकी दूसरी आवृत्तिके प्रसिद्ध करनेका समय शीघ्र ही प्राप्त हुआ है।

मैं आशा करता हूँ कि तेरापंथि मतके विषयमे, बिलकुल संक्षेपसे लिखी हुई इस पुस्तकको पढ करके, तेरापंथी तथा इतर महानुभाव अवश्य लाभ उठावेंगे।

उदयपुर (मेवाड)
आश्विन शुदि १५ वीर सं. २४४१ } **विद्याविजय.**



॥ अर्हम् ॥



श्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

तेरापंथ–मत समीक्षा ।

पंचमकालका प्रभावही ऐसा है कि-ज्यों ज्यों काल जाता है, त्यों २ एक के पीछे एक, ऐसे मतमतान्तर बढते ही जाते हैं। देखिये, जिन्होंने महावीर देवके शासनका स्वीकार नहीं किया, उन्होंने अपनी खिचडी अलग ही पकानी शुरु कर दी। जैसे महावीर-देवके शासनबाह्य निह्नवोंकी कथाएं तो सुप्रसिद्ध ही हैं। तदनन्तर वि. सं १५०८ में लोंका लेखकने, जोकि गृहस्थ था, लुंपकमत चलाया। और लोगोंको बहकाकर विपरीत मार्गपर ले जानेके लिये खूब ही प्रयत्न किया। इसके बाद १७०९ में, इसी लोंका लेखकके चलाए हुए मतमेंसे लवजी ऋषिने ढूंढक पंथ (स्थानकवासी) निकाला। जिसने मूर्तिपूजन वगैरहका निषेध किया। इसकी सिद्धिके लिये, सूत्रोंमें जहाँ २ मूर्तिपूजाका अधिकार आया, उसके अर्थोंको बदलनेमें बहादुरीकी। तदनन्तर इसी ढूंढक पंथमेंसे एक 'तेरापंथी' मत निकला कि जिसकी समीक्षा करना, आजके लेखका प्रधान उद्देश्य है। इस पुस्तकमें, पहिले तेरापंथ-मतकी उत्पत्ति, उसके मन्तव्य, मालूम

(मारवाड)में जो चर्चा हुई, उसका सारा वृत्तान्त, तेरापंथीके तेईस प्रश्नोंके उत्तर और अन्तमें तेरापंथियोंसे पूछे गये प्रश्न भी लिख दिये गये हैं । आशा है पाठक, इसको ध्यान पूर्वक पढेंगे ।

तेरापंथ-मतकी उत्पत्ति ।

यह पंथ १८१८ की सालमें शुरु हुआ है । इसकी उत्पत्ति इस तरह हुई:—

" संवत् १८०८ की सालके लगभगमें मारवाडमें ढूंढक बाईस टोलेके, रुघनाथजी नामक साधु, अपने शिष्योंके साथ विचरते थे । इनके पासमें सोजत-बगडीके नजदीक कंटालीए के रहने वाले भिखुनजी नामक ओसवालने दीक्षा ली । किसी समयमें रुघनाथजी, मेडतेमें भिखुनजीको श्रीभगवती सूत्र पढाते थे । यद्यपि भिखुनजीकी बुद्धि कुछ तीक्ष्णथी, परन्तु विचार-शक्ति उलटी होनेसे बहुतसी बातोंमें इन्हें विपरीतता मालूम होने लगी । इसकी चेष्टा माधनमल धाडीवाल श्रावक जान गया । इस श्रावकने रुघनाथजीसे कहा:— ' आप इसको भगवती सूत्र पढा रहे हैं, परन्तु यह तो ' पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ' जैसा होता है । यह आगे जा करके निह्नव होगा । और उत्सूत्र प्ररूपणा करेगा । '

रुघनाथजीने कहा:— ' पहिले भी श्रीवीरभगवानने गोशालेको बचाया है । जमालीको भी पढाया और निह्नव हुआ तो क्या किया गया ? आगे २ कर्मानुसार हुआ करता है । इसका भी कर्मानुसार जो भावि—होनहार होगा सो होही जायगा । ' इस तरह कह करके उन्होंने भगवती तो

पूरी करादी । चोमासेके समाप्त होनेपर भिखुनजी उस भगवतीजीके पुस्तकको ले करके चलने लगे । तब रुघनाथजीने कहाः-' पुस्तक छोडते जाओ । ' परन्तु भिखुनजी तो लेकरके ही चले । पीछेसे दो साधुओंको भेज करके रुघनाथजीने वह पुस्तक मंगवा ली । बस ! इसीसे आपके हृदय मंदिरमें क्रोधाग्नि प्रज्वलित भी हो गई और आपने यह निश्चय भी करलिया कि-' मैं नया मत निकालुं और रुघनाथजीको कष्ट दूँ । ' अस्तु !

आपने मेडतेसे विहार करके मेवाडमें आकरके राजनगरमें चातुर्मास किया । यहाँपर सागर गच्छके यतिका एक भंडार था । उस भंडारमेंसे श्रावक लोग उसको, जो चाहिये सो पुस्तकें देने लगे । परन्तु ठीक है । स्याद्वाद शैलीयुक्त, अनंतनयात्मक श्रीजिनवचनके सच्चे रहस्यको, समुद्र समान गंभीर बुद्धिवाला भी गुरुगमताके सिवाय, प्राप्त नहीं कर सकता है, तो भिखुनजी जैसे, अव्वल तो मूर्तिके उत्थापक, गुरुगमताका नाम निशान नहीं, और फिर टब्बा-टब्बीसे काम लेनेवालेको, सच्चा रहस्य न मिले और वैपरीत्य पैदा हो, तो इसमें कोइ आश्चर्यकी बात नहीं ।

ठीक हुआ भी वैसाही । ज्यों २ भिखुनजी अपने आपसे पढता गया त्यों २ उसके ऊपर अनेक प्रकारकी शंकाएं और कुतर्क सवार होने लगे । अन्तमें अविधिसे सूत्र पढनेका प्रभाव, भिखुनजीके ऊपर बराबर पडा । भिखुनजीने पहिले पहल इस दयाका ही शिरच्छेद किया, जो कि जिन शासनका प्रधान मंत्र है-जिन शासनका प्रधान उद्देश्य है । भिखुनजी ने इस प्रकारकी प्ररूपणा कीः--

'साधु-मुनिराज किसी त्रस–स्थावर जीवको हणे नहीं, हणावे नहीं और अन्य कोई हणे उसकी अनुमोदना करे नहीं । किसीने किसी जीवको बांधा हो, तो साधु छोडे नहीं, छोडावे नहीं, और छोडे उसको अच्छा जाने नहीं । यह साधुका आचार है । इसी तरह श्रावक भी तीर्थंकरके छोटे पुत्र हैं, इस लिये वे भी कोई कीसी जीवको मारता हो तो, उस जीवको छोडे नहीं, छोडावे नहीं और छोडे उसकी अनुमोदना करे नहीं । इसमें कारण यह दिखलाया कि–यदि कोई शख्स, किसी जीवको मारता हो, और उसको छुडाया जाय, तो प्रथम तो अंतराय दोष लगेगा । तथा छुडानेके बाद वह जीव हिंसा करेगा, मैथुन सेवेगा, पत्र-पुष्प-फल तोडेगा, भक्षण करेगा वगैरह सब पाप छुडानेवालेके सिर लगते हैं । अर्थात् जैसे किसी वंडेमें गाय–बैल वगैरह भरे हुए हैं, और उसके पास अग्नि लगी हो, तो उस वंडेका दरवाजा खोल करके उन जानवरोंको बाहर नहीं निकालने चाहियें । क्योंकि–उनको निकालेंगे तो वे गाय–बैल वगैरह पशु मैथुन सेवेंगे–हिंसा करेंगे वह पाप दरवाजे खोलनेवालेके सिर पर है । इसके उपरान्त यह भी परूपणाकी कि–साधुके सिवाय कोई संयति नहीं है । अतएव, सिवाय साधुके और किसीको देनेमें निर्जरा या पुण्य होता ही नहीं है ।'

इस प्रकार भिखुनजीने दया और दानका निषेध किया ।

इस परूपणामें चार मनुष्य प्रधान थे । भीखुनजी तथा जयमलजीका चेला वखताजी, ये दो साधु तथा वच्छराज ओसवाल और लालजी पोरवाल, ये दो गृहस्थ । इन चारोंने मिल करके यह परूपणाकी ।

चातुर्मास उतरनेके बाद भीखुनजी, अपने गुरु रुघनाथजीके पास सोजत आए। रुघनाथजी पहिलेसे जान गए थे कि-इसने ऐसी प्ररूपणाकी है। इस लिये उसका कुछ सत्कार नहीं किया। आहार भी साथमें नहीं किया। तब भीखुनजीने अपने गुरुसे कहाः-मेरा क्या अपराध है? रुघनाथजीने कहाः-तुमने उत्सूत्रप्ररूपणाकी, रुघनाथजीने उसको समझाया किः-'यह तुम्हारी कल्पना, बिल्कुल शास्त्र और व्यवहार दोनोंसे विरुद्ध है। यदि ऐसा ही हो तो धर्मके मूल अंगभूत दया और दान दोनों खंडित क्या? सर्वथा उठही जायेंगे। और जब ये दोनों उठ गए तो फिर मोक्ष मार्गका अभाव ही हो जायगा। अन्तमें क्रमशः सर्वथा नास्तिकताकी नौबत आ जायगी। अत एव तुमने जो अरिहंतोंके अभिप्रायसे विरुद्ध प्ररूपणाकी है, उसका प्रायश्चित लेलो और आयंदे ऐसा न हो, ऐसा निश्चय करो।

भीखुनजीके अन्तःकरणमें इस बातकी जरा भी असर न पहूंची, परन्तु इसने अपने मनमें विचार कियाः-' यदि इस समय मै अपने मानसिक विचार प्रकट कर दूँगा तो ये गुरुजी मुझे समुदायसे बाहर निकाल देंगे। और अभी मैं बाहर हो करके अपना टोला नहीं जमा सकता हूँ। क्योंकि-अभी मेरे पास वैसे सहायक नहीं हैं, जैसे चाहियें। अत एव अभी तो गुरुजी जो कुछ कहें, स्वीकार ही कर लेना उचित है'। ऐसा विचार करके दंभ प्रिय भिखुनजीने कहा-'हे स्वामिन्! मेरी भूल आपने कही इससे मैं क्षमापात्र हूँ। आप जो कुछ प्रायश्चित्त दें, मैं लेनेके लिये तय्यार हूँ'। गुरुने छमासी प्रायश्चित्त दिया। (किसी २ जगह दो दफे प्रायश्चित्त लेना लिखा है) यह सब

हुआ, परन्तु भीखमजीके चेले भारमलने श्रद्धा छोडी नहीं। पश्चात् रुघनाथजीने भिखुनजीसे कहाः—

'बगडीमें वखताजी ढुंढिये, वच्छरामजी ओसवाल, राजनगरके श्रावक लालजी पोरवाड, इन तीनोंकी तुमने श्रद्धा हटाई है, इस लिये तुम वहाँ जाकरके ठिकाने लाओ। उन लोगोंको तुम ही समझा सकोगे, वहाँसे आप आज्ञा लेकरके बगडी आए। यहाँपर तो आपको 'लेने गई पूत तो खोआई खसम' जैसा हुआ। आएथे तो वखते ढूंढकको समझाने। परन्तु प्रत्युत वखता ढूंढिया आपहीको उपालम्भ (ठपका) देने लगा। वखता ढूंढकने कहाः- देखो! अपने सबने मिल करके यह ठीक कियाथा, और फिर तुमे तो रुगनाथजीके पास जाकरके फँस गए। यह क्या किया?'बस! ऐसे २ बहुतसे वचन सुना करके फिर चक्कर घुमाया। फिर दो चार महीने बाद भिखुनजी रुघनाथजीके पास आए। फिर भी आहार पाणी साथ नहीं किया। तब रुघनाथजीके भाई जेमलजीके पास भि खुनजी गए। जेमलजीको और रुघनाथजीको द्वेष हुआ। छे महीने तक पंचायत होती रही। किन्तु अपना मत नहीं छोडा! भिखुनजीने अंदर अंदरसे साधुओंको और गृहस्थोंको अपने पक्षमें ले लिये थे। रुघनाथजीने प्रायश्चित्त लेकरके समुदायमें रहेनेको बहुत कुछ कहा। परन्तु अब वह कैसे मान सकताथा। क्योंकि उसके पक्षमें और भी लोग मिल गये थे। रुघनाथजीने बहुत कुछ समझाया, परन्तु नहीं समझा, तब 'बिगडा पान बिगाडे चोली, बिगडा साधु बिगाडे टोली' इस नियमानुसार रुघनाथजीने उसको सं० १८१५ चैत्र शुदि ९ शुक्रवारके दिन

समुदायसे बाहर किया। (किसी २ जगह १८१८ लिखा है) भीखुनजी जब समुदायसे बाहर हुए तब वे बखतावर, रूपचन्द भरमल, गिरधर वगैरह बारह और वह मिलकर, तेरह आदमी निकले थे। बस! इसीसे 'तेरापंथ' ऐसा नाम पडा है। सुनते हैं रूपचन्द आदि दो साधु तो किसी कारणसे थोडे ही समयमें भिखुनजीको छोड कर, रुघनाथजीको मिल गये थे।"

बस। इस प्रकारसे 'तेरापंथ' की उत्पत्ति हुई है।

अब भिखुनजी ग्रामानुग्राम विचरने लगा। और खुल्लं-खुल्ला दया–दानका निषेध करने लगा। बहुतसे पंडित लोग उससे शास्त्रार्थ करके उसको पराजय करते थे। परन्तु गाढ मि-थ्यात्वके प्रभावसे वह कैसे मान सकता था?। उसके अभिनि-वेश–मिथ्यात्वरूप भूमिगृहमें पंडितोंके–विद्वानोंकी वचनरूप कि-रणें घुसने नहीं पाती थीं। जब भिखुनजी शास्त्रार्थमें किसीसे हार जाता था, तब वह कहता थाः–'मेरी बुद्धिकी न्यूनतासे मैं पराजित होता हूं। परन्तु बात तो जो मैं कहता हूं वही सत्य है'। बस! ऐसी २ बातें करके अपने हठवादको नहीं छोडता था।

प्रियपाठक! तेरापंथके मूल उत्पादक भिखुनजीके दादे परदादे लोग सूत्रोंमेंसे 'मूर्त्ति' विषयक जो २ रकमें थीं उनकी तो चोरी कर ही चुके थे। अब भिखुनजीने मूल दो और बा-तोंका फेरफार किया। यह तो सब कोई समझ सकते हैं कि-वहीमेंसे एक दो रकमकी चोरी कोई करना चाहे तो उसको बहुत रकमोंका फेरफार करना पडता है। बस! इसी नियमा-नुसार दया और दान ये दो रकमें उडानेमें और किनकिन २ बातोंमें फेरफार करना पडा, तथा उसकी सिद्धिके लिये

उसको कैसे २ मन्तव्य प्रकट करने पडे यह सब बातें आगे चल करके आप पढेंगे ।

तेरापंथ-मतके मन्तव्य ।

तेरापंथियोंने ऐसे २ मन्तव्य प्रकाशित किये हैं, कि-जिनको सुन करके कैसाभी मनुष्य क्यों न हो, उनके प्रति सम्पूर्ण घृणाकी दृष्टिसे देखे विना नहीं रहेगा। बातभी ठीक ही है कि, जिन्होंने दया और दान ये दो परमसिद्धान्तोंकाही शिरच्छेद कर दिया है, वे लोग फिर क्या नहीं कर सकते हैं ? अस्तु ।

यहाँ पर उनके मन्तव्य दिखलाए जायँ, इसके पहिले एक और बात कह देना समुचित समझता हूं ।

तेरापंथ-मतके उत्पादक भिखुनजीने जब दया और दान दोनोंको जडसे उखाड करके डाल दिये। तब उसके गुरु तथा और भी लोग समझातेथे कि-देखो, 'महावीर देवने भी अनुकंपासे गोशालेको बचाया है'। जब उसकी एकभी न चली, तब 'महावीरदेव भूले' ऐसा कहना पडा। अन्तमें यहाँ तक नौबत आई कि-महावीर देवके अवर्णवाद भी बोलने लग गया। उसको यह भी समझाया गया था कि-"तू जो उत्सूत्र भाषण करके अनुकंपाका निषेध करता है, वह बिल्कुल बे सिर-पैरकी बात है। देखो, उपासकदशांगमें, श्रेणिक राजाने अनुकंपाके कारण अमारी पटह बजवाया, ऐसे लिखा है। रायपसेणीसूत्रमें परदेशी राजाने १२ व्रतका उच्चारण किया, वहाँ परिग्रहपरिमाणका चतुर्थ हिस्सा अनुकम्पा (दानशाला क-

गैरह) में लगाया। और भी देखोः-उत्तराध्ययनसूत्रमें श्री-नेमनाथ विवाहके निमित्त जब आए है, तब वहाँ पर वाडेमें भरे हुए पशुओंको अनुकंपासे छुडवाये हैं। तथा ठाणांगसूत्रमें दस प्रकारके दान प्ररूपण किये हैं उनमें अनुकंपादान भी आ जाता है।"

इत्यादि बहुत २ पाठ दिखा करके समझाया, परन्तु उसने अपने अभिनिवेशको बिलकुल त्याग ही नहीं किया। ठीक ही बात है कि जीवोंकी गति कर्मोंके अधीन है। और जैसी गति होती है वैसीही मति भी होती है। तदनुसार भिखु-नजीकी मति भी, उसकी गतिका परिचय कराने लगी। बस, परमात्माके शासनमें अनेकों निह्नव हुए, उन्होंमें इसका भी एक नम्बर बढ गया। परन्तु इसमें एक विशेषता थी कि और सब निह्नवतो मूलपरंपरासे निकले, परन्तु यह तो निह्नवोंमेंसे निह्नव हुआ। अस्तु !

यह पहिलेही दिखला दिया है कि-भिखुनजीने मूल तो दोही रकमोंका फेरफार किया। दया और दान। परन्तु उन दोनों रकमोंके फेरफार करनेमें, उसको अनेकों मन्तव्य शास्त्र विरुद्ध प्रकाशित करने पडे। यहाँपर संक्षेपमें, उसके प्रकाशित मन्तव्य दिखलाये जाते हैं।

दयाके विषयमें.

१ भूखे-प्यासेको जिमाने, कबूतर वगैरह जीवोंको दाने डालने तथा पानीकी पीयाऊ (पो) लगाने एवं दान-शाला करवानेमें एकान्त पाप होता है

२ बिल्ली, मूसे [ऊंदर] को पकडती हो, और अगर उसको छुडाया जाय, तो भोगान्तराय लगे । इसी तरह और भी कोई हिंसक जीव, कीसी दुर्बल जीवको मारता हो और छुडाया जाय, तो भोगान्तराय लगता है, ।

३ असंयति जीवका जीना नहीं चाहना ।

४ मरते हुए जीवको जबरदस्तिसे यानी शरीरके व्यापारसे बचावे तो पाप लगे ।

५ जीवको मारे उसको एक पाप लगे और बचावे उसको अठारह पाप लगें ।

६ साधुको कोइ दुष्ट फांसी दे गया हो, और कोइ दयावंत उस फांसीसे साधुको बचावे, तो उसको एकान्त पाप लगे ।

७ दुःखी जीवको देखकरके विचार करना कि–'अहो ! यह अपने कर्मसे दुःखी हो रहा है । उसके कर्म तूटें तो अच्छा' बस, ऐसी चिंतवना करे, उसका नाम अनुकंपा है । भोजन-वस्त्र वगैरह दे करके उस जीवको सुख उपजाना नहीं चाहिये ।

प्रिय पाठक ! हमारे तेरापंथी भाइओंकी दया के, नहीं नहीं निर्दयताके नमूने आपने देखलिये । अब उनके दान विषयक कुछ नियम देखिये ।

दानके विषयमें.

१ साधुको छोडकरके किसी (गरीब-रंक-दुर्बल-दुःखी वगैरह) को दान देनेमें एकान्त पाप लगता है ।

२ महावीर भगवंतने असंयती–अव्रतियोंको बरसी दान दिया जिससे उनको बारह वर्ष [फोडा] दुःख पडा ।

३ साधुके सिवाय पुण्यका क्षेत्र कहीं भी नहीं है ।

४ श्रावकको भी दान देनेमें पाप लगता है ।

५ श्रावक जहरके कटोरेके समान तथा कुपात्र हैं । इस लिये उनको दान देनेमें तथा धर्मके उपकरणदेनेमें भी धर्म नहीं है ।

इनके सिवाय अनेकों मन्तव्य शास्त्रविरुद्ध प्रकाशित किये हैं । पाठकोंने हमारे तेरापंथी भाइयोंकी दयाकी पराकाष्ठा ऊपरसे देखली होगी । क्या उनलोगोंको कोईभी मनुष्य जैन कहनेका दावा कर सकता है ? कभी नहीं । परमात्मा महावीर देवने साधुओंको तथा गृहस्थोंको ऐसी निर्दयता रखना फरमायाही नहीं । परन्तु ठीक है, जो लोग संस्कृत-व्याकरणादिको तो पढते नहीं, और टब्बाटब्बीसे अपना कार्य निकालना चाहते हैं, वे ऐसे २ झूठे अर्थ करके सत्यमार्गसे परिभ्रष्ट हो जायँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? । याद रखना चाहिये कि–सिवाय व्याकरणादि पढनेके सूत्रोंके वास्तविक अर्थ नहीं प्राप्त हो सकते । और जो लोग नहीं पढे हुवे होते हैं, उनको जैसा भूत लगाया जाय, वैसा लग सकता है । जैसे 'घी खिचडी' का दृष्टान्त ।

घी खिचडीका दृष्टान्त.

" एक विद्यानुरागी राजा न्यायपूर्वक राज्य करता था, और उसके पास एक विद्वान् पुरोहित भी रहता था । अतएव उसकी प्रशंसा देश–विदेशमें हुआ करती थी । हजारों विद्वान् उस राजाके पास आकरके, अपनी विद्याका माहात्म्य दिखाकर लाखों रूपये इनाममें ले जाते थे । कालकी विचित्र महिमा है । वह अपना कार्य बराबर बजाया ही करता है । इसी

नियमानुसार अपनी अपनी आयुष्यको पूरा करके राजा तथा पुरोहित दोनों परलोकमें जा बसे। राजाकी गद्दी पर राजपुत्र बैठा और पुरोहितजीका कार्य पुरोहितजीका लडका करने लगा। परन्तु ये दोनों संस्कृत ज्ञानसे बिलकुल वंचित ही थे। एक दिन पुरोहितकी स्त्रीने अपने पतिसे कहाः–'स्वामिनाथ! राजाके पास अनेकों विद्वान् देश-विदेशसे आते हैं। आपके पिता संस्कृतके परमज्ञाता थे, जिससे समस्त विद्वान् प्रसन्न होकर जाते थे। आपने मौज-शौकमें विद्यारत्न प्राप्त किया नहीं। लेकिन अब आपका अपमान न हो, इस लिये आपको थोडी बहुत संस्कृत विद्या प्राप्त करलेनी चाहिये। धूर्तराट् पुरोहित बोलाः–'मुझे सब प्रकारकी विद्याएं कपट देवके प्रसादसे प्रसन्न हैं। व्याकरणको तो व्याधिकरण समझता हूं। तथा न्यायको नाई (हजाम) समझता हूँ। तू जराभी फिकर मत कर।' ऐसा कह करके राजाके पास चला गया।

राजाके पास अपना बडाईका ब्यूगल बजाता हुआ कहने लगाः–'महाराज! आजकल सच्ची विद्या लोगोंमें रही नहीं। सब लोग पांच २ दस २ श्लोक कंठस्थ करके यहाँ आते हैं, और आपको प्रसन्न करके पुष्कल द्रव्य ले जाते हैं। आपके पास अब जो पंडित आवे, उसकी परीक्षा करनी चाहिये। लीजिये, मैं यह श्लोक देता हूं। इसका अर्थ, जो पंडित आवे, उससे पूछिये,। ऐसा कह करके पुरोहितजीने 'शान्ताकारं पद्मनिलयम्' ऐसे पदवाला एक श्लोक दिया। इसका अर्थ भी उसने राजाको समझा दिया। उसने कहा, 'इसका अर्थ है 'घी खिचडी'। जो पंडित ऐसा अर्थ न करे उसको मूर्ख समझना'।

राजाने, उस श्लोकको और उसके अर्थको अपने हृदयमें स्थापन कर लिया। राजाके पास काशी-कांची-नदीया-शान्तिपुर-भट्टपल्ली-मिथिला-काश्मीर तथा गुजरातमे निरन्तर पंडित आने लगे। और अपनी २ विद्वत्ता राजाको दिखाने लगे। जो पंडित राजसभामें आया, उसके सामने वही 'शान्ताकारं पद्मनिलयं' वाला श्लोक धर दिया। इस श्लोकका अर्थ सब पंडित अपनी २ बुद्ध्यनुसार करने लगे। परन्तु मनमाना अर्थ नहीं करनेसे राजा प्रसन्न नहीं होता था। बिचारे पंडित लोग खंडान्वय-दंडान्वयसे अर्थ करने लगे, तथा प्रकृति-प्रत्यय वगैरह सब पृथक् पृथक् दिखा करके अपना पांडित्य दिखाने लगे, परन्तु राजाकी प्रसन्नता न होनेके कारण वे बिना दक्षिणाके ही अपना २ मार्ग लेने लगे। ऐसे सैंकडों पंडित आए, परन्तु राजा सबका अपमानही करता रहा। राजा उस धूर्तपुरोहितके ऊपर अधिकाधिक प्रसन्न होने लगा, और उसकी जो बारह हजारकी आमदनी थी, वह बढाकर चौवीस हजारकी कर दी। राजाके मनमें यह विश्वास हो गया कि-सारे देशमें यदि कोई पंडित है तो पुरोहितही है।

एक दिन एक ब्राह्मणका लडका पुरोहितकी स्त्रीकी सेवा करने लगा। उसने एक दिन बात बनाकर कहा:-एक 'श्लोक ऐसा है कि जिसका अर्थ अपने राजा और आपके पति ये दोनोंही जानते हैं। तीसरा कोई जानताही नहीं है। क्या आप उस श्लोकका अर्थ नहीं जानते हैं'! स्त्रीने यह बात मनमें धारण करली। रात्रीको जब पुरोहितजी आए, तब झटसे स्त्रीने पूछा:-'राजा जो श्लोक सब पंडितोंको पूछता है उसका अर्थ क्या है?' पुरोहितने कहा:-'तू समझती नहीं

है । षट्कर्णो भिद्यते मंत्रः, इस नियमानुसार यह बात तीसरेको नहीं कही जा सकती । '

स्त्रीने बराबर हठ पकडी, और कहाः-' मुझको अगर अर्थ नहीं कहेंगे, तो मैं समजूंगी कि-आपका मेरे पर विश्वास नहीं है । और प्रेमभी नहीं है । '

स्त्रीके आगे भट्टजीका जोर कहाँ तक चल सकता था ? स्त्रीके आग्रहसे पुरोहितजी कहने लगेः-' देख, मैं अर्थ तुझे कहता हूं, परन्तु किसीसे कहना नहीं । मुझको उस श्लोकका अर्थ नहीं आता है, परन्तु मैंने राजाको बहकानेके लिये ' घी खिचडी ' ऐसा अर्थ कह रक्खा है । क्योंकि-वैसा अर्थ कोई पंडित करे नहीं, और राजाकी प्रसन्नता होवे नहीं । बस, इसीसे अपना कामभी जमा रहे । '

प्रातःकाल होते ही वह लडका आया और स्त्रीके सामने पूर्वोक्त बात छेडी । लडकेने कहाः-' आप सब बातोंमें प्रवीण हैं, परन्तु आश्चर्य है कि उस श्लोकका अर्थ आपकोभी नहीं आता । ' स्त्रीने झटसे कह दियाः-' यह क्या बोलता है, मुझे अर्थ आता है । ' लडकेने कहाः-' मैं नहीं मान सकता तिसपरभी अगर आता होवे तो कह दीजिये । '

स्त्रीकी जाति कहाँ तक अपने हृदयमें गुप्त बात रख सकती है ? स्त्रीने कहाः-' देख ! किसीसे कहना नहीं । उसका अर्थ तो, जो पंडित लोग करते हैं, वही है, परन्तु राजाको बहकानेके लिये ' घी खिचडी ' ऐसा अर्थ ठसा दिया है । '

लडकेको उस श्लोकका तात्पर्य जब ठीक २ मिल गया । तब हमेशा समस्त पंडितोंका अपमान देख करके लडकेके मनमें बहुतही ग्लानी उत्पन्न होती थी ।

एक दिन बडा भारी पंडित राजाके पास आया, उसकी भी वही दशा होगी, ऐसा जान करके वह लडका उस पंडितके पास गया । और कहने लगाः-'पंडितजी महाराज ! राजा महा-मूर्ख है, आपके सामने एक श्लोक रक्खेगा । उसका अर्थ राजाने जो सोच रक्खा है, अगर वह आप नहीं करेंगे, तो आपका अपमान करके निकाल देगा । राजा उस श्लोकका जो अर्थ समझ बैठा है, वह अर्थ मैं जानता हूँ । यदि आप यह स्वीकार करें कि-राजा आपको जो दे, उसमेंसे आधा मुझको देवें, तो मैं उसका अर्थ आपको कह दूँ ।' पंडितजीने इस बातका स्वीकार किया, तब लडकेने कहा कि-'राजाको कह देना कि इसका अर्थ 'घी खिचडी' होता है ।'

पंडितजी विचार करने लगे कि-बडा भारी अनर्थ किया है । अस्तु ! पंडितजी अपने सब छात्रों (विद्यार्थियों) के साथ राजसभामें गये । राजाने शीघ्रही उस श्लोकको पंडितजीके सामने धर दिया । उसको देख करके पंडितजी कुछ हसे, और कहने लगेः-'महाराजाधिराज ! ऐसी क्या बात आपने निकाली । कुछ तत्त्वकी बात तो निकालिये । ऐसे श्लोकके अर्थ तो हमारे विद्यार्थी लोग भी कर देंगे ।' ऐसा कह करके एक विद्यार्थीको खडाकर दिया । और कहाः-'जा इस श्लोकका अर्थ राजाजीके कानमें जा करके कह दे ।' विद्यार्थीने धीरेसे कानमें कहाः-भो राजन् ! 'घी खिचडी' । 'घी खिचडी' इन चार अक्षरोंको सुनतेही राजा चौंक उठा । इतनाही नहीं, सिंहासनसे उतर करके पंडितजीको साष्टांग नमस्कार भी किया । और लाखों रुपये इनाममें दिये । पंडितजीका जयजयकार हुआ । पंडितजीने धीरेसे कहाः-"हे राजन् ! यह इनाम वगैरह तो ठीक है, परन्तु

मैं आपसे एक और बातकी याचना करता हूँ । वह यह है कि-आप मेरे पास एक वर्ष पर्यन्त संस्कृतका अभ्यास करिये । मैं आपका अधिक समय नहीं लूँगा । सिर्फ घंटे डेढ घंटेमें मूल २ बातको समझावूँगा । "

राजाने इस बातको स्वीकार किया । और हमेशा थोडी थोडी संस्कृत पढने लगा । राजे महाराजाओंकी बुद्धि स्वाभाविक सुंदर तो होती ही है । बस, थोडे ही दिनोंमें गद्य-पद्यका अर्थ राजा स्वयं करने लगा एक दिन पंडितजी परीक्षा लेने लगे । उस समय पंडितजीने वही ' शान्ताकारं पद्मनिलयं ' पदवाला श्लोक राजाके सामने रक्खा और कहाः-'राजन् ! अब इसका अर्थ करिये. '

राजा 'शान्त आकृतिवाले, पद्म है स्थान जिसका इस प्रकार जैसा चाहिये, वैसा अर्थ करने लगा । तब पंडितजीने कहाः-'नहीं महाराज, इसका सच्चा अर्थ करिये । ' राजाने कहाः-'पंडितजी महाराज, इसका दूसरा अर्थ होताही नहीं है । ' पंडितजी बोलेः-'महाराजाधिराज, इसका 'घी खिचडी' तो अर्थ नहीं होता है ? ' राजाने कहाः-'वाह ! पंडितजी महाराज ! ऐसा अर्थ कभी हो सकता है ?।

पंडितजीने कहाः-'बस, महाराज ! ख्याल करिये कि आपने कितने पंडितोंका अपमान किया ? । और कैसा अनर्थ किया ? ।

ऐसे वचन सुनते ही राजाने, उस झूठे अर्थ दिखलाने वाले पुरोहितको कैद करनेकी आज्ञा फरमाई । उसकी सारी मिलकत तथा आमदनी वगैरह छीन ली । और सत्य अर्थके प्रकाश होनेसे अपनी अज्ञानताको धिक्कार देने लगा । "

'घी खिचडी' के दृष्टान्तसे आप लोग समझ गये होंगे कि-संस्कृत व्याकरणादि नहीं पढनेसे कैसी कैसी अवस्था होती है ? और व्याकरणादिके पढनेके अनन्तर कैसी पोल निकल जाती है ? । इस लिये जहाँ तक हमारे तेरापंथीभाई व्याकरणादि नहीं पढेंगे, वहाँ तक परमात्माके सच्चे मार्गसे विमुखही रहेंगे।

महानुभाव तेरापंथी भाइयो ! अब भी कुछ समझजाओ और विद्याध्ययन करके स्वयं ज्ञान प्राप्त करो। लकीरके फकीर मत बनो। अगर पशुओंकी अपेक्षा आप अपनेमें कुछ भी अच्छी बुद्धि समझते हो तो उस बुद्धिका उपयोग, तत्त्वके विचार करनेमें करो। गदहेका पूंछ पकडा सो पकडा, ऐसा मत करो। स्वयं अपनी बुद्धिसे सार असारका, तत्त्व-अतत्त्वका, अच्छे-बुरेका विचार करो। जो बात अच्छी लगे, उसको ग्रहण करो। शास्त्रविरुद्ध कल्पनाओंके द्वारा अनन्त संसारी मत बनो। जी तो चाहता है कि-तुम्हारी सभी शास्त्रविरुद्ध कल्पनाओंका खण्डन किया जाय। परन्तु जो खण्डित है, उसका खण्डन क्या करना ? । तुम्हारे मन्तव्योंमें प्रत्यक्ष निर्दयता दिखाई दे रही है-प्रत्यक्ष अधर्म प्रतिभासित होता है, तो फिर उसके खण्डनके लिये अधिक कोशिश करनेकी आवश्यकता ही क्या है ? । और बहुतसी तुम्हारी अज्ञानता, तुम्हारे तेईस प्रश्नोंके उत्तरमें दिखलाई ही गई है, इस लिये अधिक न लिख करके यही लिखना काफी समझते हैं कि-कुछ पढो और ज्ञान प्राप्त करो, जिससे तुम्हें स्वयं मालूम हो जायगा कि-तुम्हारे भीखुनजीने तथा और साधुओंने जो २ परूपणाएं की हैं, वे सब शास्त्रविरुद्ध हैं। उन लोगोंने तुमको अपनी जालमें फँसा करके दुर्गतिमें लेजानेकी कोशिशकी है।

इस लिये सतझना हो तो समझ लो, उस दुर्गतिदायक ढाँचेको छोडदो, बस इतनाही लिख करके अब पालीके तेरापंथियोंने हमारें पूज्यपाद आचार्यजी महाराज तथा उपाध्यायजी महाराजके साथ गत वैशाख शुक्लमें, जो चर्चाकी थी, उसका सारा वृत्तान्त यहां लिख देना उचित समझता हूं।

'पाली (मारवाड) में तेरापंथियोंके साथ चर्चा।'

एक दिन घाणेरावाले गणेशमलजी तथा हीराचंदजी तातेडको आपसमें जिनप्रतिमा तथा मंदिरके विषयमें बातचीत हुई, उसमें गणेशमलजीने कहाः-"प्रतिमा पूजनेमें धर्म है। कई श्रावकोंने प्रतिमा पूजी है।" इत्यादि बातें होती थीं, इतनेमें शिरेमलजी नामक तेरापंथी श्रावकने, जो वहां उपस्थित था, गणेशमलजीसे कहाः-"क्या आप यह बात लिखकरके दे सकते हैं?" गणेशमलजीने कहाः-'मैं खुशीसे लिख सकता हूँ।' पश्चात् हीराचन्दजी तातेड तथा गणेशमलजी इन दोनोंने हस्ताक्षर करके लिख दिया। इसके बाद इस बातका निर्णय-चर्चा करनेके लिये दस वीस आदमी मिलकर हमारे गुरुवर्य शास्त्रविशारद-जैनाचार्य श्रीमान् विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराजके पास उपाश्रयमें आए। आते ही यह प्रश्न किया कि:-'महाराज! प्रतिमा पूजनेमें धर्म है?' आचार्य महाराजने कहा-'हां'। फिर पूछा 'कौनसे सूत्रमें?' आचार्य महाराजने कहा-'रायपसेणीसूत्रमें'। किस तरह? देखोः-

"सूर्याभदेवने उत्पन्न होनेके बाद अपने मनमें विचार किया कि-मुझको पूर्व-पश्चात्-हितकर-सुखकर-मुक्त्यर्थ-आ-

गामी भवमें सुखकारी क्या होगा ? इत्यादि विचार करके प्रभुपूजा की, जहाँ नमुत्थुणं वगैरह करके ' धुवं दाउं जिणवराणं ' इत्यादि पाठमें साक्षात् जिनवर, ऐसा विशेषण देनेसे जिनप्रतिमा जिनतुल्य मानी हुई है। "

इत्यादि बातें सूरिजी फरमातेथे, इतनेमें युगराजनामक तेरापंथी बोल उठाकी " सूर्याभदेवने नाटक किया, उस समय भगवानने न तो आदर किया है और न आज्ञा दी है। यदि धर्म होता तो भगवान् क्यों आज्ञा न देते ? "

उपाध्यायजी श्रीइन्द्रविजयजी महाराजने कहाः-"महानुभाव ! भगवान् मौन रहे, वैसे तीसरा पदभी तो हैः-'तुसणीए संचिट्ठति'। यदि पापका कारण होता तो भगवान् अवश्य निषेध करते। कई जगहोंपर भगवान्ने पापके कारणोंमें निषेध किया है। परन्तु ऐसा कहीं भी आप दिखा सकते हैं कि पापके कारणोंमें भगवान् मौन रहे हों ?। "

इस चर्चामें विद्वद्रत्न पं० परमानन्दजी मध्यस्थ थे। पंडितजीने कहाः-' अनिषिद्धं स्वीकृतम् ' इस न्यायसे सूर्याभदेवका नाटक प्रभुकी आज्ञा बाह्य नहीं है। तदन्तर सूरीश्वरजीने, सभाके समक्ष भगवान् मौन क्यों रहे ? इसका रहस्य इस तरह समजायाः-

" भगवान् यदि सूर्याभदेवको नाटक करनेकी आज्ञा दें तो चौदहहजार साधुओं तथा साध्वियोंके स्वाध्याय ध्यानमें विघ्न होता है। यदि निषेध करें, तो भक्तिभरनिर्भर मनवाले देवोंकी भक्तिका भंग होता है। अत एव प्रभु मौन रहे। इससे सूर्याभदेवने नाटक किया, वह प्रमाण है। अप्रमाण नहीं। प्रभु

इसमें सम्मत न होते तो दुसरीवार, सूर्याभदेवने जब आज्ञा मांगी, उस समय प्रभु साफ 'ना' कह देते। अथवा दृष्टि फिराकर बैठ जाते। उनमेंसे कुछ भी नहीं किया तथा सूर्याभदेवने जो २ नाटक किये उसकी चर्चा जब गौतमस्वामीने भगवान्से पूछी, तब जो बातथी सो भगवान्ने कह दी। अगर भगवान्की निषेध बुद्धि होती तो भगवान् साथ २ यह भी कह देते कि–उसमें मेरी आज्ञा नहीं थी अथवा योंही कह देते कि–सूर्याभदेवने नाटक करके पाप कर्म बांधा है। इनमेंसे कुछ भी नहीं करनेसे नाटक तथा पूजा दोनों सूर्याभदेवको लाभदायक हैं, इसमें जरा भी शक नहीं है।"

तेरापंथी श्रावक युगराज बोला कि–" भगवतीसूत्रमें जलते हुए घरसे धन निकाल लेने, तथा वल्मीक (राफडे) के शिखर तोडनेसे धन निकालनेके समय 'हियाए सुहाए' इत्यादि पाठ कहा है। तो क्या धन निकालनेमें भी मोक्ष धर्म था ?"

उपाध्यायजी श्रीइन्द्रविजयजीने पूछा:–" आपने भगवतीसूत्रके जो दो पाठ हैं, उनको देखे हैं? अगर देखे हों तो कहिये वे कौनसे शतकमें हैं ?"

तब वे बोले:–" इस समय हमें याद नहीं है।" ऐसा कह करके सब चले गये। दूसरे दिन दो बजेका समय निश्चय किया गया।

निश्चय करनेके मुताबिक दो बजेके समय कोईभी न आया, बल्कि चार बजे तक कोई नहीं आया। चार बजनेके बाद तेरापंथीकी तरफसे एक आदमी आ करके कह गया कि–"आज सूत्र नहीं मिला। कल आपका लेक्चर होनेसे परसों एकमके दिन दुपहरको आवेंगे।"

एकमके दिन दुपहरको सब लोग उपाश्रयमें आए। आद-मियोंकी भीड बहुत हो गई थी, परन्तु सब लोग शान्तचित्तसे श्रवण करते थे। जिनपूजाके विषयमें बहुत चर्चा हुई। तेरा-पंथी तथा ढूंढियोंकी तरफसे यह प्रश्न उठा कि–'प्रश्नव्याकर-णमें देवमंदिर तथा प्रतिमा करानेवाला मंदमति है, ऐसा कहा है, इसका क्या कारण ?।'

इसके उत्तरमें यह कहा गया कि–"साधु चैत्यकी वैयावच्च करे, ऐसे पाठोंके साथ, उपर्युक्त पाठका विरोध आता है। इस लिये पूर्व जो आश्रवद्वार है, उसके अधिकारि अनार्य लोग दिखलाये हैं। अत एव जहां देवमंदिर–प्रतिमा वगैरह जो २ बातें हैं, वे अनार्यके लिये समजना। देवमंदिर कहनेसे जिनमंदिर नहीं घट सकता। जिनमंदिर वैसा पाठ वहां नहीं है।

ऐसा कहनेसे सब लोग चुप हो गये। पुनः सूर्याभदेवकी पूजा संबंधी प्रश्न उन लोगोंने उठाया। और कहाः–"सूर्या-भदेवने जैसे पूजाकी, वैसे मिथ्यात्वी देव तथा अभव्य भी पूजा करते हैं।"

श्रीमान् पं० परमानन्दजीने कहाः–"पूजा हुई, यह आप स्वीकार करते हैं, सूर्याभदेव समकिति है, यह भी आप स्वीकार करते हैं, तो फिर पूजा समकिती जीवोंकी करणी सिद्ध हुई।"

इतनेमें एकने कहाः–"मिथ्यात्वी देव पूजा करते हैं, अभव्य भी करते हैं। अत एव वह तो देवोंका आचार है।"

आचार्य महाराजने कहाः–"महानुभावो! अभव्य–मिथ्या-दृष्टि जिनप्रतिमाकी पूजा करते हैं, ऐसा कोई पाठ तुम्हारा

दृष्टिमें है ? यदि हो तो दिखा दीजिये, जिससे खुलासा हो जाय।"

एक बूढा आदमी बीचमें बोल उठाः-"क्या सर्व इन्द्र समकित दृष्टि हैं ?" आचार्य महाराजने कहा 'हां'। तब वह कहने लगाः-'नहीं, समकित दृष्टि नहीं हैं'। तब लालचन्दजी तथा शिरेमलजीने उसको रोका और कहाः-"इन्द्र समकिति हैं।" जब उसके पक्षवालोंने कहा, तब वह चुप हुआ। बीच बीचमें दोनों पक्षके श्रावकोंमें ऐसी गडबड मचजाती थी कि-कोई क्या कह रहा है, यह भी नहीं सुनाजाता था। परन्तु पंडित प्रवर परमानन्दजी बीच बीचमें, उन लोगोंके व्यर्थ कोलाहलको, शान्त कराते थे।

वकील शिरेमलजी, लालचन्दजी तथा युगराजजीने कहाः-"सूर्याभदेवने बत्तीस वस्तुकी पूजाकी है। उसी तरह जिनप्रतिमाकी भी पूजा की है।"

पंडितजीने कहाः-"महाराजजी ! इसका उत्तर क्या है ?। क्योंकि ये लोग जिनप्रतिमाकी पूजाको, और पूजाओंके समान मानते हैं। यदि ऐसा ही हो तो विशेष बात ठहरेगी नहीं।"

आचार्य महाराजने कहाः-"जिनप्रतिमाकी पूजाके समय हितकारी-कल्याणकारी-सुखकारी आगे मुझे होगी ऐसा कहा है तथा नमुत्थुणं कहा है, वैसे शब्द यदि ३१ वस्तुओंके आगे कहे हों, तो दिखलाओ। अगर वैसा नहीं है, तो कदाग्रह ग्रहसे मुक्त हो जाओ।" तेरापंथीके श्रावकोंने कहाः-"हियाए सुहाए" इत्यादि पाठ भगवती सूत्रमें है। वहाँ

धन निकालनेके लिये कहा है। धनमें कुछ धर्म नहीं है, तथापि कहा है, इसका क्या कारण ?"

आचार्य महाराजने कहाः-"उस पाठका मतलब आपको याद है !" उन्होंने कहाः-हां याद है। भगवतीसूत्रके दूसरे शतकके प्रथम उद्देशेमें तथा पन्द्रहवे शतकके प्रथम उद्देशेमें यह अधिकार है।

आचार्य महाराजने कहाः-"वहाँ पर कैसे अधिकार चले हैं ! उनका मतलब क्या है !"

इसके उत्तरमें शिरेमलजी कहने लगे, तब उसके पक्षका दूसरा आदमी निषेध करने लगा। दोनोंको आपसमें 'हा' 'ना' की लडाई हुई, और योंही दस मिनिट चली गई। इसके बाद पंडितजीने कहा कि:-महाराजजी आपही फरमाईये। आचार्य महाराजने उस पाठको निकाल करके पंडितजीके सामने रख दिया। "गोशालेने, आनंदसाधुके पास कही हुई, चार वणिक्की कथा कही। वल्मीक (राफडे) के तीन शिखर तोडे, जिसमेंसे जल-सुवर्ण वगैरह माल निकला। चौथे शिखरके तोडनेके लिये जब खडा हुआ, तब वृद्ध वणिक् शिक्षा देता है। ये सब वणिक्के विशेषण हैं, धनके विशेषण नहीं हैं।"

इस बातको सुनकरके तथा पाठको देख करके पंडितजी आश्चर्यमग्न हो गये और उन लोगोंकी अज्ञानता पर तिरस्कार जाहिर करने लगे।

जब ढूंढक तथा तेरापंथी, यह समझ गये कि-'पाठ उलटा है-अपने कहे मुताबिक नहीं है' तब कहने लगे कि-

"हम यहां निःश्रेयस शब्दका अर्थ मुक्ति नहीं है, ऐसा कहना चाहते हैं।" पंडितजीने कहाः-महाराज इसका उत्तर क्या है।'

आचार्य महाराजने फरमायाः-" शिव--कल्याण--निर्वाण तथा कैवल्य वगैरह मुक्तिके ही पर्याय हैं ।" पंडितजीने कहाः-' बराबर है । निःश्रेयस शब्द दूसरे शतकके प्रथम उद्देशेमें है । वहाँ मुक्ति अर्थ किया है । '

इत्यादि बातोंसे जब स्पष्ट मूर्ति पूजा सिद्ध होने लगी । तब श्रावक लोगोंने आपसमें गडबड मचा दी । इसके बाद वे लोग इस बात पर आये कि—प्रश्न लिख करके महाराजको दिये जाँय । दवातकलम-और कागज मंगवाया गया । इतनेमें तेरापंथीका एक आदमी आया । उसने उन लोगोंसे कहाः—'चलिये आपको बुलाते हैं ।' यह भी एक तरहकी चालबाजी ही थी । अस्तु, अतएव सब लोग चले गये ।

एक बात और कहनेकी रह गई । जिस समय ' महानिशीथ प्रमाण है कि-अप्रमाण ! ' इस प्रकारकी बात चली थी, उस समय केसरीमल्लजीने यह कहा था कि-" मूर्ति पूजाकी प्ररूपणा करे, वह साधु नरकगामी है, वैसे उसमे लिखा है "। परन्तु उस पाठमें 'प्ररूपक' शब्द नहीं है, यह बात, उपाध्यायजी श्रीइन्द्रविजयजी महाराजने, पंडितजीके समक्ष केसरीमलजीको समझाई । केसरीमलजीने अपनी भूल स्वीकार की । इतना ही नहीं, परन्तु पंडितजीके कहनेके मुताबिक सभाके बीचमें जोर शोरसे अपनी भूल स्वीकार की ।

आचार्य महाराजश्रीने मूर्तिपूजाके विषयमें बहुत समझाया तब उसने कहा कि-मैं दर्शन हमेशा करता हूँ। पूजाके विषयमें कहा तब वे कहने लगेः-" मैं लकीरका फकीर हूँ । "

एक और भी बात है । अनुकम्पाके विषयमें तेरापंथी कहते हैं कि–'महावीर स्वामी चूक गये । ' ऐसा आचार्य महाराजने कहा तब पंडितजीने तेरापंथी श्रावकोंसें पूछाः–'क्या यह बात सत्य है ? ' । तब ये लोग उडानेकी चालाकी करने लगे, तब पंडितजीने फिर कहाः–'जो बात हो, सो बराबर कहिये । ' इतने में बाईस टोलेवाले बोल उठे कि–हम उस बातको नहीं मानते हैं ।

वे लोग यह कह करके उठ गये थे कि 'आधे घंटेमें प्रश्न भेजेंगे' । परन्तु दूसरे दिनके बारह बजे तक कोई न आया । एक बजे २३ प्रश्नोंका एक लंबा चौडा चिट्ठा ले करके सब लोग आए। पंडितजीको बुलाकरके उन लोगोंने कहा किः–'पंडितजी, इसको पढिए ' । पंडितजी पढने लगे । पंडितजीको भी उस चिट्ठेको पढते २ ऐसे २ शब्दोंका ज्ञान और अनुभव होने लगा जो कभी न पढेथे, और न सुने थे । पंडितजी वारंवार यह कहते जाते थे कि–'यह प्रश्न ठीक नहीं है, ' ' यहाँ पर यह शब्द न चाहिये, 'ये शब्द बिलकुल अशुद्ध हैं,' तब तेरापंथी श्रावक कहने लगेः–' लिखने वालेका यह दोष है । ' ठीक ये भी जीवरामभट्टके सच्चे नातेदार ही निकले ।

प्रियपाठक ! तेरापंथीके २३ प्रश्न, ज्योंके त्यों, उनके उत्तरोंके साथ दिये जायेंगे, जिससे विदित हो जायगा कि जिनको भाषाकी भी शुद्धाशुद्धिका ख्याल नहीं है, वे सूत्रोंके पाठोंको क्या समझ सकते हैं । खैर, अभी उनके २३ प्रश्नोंमेंसे कुछ शब्द, नमूनेकी तौर पर यहाँ उद्धृत करना समुचित समझता हूँ । देखिये, 'प्रथमकवले मक्षिकापातः' इस नियमको चरि-

तार्थ करता हुआ 'श्री जिनायै नमोः', और 'घ्रव्य पूजा,' 'आग्या,' 'पुरुपते,' 'अग्या,' आदिके बदले 'आददे,' 'पाश्शांग,' पर्यायके बदले 'भ्रज्याये,' त्रसके बदले 'तस्य' 'उप्पीयोग' छद्मस्थके बदले 'छंद्मसत,' अध्ययनके बदले 'अध्ये,' दर्शन चारित्रके बदले 'दर्शचात्र, शत्रुंजयके बदले 'श्रेतुर्जा,' 'व्याकर्ण,' हिंसाके बदले 'हंस्या' कहाँ तक लिखें ? उनके २३ प्रश्नोंमें अशुद्धरूपी कीडे इतने बिलबिलाते हैं, कि जिनका कुछ ठिकाना ही नहीं ।

अब इस वृत्तान्तको यहाँ ही समाप्त करता हूँ, और आगे उन लोगोंके पूछे हुए तेईस प्रश्न तथा उनके उत्तर प्रकाशित करता हूँ ।

तेरापंथियोंके तेईस प्रश्नोंके उत्तर.

परम पूज्य, प्रातःस्मरणीय, गुरु महाराज शास्त्रविशारद-जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज तथा उपाध्यायजी महाराज श्रीइन्द्रविजयजीके साथ, पाली-मारवाडमें तेरापंथी श्रावकोंकी मूर्तिपूजा वगैरह विषयोंमें, चार दिन तक जो चर्चा हुई उसका वृत्तान्त पाठक ऊपर पढ चुके हैं । अब उनके, उन तेईस प्रश्नोंके उत्तर प्रकाशित किये जाते हैं, जिन प्रश्नोंका एक लंबा चिट्ठा उन लोगोंने ता. २८-४-१४ वैशाख शुदि ३ के दिन, आचार्य महाराजको दिया था । जिस समय ये प्रश्न दिये थे, उसी समय सबके समक्ष यह बात निश्चय हुई थी कि-आचार्य महाराजकी तरफसे इन प्रश्नोंके उत्तर अखबारके द्वारा मिलेंगे । बस, निश्चय होनेके मुताबिक, आचार्य महाराजकी तरफसे, उन प्रश्नोंके उत्तर भावनगरके 'जैनशासन' नामक पत्रमें दिये गये थे । और अब इस पुस्तकमें शामिल किये जाते हैं ।

तेरापंथी श्रावकोंने तेईस प्रश्नोंके उत्तर उनके माने हुए बत्तीस सूत्रोंके मूल पाठसे मांगे हैं। परन्तु बत्तीस ही मानने पैंतालीस और निर्युक्ति-टीका इत्यादि न मानने, इसका क्या कारण है? इस विषय पर, यहाँ कुछ परामर्श करना समुचित समझते हैं।

बत्तीस सूत्र मानने वाले महानुभाव यदि यह कहें कि-हम इस लिये बत्तीस ही सूत्र मानते हैं कि-वे गणधर देवके बनाए हुए हैं। परन्तु यह उन लोगोंकी भूल है। गणधरोंने तो द्वादशांगीकी ही रचना की है। उसमें भी दृष्टिवाद तो विच्छेद होगया है। अब रहे ग्यारह अंग। उन ग्यारह अंगोको ही मानने चाहियें। किस आधारसे उपांगादि सूत्रोंको मानते हैं? यह दिखलाना चाहिये। यदि यह कहा जाय कि-नंदीसूत्रके आधारसे मानते हैं, तब तो फिर नंदीसूत्रमें कहे हुए सभी सूत्रों और निर्युक्ति वगैरहको मानने चाहियें। नंदीसूत्र देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणका बनाया हुआ है, उस नंदीसूत्रको जब मानते हैं, तब देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणके उद्धृत किये हुए सभी सूत्रोंको क्यों न मानने चाहिये?।

अच्छा! अब जो बत्तीस सूत्र, माननेका दावा करते हैं, उनको भी पूरी चालसे नहीं मानते हैं, अतएव इसके कुछ नमूने दिखला देने चाहियें।

नंदीसूत्र जो बत्तीस सूत्रोंमेंसे एक है, उसमें साफ २ लिखा है कि-'टीका, निर्युक्ति तथा और प्रकरणादिको मानना चाहिये, परन्तु मानते नहीं हैं। इसके सिवाय देखिये भगवती सूत्रके २५ वे शतकके तीसरे उद्देसेमें पृष्ट १६८२ में कहा है कि-

"सुतत्थे खलु पढमो बीओ निज्जुत्तिमीसओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो एस विही होइ अणुओगे ॥१॥"

अर्थात्–प्रथम सूत्रार्थ ही देना, दूसरे निर्युक्ति सहित देना, और तीसरे निरवशेष (संपूर्ण) देना। यह विधि अनुयोग अर्थात् अर्थ कथनकी है।

इस पाठसे सिद्ध होता है कि–निर्युक्ति को मानना, तिसपर भी क्यों नहीं मानते ?। तीसरे प्रकारकी व्याख्यामें भाष्य-चूर्णि और टीकाका भी समावेश होता है। परन्तु मानते नहीं है।

अनुयोग द्वार सूत्रमें दो प्रकारका अनुगम कहा है:—

"सुत्ताणुगमे निज्जुत्तिअणुगमे य। तथा–निज्जुत्ति-अणुगमे तिविहे पण्णत्ते उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे इत्यादि। तथा उद्देसे निद्देसे निगमे खित्त काल पूरिसे य"

इत्यादि दो गाथाएं हैं॥

अब हम पुछते हैं कि यदि पंचांगीको नहीं मानोगे तो उक्त पाठका अर्थ क्या करोगे ?।

अच्छा इसके सिवाय और देखिये:—

उतराध्ययन सूत्रके २८ वे अध्ययनकी २३ वीं गाथामें कहा है—

सो होई अभिगमरुई सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं।
इक्कारस अंगाई पइन्नगं दिट्ठिवाओ य ॥ १ ॥

कहनेका मतलब कि—अभिगमकीरुचि, केवल सूत्रोंसे ही नहीं होती, परन्तु प्रकरणोंसे लेकरके यावत् दृष्टिवाद पर्यन्तके जो सूत्र हैं, उनके पढनेसे होती है।

इससे भी सिद्ध होता है कि सूत्रके सिवाय और भी शास्त्र मानने चाहियें। ऐसे ऐसे पाठ होने पर भी वे लोग उन पाठोंके मुताबिन नहीं चलते हैं। अब कहाँ रहा बत्तीस सूत्रोंको मानना? बत्तीस सूत्रोंके कथनानुसार भी चलते हों तो उन लोगोंको निर्युक्ति वगैरह अवश्य मानने ही चाहिएं।

अच्छा, अब यदि वे, सूत्रों के अर्थ, मूल अक्षरोंसे ही निकालते हों, तो वह उनकी बडी भारी भूल है। सूत्रोंके अर्थ, प्राचीन ऋषि लोगोंकी परंपरासे जो चले आये हैं वैसे, तथा अर्थ करनेकी जो रीति है उसीसे करने चाहिये। यह बात हम ही नहीं कहते हैं, परन्तु खास सूत्रकार फरमाते हैं। देखिये अनुयोग द्वारके ५१८ वे पृष्ठमें लिखा है:—

" आगमे तिविहे पन्नत्ते, सुत्तागमे १, अत्थागमे २, तदुभयागमे ३ "

अर्थात् सूत्रके अक्षर यह सूत्रागम प्रथम भेद हुआ। अर्थ रूप आगम, जिसमें टीका-निर्युक्ति वगैरह है, यह दूसरा भेद हुआ। और तीसरे भेदमें सूत्र तथा अर्थ दोनों आये।

इससे भी सूत्रोंके वास्तविक अर्थ प्राप्त करनेके लिये टिका-निर्युक्ति वगैरहकी सहायता अवश्य लेनी पडेगी।

अब यदि कोई यह घमंड रक्खे की—हम मूल सूत्रके अक्षरोंसे उनके यथार्थ अर्थोंको प्राप्त कर सकते हैं, तो वह

बडी भारी भूल है। कई पाठ ऐसे होते हैं, जिनके अर्थोंके लिये परंपरासे प्राप्त अर्थोंपर अवश्य दृष्टि दौडानी ही पडती है। सूत्रोंके थोडे अक्षरोंमें बहुत अर्थ निकलते हैं। अनुयोग द्वारके १२३ पृष्ठमें 'डोडिणी-गणिया-अमच्चाईणं' ऐसा पाठ है। इन नव अक्षरोंमेंसे, कोई भी पंडित यथार्थ भावार्थ नहीं बतला सकता। डोडिणी कौनथी ? गणिका कौनथी ? मंत्री कौनथा ? क्या उनका संबन्ध था ? किस तरह हुआ था ?। ये बातें, मूल सूत्रके ९ अक्षरोंसे कभी नहीं निकल सकतीं। ऐसे २ अनेकों पाठ हैं, जिनके अर्थोंके लिये पूर्वाचार्योंकी बनाई हुई टीकाओं और निर्युक्तियों पर ध्यान देना ही पडेगा।

इन बातोंसे सिद्ध होता है कि-जिन्होंने बत्तीस सूत्र (मूल) के ऊपरही अपना आधार रख छोडा है, वे यथार्थमें भूले हुए हैं। यादि वे बत्तीस सूत्रोंके अनुसारभी चलना स्वीकार करते हों तो उनको सूत्रकी आज्ञानुसार, और सूत्र तथा टीका-निर्युक्ति वगैरह अवश्य मानने चाहियें

आश्चर्यकी बात है कि—बत्तीस सूत्र मानने वाले महानुभाव एकही कर्ताके एक वचनको मानते हैं, और दूसरे वचनको उत्थापते हैं। जैसे श्रीभद्रबाहुस्वामिकृत दशाश्रुतस्कंधको मानते हैं, और उन्हीं भद्रबाहुस्वामिकृत दश निर्युक्तियोंको नहीं मानते हैं। कैसा अन्याय ?।

अब इस परामर्शको यहाँही समाप्त करके उन महानुभावोंके पूछे हुए तेईस प्रश्नोंके जवाब देना आरंभ करते हैं। उनके प्रश्न जैसेके तैसे यहाँपर उद्धृत किये जायेंगे, जिससे पाठक देख लें कि-जिनको भाषा लिखनेकी भी तमीज नहीं है, जिनको

प्रश्न कैसे पूछे जाते हैं ? यहभी मालूम नहीं हैं और जिनका एक एक शब्द प्रायः भूलसे खाली नहीं है, वे क्या समझ करके मूल सूत्रोंसे प्रश्नके उत्तर मांगते होंगे ? ।

प्रश्न १—श्री जीनप्रतीमाकी द्रव्य पूजा करनेमे धर्म ओर श्री जिनेस्वरदेवकि-आग्या पुरूपते हें सो जीनेस्वरदेवने बतीस सात्रांमे कीस जगे अग्या फरमाइ हें और धर्मका हे।

उत्तर-रायपसेणी सूत्रके पृष्ठ ३० में, सूर्याभदेवने, आभियोगिक देवोंको आमलकप्पा नगरीमें, जहाँ वीरप्रभु विचरतेथे, वहां एक योजन जमीन साफ करनेको कहा है। वहां देव, परमात्मा महावीर देवके पास जा करके इस तरह कहते हैं,

"जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुतो आयाहिणं पयाहिणं करेंति २ त्ता वंदइ नमंसइ नमंसित्ता एवं वयासी अम्हेणं भंते सूरियाभस्स देवस्स आभियोगिया देवा दिवाणुप्पियं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो समाणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो देवाइ समणे भगवं महावीरे ते देवे एवं वयासी पोराणमेयं देवा ! जायमेयं देवा ! किच्चमेयं देवा ! करणिज्जमेयं देवा ! आचिण्णमेयं देवा ! अब्भणुण्णायमेयं दवा ! ।"

अर्थात्-जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आ करके भगवानको तीन प्रदक्षिणा दे करके ऐसे बोलेः-हे भगवन् !

हम सूर्याभदेवके आभियोगिक (नोकर), आप देवानुप्रियको बंदणा करते हैं। नमस्कार करते हैं। सत्कार करते हैं। सन्मान करते हैं। कल्याण मंगलके निमित्त देव प्रतिमाकी तरह पर्युपासना करते हैं। (देवोंके ऐसे कहनेके बाद) 'हे देवो !' ऐसा आमंत्रण करके श्रमणभगवान् महावीर उन देवोंके प्रति इस तरह बोले:—'हे देवो ! यह प्राचीन है, यह आचार है, यह कृत्य है, यह करणीय है, यह पूर्व देवोंने आचरण किया हुआ है। इस तरह समस्त तीर्थंकरोंने आज्ञा की है, और मेरी भी आज्ञा है।

उपर्युक्त लिखे हुए पाठमें, भगवानने, देव प्रतिमाकी तरह पूजा करनेमें 'तुम्हारा कृत्य' 'तुम्हारा आचार' वगैरह कह करके आज्ञा तथा धर्म दिखलाया, तो 'प्रतिमा पूजा' में आज्ञा और धर्म स्वतः सिद्ध हुआ। क्योंकि 'प्रतिमाकी तरह' ऐसा कह करके प्रतिमाका तो खास दृष्टान्त ही दिया है।

इसके सिवाय देखिये। महाकल्पसूत्र, जिसका नाम नंदीसूत्रके ४०९ वे पृष्ठमें "उक्कालिअं अणेगाविहं पन्नत्तं तंजहा-दसवेकालिअं कप्पियाकाप्पियं चुल्लकप्पसुयं महाकप्पसुयं उववाइयं रायपसेणियं........" इत्यादि पाठमें है, उसमें इस तरहका पाठ है—

तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव तुंगिआए नयरीए बहवे समणोवासगा परिवसंति संखे सयए सिलप्पवाले रिसिदत्ते दमगे पुक्खली निबद्धे सुप्पइट्ठे भाणुदत्ते सोमिले नरवम्मे आणंदे कामदेवाइणो

अज्जे अन्नत्थ गामे परिवसंति अड्ढा दित्ता विस्थिण्ण-विपुलवाहणा जाव लद्धठ्ठा गहिअट्ठा चाउदसट्ठमु-द्दिठ्ठपुण्णिमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं पालेमाणा निग्गंथाणं निग्गंथीणं फासुएसणिज्जेणं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभेमाणा चेइआलएसु तिसं-झासमए चंदणपुप्फधूववत्थाईहिं अच्चणं कुणमाणा जाव जिणहरे विहरंति। से तेणठ्ठेणं गोयमा! जो जिणपडिमं पूएइ सो नरो सम्मदिट्ठी जाणिअव्वो जो जिणपडिमं न पूएइ सो नरो मिच्छदिठ्ठी जाणि-अव्वो मिच्छदिठ्ठिस्स नाणं न हवइ चरणं न हवइ मुक्खं न हवइ सम्मादिठ्ठिस्स नाणं चरणं मुक्खं च हवइ। से तेणठ्ठेणं गोयमा! सम्मदिठ्ठिस्स सड्ढे जिण-पडिमाणं सुगंधपुप्फचंदणविलेवणेहिं पूआ कायव्वा"

अर्थात्-उस कालमें, उस समयमें तुंगिया नगरीमें बहुत श्रमणोपासक-श्रावक रहते थे। शंख, शतक, शिलप्रवाल, ऋषि-दत्त, दमक, पुष्कली, निबिद्ध, सुप्रतिष्ठ, भानुदत्त, सोमिल, नरवर्मा, आनंद, कामदेवादि आर्य, अन्यत्र-दूसरे गाममें रहते हैं। जो आढ्य, दीप्त, विस्तीर्ण, विपुलवाहनवाले (यावत्) लब्धार्थ, गृहीतार्थ, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या तथा पूर्णिमा इन तिथियोंमे प्रतिपूर्ण पौषधको पालते, साधु तथा साध्वि-योंको प्रासुक एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिम आहा-रको प्रतिलाभते और चैत्यालयोंमें तीनों संध्याओंमें चंदन-

पुष्प धूप तथा वस्त्रादिसे अर्चन करते (यावत्) जिनमंदिरमें विहरते हैं। हे भगवन्! वे श्रावक, किस हेतुसे पूजा करते हैं?। गौतम! जो जिन प्रतिमाको पूजता है–उस मनुष्यको सम्यग्दृष्टि जानना। और जो मनुष्य जिनप्रतिमाको नहीं पूजता है, उसको मिथ्यादृष्टि जानना। मिथ्यादृष्टिको ज्ञान–चारित्र–मोक्ष नहीं है। और सम्यग्दृष्टिको ज्ञान–चारित्र–मोक्ष है। अत एव हे गौतम! सम्यग्दृष्टि सुगंध, पुष्प, चन्दन, और विलेपनसे जिन प्रतिमाकी पूजा करते हैं।"

इत्यादि पाठोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि–भगवानने द्रव्य पूजा करनेमें धर्म कहा है, तथा आज्ञा फरमाई है। तिस परभी आग्रहको न छोडो, तो तुम्हारे भाग्यकी बात है। प्रतिमाकी पूजा करनेवालेको समकितदृष्टि, और अन्यको मिथ्यादृष्टि दिखलाया, तो फिर इससे अधिक क्या चाहिये? रायपसेणी, जीवाभिगम, ज्ञाता इत्यादिमें प्रत्यक्षपाठ विद्यमान हैं, तिसपरभी धर्म तथा आज्ञाका प्रश्न पूछने वाले–आप लोग अभी कैसे अँधेरेमें फिरते हो, इसका स्वयं विचार करो।

"प्रश्न–२ श्रीजिनेसर देवने बतीस सात्रमे कीसी जगा जैनमंदीर करानेमे ओर संग कढानेमै अग्या नही फरमाई है न धर्म फरमाय है तो फेर आप ईण दोनां कांमांमे धर्म ओर अग्या कीसी सासत्रके रूसे परूपते हो सो बतीस सात्रोमें इनका अधिकार बतलावें।"

उत्तर–हम पूछते हैं कि–जिनेश्वरदेवने जिनमंदिर बनवाने और संघ निकालनेको आज्ञा और धर्म नहीं फरमाये, ऐसा ज्ञान आपको कहांसे हुआ?। क्या सूत्रोंमें ऐसा निषेध आप

लोगोंने किसी जगह पाया है ? यदि पाया था, तो वह पाठ स्पष्ट लिखना चाहिये था ? । सूत्रोंमें जगह २ मिथ्यात्वके कारण दिखलाए हैं, लेकिन उनमें, जैनमंदिर और संघनिकालनेके नाम नहीं आए हैं। यदि ये, मिथ्यात्वके कारण और जिनाज्ञा बाहर हैं, और ऐसा कोई लेख अगर आप लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ भी था, तो दिखलाना चाहिये था। और यदि नहीं हुआ है तो समझलो कि-जैनमंदिर कराने और संघ निकालनेमें प्रभुकी आज्ञा है। और जहां आज्ञा है, वहां धर्म है। इतना कहनेसे अगर आप लोगोंको संतोष न होता हो तो लीजिये और प्रमाण।

नंदिसूत्र बत्तीस सूत्रोंमें है। उसी नंदिसूत्रमें महानिशीथ सूत्रका नाम आता है। उसी महानिशीथसूत्रमें लिखा है कि— 'जिनमंदिर करानेवाले बारहवें स्वर्गमें जाते हैं'। अब विचारनेकी बात है कि—जो समकितवंत जीव हैं, वे वैमानिकका आयुष बांधते हैं। इस लिये जिनमंदिर करानेवाले खास करके सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा सिद्ध होता है। और समकितवंत जीवोंके लिये आज्ञा और धर्म होनेसे हम लोग इस बातका उपदेश देते हैं।

अब रही संघनिकालनेके विषयकी बात। इसके विषयमें समझना चाहिये कि—परमात्मा महावीर देवके समय श्रेणिक-कोणिक वगैरह कई राजे, रथ (जिन रथोंको कई जगह 'धर्म-रथ' की उपमा दी है) घोडे, हाथी, पैदल वगैरह चतुरंगी सेनाके साथ बडे आडंबरसे भगवान्को वंदणा करनेको जाते थे। इसके सिवाय ज्ञाताधर्मकथा तथा अंतगडदशांगमें शत्रुंजय

पर्वतका नाम जगह २ आता है । उस तीर्थपर हजारों मुनिराज सिद्ध० बुद्ध० मुक्त हुए । उस पर्वतके दर्शन करनेके लिये, भरत महाराजादि कई राजाओंने तथा सेठसाहुकारोंने संघ निकाले हैं, अतएव उनके नामोंपर ' संघपति ' ऐसे उपनाम लगे हैं । इससे सिद्ध होता है कि–संघ निकालनेकी परंपरा सूत्रोंके अनुसार ही है ।

" प्रश्न ३ आणदकांमदेव आददे १० श्रावक हुवे है वे महा ऋद्धिवांन बारे व्रतधारी हुवे उणांने जैन मंदिर वो संगकीउन कडायें अर कडायें वो करायें हुवे तो पाठ बतलावे ।"

उत्तर–परमात्मा महावीर देवके समयमें श्रावकोंके मकानोंमें मंदिर थे और भगवान्की पूजा भी करते थे । उववाई सूत्रमें चंपानगरीका वर्णन आया है, वहाँ पर ' अरिहंतचेइयाइं बहुलाइं ' इत्यादि पाठोंसे, उस समयमें अरिहंतोंके अनेक मंदिर थे, ऐसा सिद्ध होता है । दूसरी यह बात है कि–आणंदादि श्रावकोंने अपने जीवनमें जो २ कार्य किये हैं, उन सभीका उल्लेख सूत्रोंमें नहीं आया है । इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि उन्होंने मंदिर नहीं बनवाये थे, या संघ नहीं निकाले थे । आणंदादि श्रावकोंने प्रतिमाको प्रमाण की है, इस बातका पुरावा यह है कि व्रत उच्चारणके समय सम्यक्त्वका आलावा आया है । जिसमें समकितकी शुद्धिके लिये अन्यदर्शनीय, अन्यदर्शनके देव तथा अन्यमतियोंने स्वीकार की हुई जिनप्रतिमाको वांदु नहीं–पूजा न करुं, इत्यादि पाठ मिलते हैं । और इससे जिनप्रतिमा तथा जिनमंदिर थे, यह भी सिद्ध होता है । तथा जहाँ प्राणातिपात विरमण, वगैरह बारहव्रत लिये हैं, वहाँ अनेक

प्रकारके नियम किये हैं । उन नियमोंमें यदि जिनमंदिर करानेमें पाप होता तो यह भी नियम कर देते कि-जिनमंदिर करवाऊं नही । लेकिन ऐसे नियमके नहीं करनेसे निश्चित होता है कि-वे जिनमंदिर बनवानेमें आरंभ नहीं समझते थे। उन श्रावकोंने भी जिनमंदिर बनवाए हैं, इसका पुरावा नंदीसूत्रके ४६५ वें पृष्ठमें यह हैः—" उवासगदसासु णं समणोवासगाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ....."इत्यादि । इसका मतलब यह है कि-उपासकदशांगसूत्रमें आणंदादि श्रावकोंके नगर, उद्यान, चैत्य (जिनमंदिर) वनखंड, समवसरण, राजे, मात-पिता, धर्मगुरु तथा धर्मकथा इत्यादि अनेक चीजोंका वर्णन है। ऐसे नंदीसूत्र तथा समवायांगमें भी कहा है। इससेही सिद्ध होता है कि आणंदादि श्रावकोंके वहाँ मंदिर थे। और अगर उन्होंने नहीं बनवाए थे तो ' उनके मंदिर ' ऐसे क्योंकर कहते ? ।

यहाँ पर ' चैत्य ' शब्दका ' ज्ञान ' ' साधु ' या 'बगीचा' अर्थ नहीं हो सकता । क्योंकि-इन्हीं अर्थोंको कहनेवाले ' धर्मकथा' 'धर्मगुरु' तथा ' उद्यान ' शब्द लिये हुए हैं ।

अब संघकी बात यह है कि-उस समयमें भी गिरिराजश्री शत्रुंजयादि तीर्थ विद्यमान ही थे, तो उस समयके श्रावक अवश्य संघ निकालते थे । संघ निकालनेकी परिपाटी नयी और शास्त्रविरुद्ध नही है, यह बात दूसरे प्रश्नमें अच्छी तरह दिखला दी है । हमारी समझमें प्रश्न पूछनेवाले तेरापंथी महानुभाव संघका मतलब ही नहीं समझे हैं । हम पूछते हैं कि-

आप लोग पाट उत्सव करते हैं, हजारों आदमी इकट्ठे हो करके आनंद मनाते हो। हजारों श्रावक-श्राविका मिलकरके तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेके निमित्त चातुर्मासमें जाते हो, वहाँ आपस आपसमें खानपानसे भक्ति करते हो। बतलाओ, इसका नाम संघ है कि नहीं ?। क्या तुम्हारे माने हुए संघके ऊपर शृंग होते हैं ?। बडे आश्चर्यकी बात है कि-खुद संघ निकालते रहते हो, और दूसरोंको निषेध करते हो। हमें इस बातका जवाब दीजिये कि-किस सूत्रके कौनसे पाठके आधारसे आप लोग उपर्युक्त प्रवृत्ति कर रहे हो ?। हमें बडी भावदया आती है कि-सच्चे तीर्थके वैरी हो करके, आप लोग दूसरे रास्ते चले जा रहे हो।

" प्रश्न-४ पाश्यांण घो रत्नांरी जिन प्रतामारी अवलतो गत जात ईद्री कीसी दोयम जिन प्रतमामें जिवरो भेद गुणसठांणो और डंडककीसो पावे तीसरी प्रज्याये प्रांण सरीर जोग उप्पीगो कर्म आतमा और लेस्या कीतनी ओर कोंनसी कोंनसी पावेः चोथा जिनप्रतिमा शनि या अशनि तस्य या थावर सो ईन कुल वातां का उत्तर फरमावेः।

उत्तर-प्रतिमामें गति, जाति, इन्द्रिय, जीवका भेद, गुणस्थानक, दंडक, पर्याय, प्राण, शरीर, जोग, उपयोग, कर्म, आत्मा, लेश्या, सञ्ज्ञी या असञ्ज्ञी, त्रस अथवा स्थावर ये बातें पूछनेवाले तेरापंथी महानुभावोंको समझना चाहिये कि नामनिक्षेपमें पूर्वोक्त वस्तुएं जितनी पाई जाँय, उतनी ही जिनप्रतिमामें पाई जाती हैं। जैसे नामको मान्य रखते हो, वैसे ही स्थापनाको भी अवश्य माननाही पडेगा। क्योंकि स्थापना जड है। तो

क्या नाम जड नहीं है ? नामभी जड है । नामको मानकरके भी स्थापनाको नहीं मानना, इस जैसी अज्ञानता दूसरी क्या हो सकती है ? लेकिन ठीक है, जिनके अन्तःकरणोंमें मिथ्यात्वरूप पिशाचने प्रवेश किया है, वे तत्त्वको कैसे देख सकते हैं ?। देखिये, जैसे नाम और नामवालेका संबंध है वैसे स्थापना और स्थापनावालेका भी संबन्ध है। अतः नाम माननेवालोंको स्थापनाको भी मान देनाही चाहिये । अकेले नामसे कभी कार्य नहीं हो सकता। जैसे किसी शहेरमें किसीका लडका गुम हो गया और उस लडकेके पिताने पोलीसमें यह सूचनादी कि–मेरा केसरीमल्ल नामका लडका गुम हो गया । इतनेही मात्रसे पुलीसकी यह ताकत नहीं है कि–सिर्फ नामसेही उसकी तलाश करके उसके पिताको दे दे। चाहे पुलीस भलेही केसरीमल्ल नामके हजारों लडकोंको इकठे करे, परन्तु जब तक जो केसरीमल्ल गुम हो गया है, उसकी आकृति वगैरहका ज्ञान पुलीसको नहीं होगा, वहां तक उसका सारा परिश्रम व्यर्थही होगा। वैसे सिवाय प्रतिमा माननेके केवल नामसे काम चलता नहीं है। 'महावीर' इस नामका कई जगह प्रयोग होता है। 'महावीर' हनुमानका नाम है, 'महावीर' सुभटका नाम है । 'महावीर' किसी व्यक्तिका नाम है । और 'महावीर' परमात्मा 'वीर' का भी नाम है । अब 'महावीर' 'महावीर' 'महावीर' ऐसा जाप करनेसे कोई यह पूछे कि–कौनसे महावीरका जाप करते हो? तब यह कहना ही पडेगा कि–ज्ञातपुत्र, त्रिशलानन्दन, क्षत्रियकुंड ग्राममें जन्म लेने वाले, तथा सात हाथका जिनका शरीर था, ऐसे महावीर देवका जाप करते हैं। जब महावीर देवकी प्रतिमा हमारे

दृष्टिगोचर होगी, तब हमें विशेष स्पष्टिकरण करनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। एक दूसरी बात लीजिए। प्रश्न पूछनेवाले महानुभावोंसे हम यह पूछते हैं कि—तुम्हारा कोई साधु, पघडी तथा धोती पहन करके पाटपर बैठ जाय, तो उसको आप साधु कहेंगे या नहीं? क्योंकि प्रतिमा अर्थात् मूर्तिपर जिसका ख्याल नहीं है, उसके लिये तो पघडी पहना हुआ हो, या खुले सिर हो, दोनों एक समान हैं। नाममें तो फर्क हुआ ही नहीं है। परन्तु नहीं, यही कहना पडेगा कि–वह साधु नहीं है। क्योंकि उसमें साधुका वेष नहीं है–साधुकी आकृति नहीं है–साधुकी मूर्ति नहीं है। कहिये, मूर्तिमानना सिद्ध हुआ कि नहीं?। सज्जनो! निर्विवाद सिद्ध 'स्थापना निक्षेप' का निषेध करके क्यों भवभ्रमण करते हो? । प्रतिमाको उपचरित नयसे साक्षात् जिनवर मान करके कई भक्तजनोंने सेवा–पूजा की है। वह बात चौदवें प्रश्नके उत्तरमें विशेष रूपसे लिखि जायगी। अतएव यहांपर लिखना उचित नहीं समझते।

महानुभाव! प्रतिमापर द्वेष होनेसे उलटे प्रश्न करते हो परन्तु वेही प्रश्न जिनवाणी परभी घट सकते हैं। प्रभुजीकी वाणीमें जो पेंतीस गुण थे, वे पेंतीस गुण स्याहीसे कागजपर लिखी हुइ वाणीमें नहीं हैं। तथापि स्थापना रूप वाणीको जिनवाणी मान रहे हो तथा अपने बंधुओंको 'चलो जिनवाणी सुननेको' ऐसा कहकर लेजाते हो। भला, कागज और स्याही जिसमें शेष रही हुई है, उसको जिनवाणी माननेमें तुम्हें जरासाभी संकोच नहीं होता है, और जिनप्रतिमाको जिनवर माननेमें पेटमें दर्द होता है, यह कितनी आश्चर्य की बात है?

"प्रश्न-५ श्री केवलग्यानी जिनेसर देवमें जीवरो भेद गुणठांणा ओर डंडक कीसो पावै और जिनेस्वर देवकी गती जात काया कीसी और जिनेस्वर देवमैः प्रजा प्रांण जोग उप्पीयोग लेश्या आत्मा कीतनी कितनी कोनसी कोनसी पावैंः और जिनेस्वर देव शनि हैं या अशनि है सो उनका उत्र बत्तीस सासत्रसे दिरावै"

उत्तर—केवलज्ञानी जिनेश्वरमें गर्भज पंचेन्द्रियका एक भेद है। केवलज्ञानी तीसरे शुक्ल ध्यानमें रहें, वहाँतक उनको तेरहवाँ गुणस्थानक होता है। और जब चतुर्थ शुक्ल ध्यानके पायेमें वर्तते हुए शैलेशी अवस्थामें रहें, उस समय चौदहवाँ गुणस्थानक होता है। १४ वे गुणस्थानकमें पांच अक्षरोंका उच्चारण करें, उतनेही समय रह करके अन्तिम समयमें समस्त कर्मोंका क्षय करके सिद्ध गतिमें जाते हैं। केवलज्ञानी मनुष्य दंडकमें लाभे। गति निर्वाणकी। जाती पंचेन्द्रियकी। काय त्रसकाय। पर्याय मनुष्यत्वका। प्राण दस होते हैं, पांच इन्द्रिय, तीनबल, श्वासोश्वास तथा आयुष्य। योग सात १ सत्यमनोयोग, २ असत्यामृषामनो योग, ३ उसी तरह दो वचनके, ४ कार्मणकाययोग (समुद्घातके समय), ५ औदारिककाययोग, ६ औदारिक मिश्रकाययोग (समुद्घातके समय), ७ केवलज्ञान तथा केवलदर्शन स्वरूप दो उपयोग होते हैं। तेरहवाँ गुणठाणा हो वहाँतक शुक्ललेश्या होती है, चौदहवें गुणस्थानकमें लेश्या नहीं होती। यद्यपि आत्मातो सच्चिदानंदमय है, परन्तु यदि आत्माकी आठ प्रकारसे विवक्षा कीजाय, तो 'कषाय आत्मा' को छोडकरके योगात्मा, उपयोगात्मा, ज्ञानात्मा, दर्शनात्मा, चारित्रात्मा, वीर्यात्मा तथा द्रव्यात्मा ये सात आत्मा हैं। अब

केवलज्ञानी न संज्ञी हैं, न असंज्ञी हैं। क्योंकि-मनइन्द्रियजन्य चेष्टाको संज्ञा कहते हैं। संज्ञा जिसको होती है, वह संज्ञी कहा जाता है। केवली भगवान्को द्रव्यमन है, परन्तु मनइन्द्रियसे कार्य लेते नहीं हैं। अर्थात् उससे भूत-भविष्य-वर्तमानका विचार करते नहीं है। अपने केवलज्ञानसे ही साक्षात् करते हैं। पन्नवणाजीके ३१ वें पदमें केवलीसंज्ञी नहीं तथा असंज्ञी नहीं, ऐसा दिखलाया है।

प्रश्न ६-पंचमाहाव्रतधारी छंदमसत मुनीमैं जीवरो भेद गुणठाणों डंडक कीसो कीसो पावै इणांरी गत जात इद्र काया कीसी ओर प्रजा प्रांण, शरीर जोग उप्पीयोग आतमा लेश्या कीतनी २ कोंन २ सी पावैः।

उत्तर-छद्मस्थ मुनिको, जीवके भेदोंमेंसे गर्भजपंचेन्द्रिय मनुष्यके भेदमें गिना है। गुणस्थानक छट्ठेसे बारहवें तक होते हैं। दंडक मनुष्यदंडक। गति देवलोककी होती है, क्योंकि-पंचमहाव्रत धारी छद्मस्थ मुनिको सम्यक्त्व अवश्य होता है। और सम्यक्त्ववाला जीव वैमानिकके सिवाय दूसरा आयुष्य नहीं बांधता है। कदाचित् पहिले किसी गतिका आयुष्य बांधा हो, और पीछेसे मुनिपणा अंगीकार किया हो, तो छद्मस्थ मुनि, पहिले आयुष्य बांधा हो, उस गतिमें जाता है, यदि पहिले आयुष्य न बांधा हो तो अवश्य देवलोकमें जाता है। जाति पंचेन्द्रियकी। इन्द्रियोंमें पंचेन्द्रिय। काय त्रसकाय। पर्याय मनुष्यत्व। प्राण दस होते हैं, शरीर मुख्य औदारिक होता है, पीछेसे लब्धिसे वैक्रिय तथा आहारक कर सकते हैं। भव आश्रयी वैक्रियशरीर वालेको मुनिपणा नहीं होता है।

छद्मस्थ मुनिको योग तेरह होते हैं, कार्मण तथा औदारिकमिश्र ये दो योग नहीं होते हैं। इसका विवेचन इस तरह है:—

छट्ठे गुणठाणे वाले मुनिको आहारक तथा वैक्रियलब्धिएं यदि हुई हों तो प्रमत्तगुणठाणेमें ४ मनके, ४ वचनके, १ औदारिक, १ वैक्रिय, १ वैक्रियमिश्र, १ आहारक तथा आहारकमिश्र ये तेरह होते हैं। और अप्रमत्तमें आहारकमिश्र तथा वैक्रियमिश्र दोनोंके न होनेसे ग्यारही होते हैं। अपूर्वादिक पांचों-गुणठाणोंमें ४ मनके, ४ वचनके तथा १ औदारिक काययोग। यहाँपर अति विशुद्ध चारित्र होनेसे लब्धि हेतुक चार योग नहीं होते हैं। अत एव ९ योग होते हैं। अब यदि छट्ठे गुण-स्थानकवाले मुनिको आहारकलब्धि न हो तो ११ योग। वैक्रिय भी न हो तो ९ योग। वैक्रिय न होवे और आहारक होवे तो भी ११ योग होते हैं। सातवेंमें मिश्र कम करना। उपयोग सात होते हैं:-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षु-दर्शन, ये चार तो नियमेन होते हैं। यदि अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ हो तो छे होते हैं। और यदि अवधिज्ञान न हुआ हो और मनःपर्यव ज्ञान हुआ हो तो पांच होते हैं तथा दोनों हुए हों तो सात उपयोग होते हैं। छद्मस्थ मुनिको छट्ठे गुण-स्थानकसे दशवें गुणस्थानक तक आठों आत्मा होते हैं, ग्यार-हवे तथा बारहवे गुणस्थानकवालेको कषायआत्मा नहीं होनेसे सात आत्मा माने जाते हैं। अब रही लेश्या। छट्ठे गुणस्थानक वाले छद्मस्थ मुनिको तेजो, पद्म तथा शुक्ल ये तीन भावलेश्या होती हैं। द्रव्यसे छ लेश्या होती हैं। यद्यपि चतुर्थकर्मग्रन्थकी ५२ वीं गाथामें छे गुणस्थानकोंमें छ लेश्या लिखी हैं। छट्ठे-गुणस्थानकवालोंके, दीक्षा लेनेके बाद छे लेश्याओंमेंसे कोई

भी लेश्याएं होवें तो वे आदिकी तीन ही समझनी, परन्तु भावतो ऊपरकी तीनही समझनी । सातवें गुणस्थानकमें तेजो, पद्म तथा शुक्लही होती हैं। कारण यह है कि–आर्त–रौद्रध्यान नहीं होनेसे अति विशुद्धता होती है । आठवें गुणस्थानकसे बारहवें गुणस्थानक पर्यन्त छद्मस्थ मुनिको एकही शुक्ल लेश्या होती है ।

प्रश्न–७ ज्ञातासूत्रमें पांचमा अध्येमें ज्ञानदर्श चारित्ररूपी जात्रा कही और आप श्रेतुजा वगेरकी जतरा परूपते हो सो कीस सत्राकीरूसे ।

उत्तर––ज्ञातासूत्रके पांचवें अध्ययनमें पृष्ठ ५७९ में ज्ञान–दर्शन–चारित्र–तप संयमादि रूपी यात्रा कही है । सो ठीक है । उस बातको हम लोग भी मान्य करते हैं । परन्तु इससे शत्रुंजय वगैरहकी यात्राका निषेध नहीं होता है । देखिये, उसी अध्ययनके ५९२ वे पृष्ठमें थावच्चा अणगार, एक हजार साधुके साथ पुंडरीक पर्वत पर गये हैं। धीरे धीरे उस पर्वत पर चढे । इत्यादि पाठ है । वह पाठ यह है:––

"तएणं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं संपुरिवुडे जेणेव पुंडरीए पव्वये तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता पुंडरीअं पव्वयं सणिअं सणिअं दुरुहंति "

अर्थात्–तब हजार अनगारोंसे परिवृत हुए थावच्चापुत्र, जहाँ पुंडरीक पर्वत है, वहाँ आते हैं । आ करके उस पुँडरीक पर्वत पर धीरे धीरे चढते हैं ।

अब यह विचारनेकी बात है कि-यदि वह तीर्थका स्थान न होता तो दूसरे अनेकस्थानोंको छोड करके थावच्चापुत्र क्यों वहाँ जाते ?। महानुभाव ! थावच्चा अणगार जैसे पवित्र, महात्मा, तद्भवमुक्तिगामी पुरुष, जो कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र वगैरहरूपी यात्राको मानते हैं, उन्होंने भी पुंडरीक पर्वत पर जा करके मुक्तिका लाभ लिया। अन्यत्र नहीं। शत्रुंजयका ही पुंडरीक पर्वत नाम है। वह नाम, ऋषभदेव स्वामीके पुंडरीक गणधर पांच क्रोड मुनिके साथ चैत्रीपूर्णिमाके दिन मोक्ष गये, तबसे पडा है। यह बात गुरुकुलमें रहनेवाले लोगही जान सकते हैं। परन्तु तुम्हारे जैसे स्वयंभू लोग कैसे जान सकते हैं ?। उपमान-उपमेयके नियमसे भी ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपी यात्रासे अन्य यात्रा सिद्ध होती है।

प्रश्न--८ उत्राधेनरा बारमा अध्येनमें ब्रह्मचरियैरूपी तीरथ बनायो और आा श्रेतुर्जा आदी तीर्थ परूपते हो, सो कीस शास्त्रकी रूसे सो बत्रीस श्रुत्रमें पाठ बतलावो--

उत्तर--उत्तराध्ययन सूत्रके पृष्ठ ३७७ में १२ वें अध्यनकी ४६ वीं गाथामें तुम्हारे कहनेके मुताबिक बात है। परन्तु वहाँ हरिकेशीजीने, ब्राह्मणोंको हिंसा जन्य--कुरुक्षेत्रादि तीर्थोंसे विमुख करनेके लिये उपदेश दिया है। वहाँ उपमा दिखलाते हुए कहा है:-विनय है मूल जिसका, ऐसा जो धर्म, उस रूपी ह्रद, और ब्रह्मचर्यरूपी निर्मल तीर्थ, उसमें स्नान करनेसे शुद्धि होती है।

इत्यादि उपदेशसे गंगा-गोदावरी वगैरह तीर्थोंका निषेध किया है। परन्तु शत्रुंजय, गिरनार इत्यादि पवित्र तीर्थोंका

निषेध नहीं किया है। ब्रह्मचर्य रूपी जब तीर्थ कहा, तब यहाँ पर उपमान-उपमेय भाव संबन्ध घटाया है। ब्रह्मचर्यको तीर्थतुल्य कहा, तब दूसरा कोई तीर्थ अवश्य होना चाहिये, यह बात अर्थात् सिद्ध होती है। और वह तीर्थ शत्रुंजयादि हैं ऐसा हमने सातवें प्रश्नमें दिखला दिया है। उसी तरह अंतगडदशांगसूत्रके पृष्ठ ९ में भी पाठ इस तरहका है:-

"एवं जहा अणीयसे कुमारे, एवं सेसावि अणंतसेणे, अजितसेणे, अणिहिअरिउ, देवसेणे, सत्तुसेणे छ अज्झयणा, एगगमो बत्तीस उदातो, वीसं वासा परियाउ, चोद्दसपुव्वाइं सेत्तुंजेसिद्धा"

अर्थात्—जैसे अणीयस कुमारके लिये ऊपर कहा है, वैसे ही दूसरे भी अनंतसेन, अजितसेन, अजीहितरिपु, देवसेन, शत्रुसेन इन मुनियोंके लिये भी जानना, अर्थात् अणीयस वगैरह छे मुनि शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध हुए।

ऐसे २ पाठोंके आधारसे हम शत्रुंजय तीर्थकी परूपणा करते हैं। ऐसे एक-दो पाठ नहीं, सूत्रोंमें शत्रुंजय संबन्धि अनेकों पाठ मिलते हैं। जिस तीर्थपर अनन्त मुनि मुक्ति गये हैं तथा जिसके विषयमें सूत्रोंमें स्पष्ट पाठ मिलते हैं, उस तीर्थके लिये भी आप लोग परूपणा न करें तो आपके शिरपर 'उत्सूत्रभाषी पनेका दोष लगेगा, इस बातको विचारो।

प्रश्न—९ प्रश्नव्याकरणरा आश्रवदुवार पेलामे देवल प्रतीमा वास्ते पृथ्वीकाय हणे जीणने मंदबुध्या कह्यो तो फीर आप देवल वगेरे कराणेमे धर्म कीस शास्त्रकी रूसे परुपते हो.

उत्तर-प्रश्नव्याकरण आश्रवद्वार पहिलेमें देवकुल, प्रतिमा इत्यादि बहुत चीजें गिनाइ हैं। उन कार्यांको करते हुए पृथ्वीकायकी हिंसा करनेवालेको मंदबुद्धिया कहा है। परन्तु उसके अधिकारी आगे चलकरके अनार्य दिखलाये हैं। पृष्ठ ३२ से ४० तकका अधिकार देखनेसे मालूम हो जायगा। उसमें मंदबुद्धिया मिथ्यादृष्टिका विशेषण है।

पहिले तो यह दिखलाओ कि आप लोग मंदबुद्धिया किसे कहते हैं?। क्या कमबुद्धिवालेको मंदबुद्धिया कहते हैं? यदि ऐसा ही कहेंगे, तब तो केवलीकी अपेक्षासे सभी मंदबुद्धिये गिने जायेंगे। परन्तु नहीं, यहां पर रूढ अर्थ लिया गया है। मंदबुद्धिया, मिथ्यात्वीको कहते हैं। समकितदृष्टिजीवकी करणीसे जो हिंसा होती है, उसे हिंसा कही ही नहीं है। और यदि हिंसा कहोगे तो नीचे लिखी हुई बातोंको करनेवाले, तुम्हारे मन्तव्यानुसार मंदबुद्धिये कहेजायेंगे:—

१ मल्लीनाथभगवानने छ राजाओंको प्रतिबोध करनेके लिये२५ धनुष्यकी सुवर्णकी पोली पुतली बनवाई। उसमें आहारके कवल छ महीनों तक भरे। उसमें असंख्य जीव उत्पन्न हुए तथा मरे। अत्यन्त बदबू फैली। अब देखिये काम धर्मके निमित्त करते हुए बीचमें अनन्त जीवोंकी हानी हुइ, तो तुम्हारे हिसाबसे मल्लीनाथभगवान् मंदबुद्धिये होंगे।

२ ज्ञाताजीमें सुबुद्धिमंत्रिने, राजाको प्रतिबोध देनेके लिये खाइका दुर्गंधी, जीवोंके पिंडवाले जलको घडेमें वारंवार परावर्तन किया। सुगंधी द्रव्य मिलाया, उसमें जीवोंका नाश हुआ। तो उसकोभी मंदबुद्धिया कहना चाहिये।

३ कोणिकराजा वगैरह बडे आडंबरसे प्रभुको वंदणा करनेके लिये गये । बीचमें असंख्याता जीवोंकी हिंसा हुई, तो उनको भी मंदबुद्धिया कहना चाहिये ।

४ नदीमें पडी हुई साध्वीको साधु निकाले, उसमें अप्कायके जीवोंकी हिंसा होती है । स्त्री स्पर्शका दोष लगता है, तो तुम्हारे हिसाबसे वह साधुभी मंदबुद्धिया हो जायगा ।

इत्यादि बहुतसे ऐसे धर्मके कार्य हैं, जिनमें हिंसा दिखाई देती है, परन्तु वह हिंसा गिनी नहीं जाती । और यहाँपर जो 'देवमंदिर' तथा 'प्रतिमा' कहे हैं, वे 'जिनमंदिर तथा 'जिन प्रतिमा' नहीं हैं, ऐसा निश्चय सिद्ध होता है। क्योंकि-उसी सूत्रके ३२९ वें पृष्ठमें दयाके ६० नाम दिखलाये हैं । उनमें ५७ वाँ नाम 'पूजा' दिखलाया है । (किसी भी जगह हिंसाकी करणीमें 'पूजा' का नाम आया) तथा उसी सूत्रके ४१५ वें पृष्ठमें चैत्य-प्रतिमाकी वेयावच्च (भक्ति) करता हुआ साधु निर्जरा करे, ऐसा अधिकार है । इससे भी सिद्ध होता है कि-पूर्वका पाठ अनार्योंका है । अनार्यका पाठ ले करके तीर्थंकर महाराजकी पवित्र पूजाका निषेध करनेको तय्यार होते हो, इसमे तुम्हारे पर भावदया उत्पन्न होती है । कुछ समझविचार करके लिखो-बोलो जिससे भव भ्रमणता न हो ।

प्रश्न—१० प्रश्नव्याकर्णरा पांचमा आश्रवदुवारमै मीग्रहारा नांव चालीया जीणमे प्रतमारो नांव भी सांमल चल्यीयो, ठांणायंगजी तीजे ठांणे मिग्रो अनर्थरो मूलकयो तो फेर मीग्रासे तीर्णा कस साम्रकी रूसे परूपते हो, प्रतिमा प्रतक्ष मीग्रामें चाली हैं ।

उत्तर-प्रश्न व्याकरणके पांचवें आश्रवद्वारमें परिग्रहके नाम आए। उसमें 'प्रतिमा' का नाम नहीं है। वहाँ 'चेइयाणि' तथा 'देवकुल' ऐसे दो शब्द आये हैं 'चेइआणि' शब्दका अर्थ 'चैत्यवृक्षान्' ऐसा करनेका है। क्योंकि-शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं। अधिकार देखना चाहिये। खैर, तिसपर भी यदि आपलोग 'चेइयाणि' शब्दका अर्थ 'प्रतिमा' करते हैं, और 'देवकुलका अर्थ' 'देवमंदिर' करते हैं, तोभी इससे 'जिनप्रतिमा' तथा 'जिनमंदिर' ऐसा अर्थ नहीं निकलेगा।

अच्छा, अब 'परिग्रह' किस खतकी चिडीया है? यह भी प्रश्न पूछने वालोंको मालूम नहीं है। दशवैकालिक सूत्रके छठवें अध्ययनकी २१ वीं गाथामें कहा है:-"मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इअ वुत्तं महेसिणा" मूर्च्छाहीको परिग्रह कहा है। ऐसा परमात्मा महावीर देव कहते है। यदि आप लोग 'प्रतिमा' को परिग्रहमें गिनते हो. तो दिखलाओ, उसके ऊपर किस प्रकारकी मूर्च्छा होती है? और यदि वस्तु ग्रहण करनेहीमें परिग्रहका दोष लगाते हो तो, तुम्हारे साधु परिग्रहधारी गिने जायेंगे, क्योंकि वस्त्र-पात्र उपकरण वगैरह रखते हैं। हमें बडा आश्चर्य होता है कि- जहाँ केवल 'चैत्य' शब्द मिलता है, वहाँ तो 'प्रतिमा' अर्थ करके जिनप्रतिमाके निषेध करनेको तय्यार होते हो, और जहाँ 'अरिहंतचेइयाणि' शब्द आता है, वहाँ तो दूसराही अर्थ करके मन-मोदक उडानेकी कोशिश करते हो। यह भी तुम्हारी बुद्धिका एक अपूर्व नमूना ही है।

प्रश्न--११ ठांणायंगजीरे दुजे ठांणे धर्म दोय कया, सूत्र-

धर्म और चारीत्रधर्म, सो प्रतिमा पूजणेमे वो मंदीर कराणेमे वो संग कडाणेमे कोनसा धर्म है ।

उत्तर-ठाणांगके दुसरे ठाणेके पृष्ठ ४९ में धर्म दो प्रकारका कहाः-श्रुतधर्म तथा चारित्र धर्म, ('सूत्रधर्म' यह तो प्रश्नही झूठा है) इन दोनों प्रकारके धर्मोंके कहनेसे दूसरे धर्मोंका निषेध नहीं होता है। जैसे उसी ठाणांगके १०२-१०३ पृष्ठमें दो प्रकारके बोधी दिखलाए हैं। ज्ञानबोधी तथा दंसणबोधी। तथा दो प्रकारके बुध दिखलाए हैं। ज्ञानबुध-दंसणबुध। तो इससे अन्यबोधी तथा अन्य बुधोंका निषेध नहीं हो सकता है। दूसरे ठाणेमें दो दो वस्तुएं गिनाई हुई हैं। अतएव उसमें भी दोही वस्तुएं लिखी हैं। इसके सिवाय देखिये, तीसरे ठाणेमें अरिहंतके जन्मके समय, दीक्षाके समय तथा केवलज्ञानके समय मनुष्यलोकमें इन्द्र आते हैं, ऐसा अधिकार है, तो इससे क्या निर्वाणके समय तथा च्यवनके समय इन्द्र नहीं आते हैं, ऐसा सिद्ध होता है? कदापि नहीं। पांचो कल्याणकोंके समय इन्द्र आते हैं। इस तरह दो या तीन वस्तुएं गिनानेमे अन्य वस्तुओंका अभाव या निषेध समझ लेना, यह बडी भारी भूल है।

प्रतिमापूजनी, मंदिर कराना तथा संघ निकालना ये दर्शनधर्ममें कहे जाते हैं। जरा आँखें खोल करके तीसरे ठाणेमें पृष्ठ ११७ वाँ देखो, उसमें लिखा है कि-जिन प्रतिमाकी तरह साधुकी भक्ति करता हुआ जीव शुभ दीर्घायुष्य कर्मको उपार्जन करता है।' वह पाठ इस तरह हैः—

"तिहिं ठाणेहिं जीवा सुहदीहाउअत्ताए कम्मं

पगरेंति । तं जहा णो पाणे अइवाइत्ता हवइ, णो मुसं वइत्ता हवइ तहारूवं समणं वा वंदित्ता नमंसित्ता सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता कल्लाणं मगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेत्ता मणुन्नेणं पीइकारएणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता हवइ इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा सुहदीहाउअत्ताए कम्मं पगरेंति ।"

अर्थात्—इन तीन स्थानों करके जीव शुभ दीर्घ आयुष्य कर्म उपार्जन करता है । वे तीन स्थान ये हैं:-प्राणोंको नहीं मार करके अर्थात् जीवदया करके झूठ नहीं बोल करके अर्थात् सत्य बोल करके और तथारूप दयालु श्रमणको वन्दणा करके-नमस्कार करके--सत्कार दे करके-सम्माम दे करके तथा कल्याण-मंगलके निमित्त जिनप्रतिमाकी तरह उस श्रमणकी पर्युपासना करके तथा उस श्रवणको मनोज्ञ-प्रीतिकारक अशन-पान खादिम-स्वादिम आहार देकरके-प्रतिलाभ करके जीव शुभ दीर्घायु उपार्जन करता है ।

देखो, इस पाठमें जब जिन प्रतिमाकी उपमाही दी, तब जिन प्रतिमाकी पूजा स्वतः सिद्ध हुई ।

प्रश्न—१२ उत्राधेनरा २८ मा अधनेमै ३६ मी गाथामे कर्म खपाणवरी करणी २ केही, एक तप दुसरे संजमः सो प्रतिमा पूजने वो मंदिर कराने वो सीगकढानेमें कांनसी करणी हुई ।

उत्तर—उत्तराध्ययनके २८ वें अध्ययनकी ३६ वीं गाथामें कर्म खपानेकी करणीएं तप और संयम दोही कहते हो, यह ठीक नहीं है। क्योंकि—उसके ऊपरकी याने ३५ वीं गाथामें कहा है किः—

"नाणेण जाणइ भावे दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ तवेण परिसुज्झइ" ॥ ३५ ॥

और आपलोग ३६ वीं गाथासे कर्म खपानेकी करणीएं दो कहते हैं। यह सरासर सत्य विरुद्ध है। क्योंकि, उसी गाथासे चार करणीएं निकलती हैं। देखिये, उस गाथामें 'खवित्ता पुव्व-कम्माइं संजमेण तवेण य' ऐसा पद है। इसमें 'य' याने 'च' शब्द रक्खा हुआ है। 'च' शब्दसे ज्ञान-दर्शनको ग्रहण कर लेना चाहिये। अगर वैसे न किया जाय, तो 'ज्ञान-दर्शन—चारित्रकी त्रिपुटीकी विद्यमानतामें मोक्ष होता है' यह बात अन्यथा हो जायगी। 'दर्शन' शब्दके आनेसे भगवानकी आज्ञाकी सद्दहणा आजाती है। और जहाँ भगवानकी आज्ञा है, वहाँ प्रतिमाको पूजना, मंदिर कराना तथा संघ निकालना वगैरह करणीएं आही जाती हैं।

प्रश्न—१३ दशवीकालकरा पेला अधेनरी पेली गाथामे 'अहिंसा संजमो तवो' कयो और सुगडायंगजीरे पेले अध्येनमे चोथे उदेशे गाथ १० में ये वात केही जीन करणीमें कींचीत्त-मात्र हींश्या नही ताकी करणी ज्ञानरो सारकेयो और आप देवल प्रतिमाकी भ्रव पूजा करणेमे वो संग कडानेमें जीव हंश्या करणेमे दोस नही परुपते हो सो प्रतक्ष हंस्या होती हैं और

श्री जिनेस्वरदेवने उपर लीखी यै सासत्रोंमें हंश्या कर्णे साफ मनाई की हैं।

उत्तर—दशवैकालिककी पहली गाथा तथा सूयगडांगसूत्रके पृष्ठ ९५ में पहले अध्ययनके चतुर्थ उद्देशेकी १० वीं गाथा तथा ग्यारहवें अध्ययनकी (पृष्ठ ४२६ में) दशवीं गाथामें 'किंचित्मात्र हिंसा न करनी' यह ज्ञानीका सार कहा है [ज्ञानकासार कहना भूल है], यह बात हमको सर्वथा मान्य है। इस बात पर सर्वथा अमल भी होता है। क्योंकि तीर्थंकरकी आज्ञामें धर्म है। जहाँ जहाँ तीर्थंकरकी आज्ञा है, वहाँ वहाँ धर्म ही है। तीर्थंकर महाराजने अनुकंपा लाकरके गोशाले जैसे शिष्याभासको बचाया। मेघकुमारने ससलाके जीवको बचाया (देखो ज्ञातासूत्र), परन्तु अफसोसकी बात है कि—आप लोग पूर्व कर्मके उदयसे सत्य बातको छोड करके, असत्यमें फँस गये हो। हिंसा—अहिंसाके स्वरूपको भी अभी तक नहीं समझ सके हो। उववाई सूत्रमें कोणिकराज बडे आडंबरसे चतुरंगी सेनाके साथ प्रभुको वंदणा करनेके लिये गये, उसकी शाख, भगवती सूत्रके तेरहवें शतकके छठवें उद्देशेमें उदायनके पाठमें "जहा कोणिओ उववाइए जहा पज्जुवासं" ऐसा कह करके गणधरोंने दी है। उस पुरावेको देख करके अनेक राजे-महाराजे सेठ-साहुकार, आचार्य उपाध्यायादिकोंको वंदणा करनेके निमित्त गये हैं। ऐसा बहुत सूत्रोंमें देखनेमें आता है। अब तुमारे आशयसे तो गणधर महाराज पापका उपदेश देने वाले हुए। इसके सिवाय आचारांगसूत्रमें कहा है:—साध्वी नदीमें गिर गई हो, तो साधु खुद नदीमें गिर करके उसको निकाले, तो इसमें बहुत लाभ कहा है।

कई साधुओंने इस तरह निकाली हैं, निकालते हैं तथा निकालेंगे। ऐसा करनेमें मुनियोंने असंख्य अप्काय हणे हैं, हणते हैं तथा हणेंगे ऐसा उपदेश तीर्थंकर-गणधरोंने किया है, तो तुम्हारे हिसाबसे 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' का तथा सुयगडांगसूत्रका पाठ कहाँ रहा? कदाचित् यह कहा जाय कि-साध्वीके निकालनेका लाभ, हिंसासे अधिक है, तो बस इसी तरह समझलो कि-जिन पूजादिक दर्शनशुद्धिकी करणीमें हिंसासे लाभ अधिक है। गोचरी गया हुआ साधु, महामेघकी वृष्टि होती हो-वृष्टि शान्त न होती हो तो आती हुई वर्षामें भी अपने स्थानपर आजाय। ऐसा उपदेश आचारांग, निशीथ तथा कल्पसूत्रमें दिया है। उस पाठके आधारसे कई मुनि आए हैं और आवेंगे। अब उसमें अप्काय बेइन्द्रिय तेरिन्द्रिय जीवोंकी विराधना होती है तो वह पाप तुम्हारे हिसाबसे उन उपदेश देने वालोंके सिर लगना चाहिये। अच्छा और देखिये। तीर्थंकर महाराजने दो अंगुलियोंसे चपटी बजानेमें असंख्य जीवोंकी विराधना कही है, तो सूर्याभदेवने बत्तीस प्रकारके नाटक किये, वही सूर्याभदेव समकितवंत है, इत्यादि बहुत वर्णन किया है, इसके आधारसे वर्तमानमें भी लोग, भगवान्‌के सामने नाटक करते हैं। भगवान्‌ने सूर्याभदेवको निषेध नहीं किया। तो तुम्हारे हिसाबसे भगवान्‌ने हिंसा करवाई ऐसा ठहरेगा। मुनि चातुर्मास रहे और यदि अप्रीति-अशिवादि कारण हो जाँय, तो चातुर्मासमें भी विहार करे और ऐसे ही कारणसे खुद प्रभु वीरने भी चातुर्मासमें विहार किया है। इस तरहसे ऐसे कारणोंमें वर्तमान समयमें भी

विहार करते हैं । तो इसके दोषके भागी तुम्हारे हिसाबसे उपदेश देनेवाले तीर्थंकर-गणधरादि ही होंगे ।

ऐसे २ कई स्थानोंमें भविष्यके बडे लाभोंके लिये ही प्रभु तथा गणधरोंने आदेश-उपदेश किये हैं । परन्तु महानुभावो ! पूर्वोक्त कारणोंमें स्वरूप हिंसा है । और जहाँ अनुबन्ध हिंसा होती है, वहाँ ही उत्तरकालमें दुःख होता है । दशवैकालिक-सूत्रमें तथा सूयगडांगसूत्रमें अहिंसाधर्मकी प्ररूपणाकी हुई है । वह सर्वथा सबको मान्य है, परन्तु उसके यथार्थ स्वरूपको नहीं समझ करके एकान्त पक्षको स्वीकार करनेवाले जैनदर्शनसे बहार हैं । क्योंकि मुनिराजोंने, अरिहंत-सिद्ध-साधु-देव तथा आत्माकी साक्षिसे पंचमहाव्रतोंके स्वीकार करनेके समय मन-वचन कायासे, नव प्रकारके जीवोंको हणुं नहीं हणावुं नहीं, तथा हणे उसको अच्छा न जानुं, ऐसे ८१ भंगोंसे 'प्राणातिपातविरमण' व्रत लिया है, तथापि आहार निहार-विहार व्याख्यान धर्म चर्चा, गुरुभक्ति तथा देवभक्ति वगैरह क्रियाओंमें हिंसा होती है । परन्तु इन कार्योंमें अत्युत्तम निर्जरा होनेसे इसको हिंसा मानी नहीं है । यदि हिंसा मानली जाय, तो ८१ भंगोंमें दूषण आनेसे मुनियोंको हजारों कष्टक्रियाएं करनेपर भी दुर्गतिमें जानेका ही समय आवे ।

प्रश्न-१४ जिनप्रतिमा श्रीजिनसारसी परूपते हो सो बत्तीस सासत्रमें कांहीका हो तो पाठ बतलायें-

उत्तर-जिनप्रतिमा जिनसमान है, तत्संबंधि रायपसेणी सूत्रके १९० पृष्ठमें 'धूवं दाऊणं जिणवराणं' ऐसा पाठ है । तथा जीवाभिगम सूत्रकी लिखी हुई प्रति (जो आचार्य महा-

राजके पास है) के १९१ वें पृष्ठमें भी वही पाठ है । इस पाठका मतलब यह है कि–' जिनवरको धूप दे करके '। इसमें मूर्तिको जिनवर कहा, इससेही सिद्ध होता है कि–जिन-प्रतिमा जिन समान है । इसके सिवाय ज्ञातासूत्रके–१२५५ वें पृष्ठमें 'जेणेव जिणघरे' ऐसा पाठ है । यहाँपर भी जिनप्रतिमाके घरको जिनघर कहा है । इत्यादि बातोंसे जिनसमान कहनेमें जरा भी आपत्ति नहीं आती है ।

प्रश्न–१५ आचारंगरे पेला अध्येनरा पेला उद्देशामें केयोके जीवरी हंस्या कियां जनममरणरो मुकावोपरुपे तीणने अहेत अबोधरो कारण केयो तो फेर आप धर्म दवरे वास्ते हंस्या करणेका उपदेश केशे दीराते हो ।

उत्तर–आचारंग के पहिले अध्ययनके पहिले उद्देशेमें तुम्हारे पूछे मुताबिक प्रश्नका पाठ नहीं है । अतएव उत्तरही देनेकी आवश्यकता नहीं है । तथापि तुम्हारे पर दया आनेसे तथा तुम्हारी भूल सुधारनेके लिये, दुसरे उद्देशेका पाठ, जोकि तुम्हारे पूछे हुए प्रश्न संबंधी है, उसको यहाँ दे करके यथार्थ अर्थ दिखलाता हुँ । देखो, वह पाठ पृष्ठ २९ में यह है:—

" इमस्स चेव जीविअस्स परिवंदणमाणण पूअणाण, जाइ-मरण-मोअणाण दुक्खपडिग्घायहेउं सें सयमेय पुढविसत्थं समारंभइ अण्णेहिं पुढविसत्थं समारंभावेइ, अण्णेवा पुढविसत्थं समारंभते समणुजाणइ तं से अहिआए तं से अबोहिए "

इसका भावार्थ यह है:-इस जिंदगीके परिवंदन मान तथा पूजाके लिये जाति-मरण और मोचनके लिये तथा दुःखके प्रतिघातके लिये जो स्वयं हिंसा करे, अन्यके पास करावे, तथा करनेवालेको अच्छा जाने, वह कार्य अहित तथा अबोधके लिये होता है।

यह उसका अक्षरार्थ है। इसमें तुम्हारे प्रश्नसे उलटाही प्रतिभास होता है। तुम लिखते होः-'जीवरी हंस्याकियां जनम-मरणरो मुकावों परूपे तीणेन अहेत अबोधरो कारण केयो' यह बात तो स्वप्नमें भी नहीं है। महानुभाव! सूत्रोंके असल-वास्तविक अर्थ जानने चाहते हो, तो व्याकरणादिका अभ्यास करो। पश्चात् सूत्रोंके अर्थ समझनेका दावा करो। पूर्वोक्त पाठमें अपने स्वार्थके लिये हिंसा करने वालेको, हिंसा अबोध तथा अहितके लिये कही है। परिवंदन याने कोई वांदे नहीं, तब क्रोध करके अन्यको पीडा करे। वैसेही मान तथा पूजामें भी समझना। इस तरह जाति-जन्म उत्तम मिले, वैसे आशयसे कुदेवोंको वंदणा करे, जलदी मृत्यु न हो, ऐसी आशासे अभक्ष्य-मांसादि खानेकी प्रवृत्ति करे। तथा करने वालेकी अनुमोदना करे, उसको अहितके लिये तथा अबोधके लिये कहा है। हम लोग जो उपदेश देते हैं, वह हिंसाके लिये नहीं, परन्तु धर्मदेवकी भक्तिके लिये।

प्रश्न—१६ आचारंगरे चोथा अध्येनरे पेला उदेशामे कयोके धर्म रहे ते सर्व प्राण भूत सत्व जीवको ही मत हणो, अतीन-कालरातीथंकरांरा वचन हैं तो फेर देवल वगेरे कराणेमे इण ससात्रके खीलाप धर्मकेशे परूपते हो-

उत्तर–भूत–भविष्य तथा वर्तमान तीर्थंकर महाराजाओंने हिंसाका निषेध किया, सो बराबर है। परन्तु धर्मके निमित्त समस्त जीवकी–समस्त प्राणीकी हिंसा नहीं करनी, ऐसा वचन नहीं है। तिसपर भी आप लोग ऐसे मनःकल्पित प्रश्न उठाते हैं। इसीसे तुम्हारी बुद्धिका रहस्य झलक रहा है। यदि तीर्थंकरोंके वचन वैसे मिलें, तो तीर्थंकर महाराज गौतमस्वामीको, देवशर्मा ब्राह्मणको प्रतिबोध करनेके लिये क्यों भेजते ? आनन्द श्रावकके पास अवधिज्ञान संबंधी ' मिच्छामिदुक्कडं ' देनेको क्यों भेजते ? ' गौतम ! मृगालोढियाको देख आवो ' ऐसा क्यों कहते ?' गौतम ! मालयकच्छमें सिंहाअनगार रोता है, उसको समझाकर बुला लाओ, ऐसा क्यों कहते ?। क्योंकी–उपर्युक्त कार्योंमें जीवविराधना होनेका संभव है, परन्तु वे आज्ञाएं भगवान्‌ने धर्मके निमित्त की हैं। इसके सिवाय गोचरीके लिये भी भगवान् आज्ञा देते हैं। देखिये, उपासक दशांगके पृष्ठ ७२ का पाठः–

" इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगंसि वाणिअगामे नयरे उच्चनीअमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरिआए अडित्तए अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।"

अर्थात्–हे भगवन् ! आपसे अनुज्ञात हुआ मैं बेलेके (दो उपवासके) पारणेके लिये वाणिज्यग्रामनगरमें गोचरी लेनेको जाऊं, ऐसा चाहता हूँ। तब भगवान्‌ने कहाः–'हे देवानुप्रिय ! विलंब मत करो '।

इत्यादि कई जगह धर्मके निमित्त भगवान्‌ने ऐसा कहा है। इसी तरह देवमंदिरादि धर्मकृत्योंके उपदेश देनेमें किसी प्रकारकी हानी नहीं है।

प्रश्न—१७ आचारंगरे चोथे अध्येन दुज उदेशेकेयोके धर्म हेते सर्व प्रांण भूत जिव सत्वं हणीयां दोस नहि कवै, तींके वचन अनारजना छै तो फेर आप इण पाठरे खीलाप प्रतिमा पूजणेमें धर्म केसे परूपते हो, कीउके प्रतिमाकी द्रव्य पूजा कर्णेमें प्रत्यक्ष जीवहींसा होती है।

उत्तर—आचारांगके चोथे अध्ययनके दूसरे उद्देशेमें जो पाठ है, वहाँ 'हिंसा करनेमें दोष नहीं है' ऐसे बोलनेवालेके वचन, अनार्यके वचन हैं। तथा 'दया पालनमें दोष नहीं है' यह वचन आर्यका है। इस मतलबका जो पाठ, प्रश्न पूछनेवाले महानुभाव दिखलाते हैं। वह पाठ, असलमें ऐसा सूचित नहीं करता है कि–' धर्मके निमित्त हिंसा करे तथा धर्मके निमित्त हिंसा करनेवाला दोषवाला है, उस पाठमें ऐसा भाव बिलकुल नहीं है। देखिये, आचारांगके २३० वें पृष्ठमें वे दोनों पाठ इस तरह हैं:—

"भोजणं तुब्भे एवं माइक्खह, एवं भासह, एवं पण्णवेह, एवं परूवेह,—सव्वे पाणा सव्वे भूआ, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, हंतव्वा, अज्जावयेव्वा, परितावेअव्वा, परिघेतअव्वा, उद्दवेतव्वा एत्थंवि जाणह नत्थित्थ दोसो अणायरियवयणमेअं."

वयं पुण एवमाइक्खामो, एवं भासामो, एवं

परूवेमो, एवं पएणवेमो, सव्वे पाणा, सव्वे भूआ, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, न हंतव्वा, न अज्जावेतव्वा, न परिघेतअव्वा, न परियावेअव्वा, न उद्दवेअव्वा, एत्थवि जाणह नत्थित्थ दोसो आयरियवयणमेअं."

ऊपर जो दोनों पाठ दिये गये हैं, इनमें पहिले पाठमें जैनेतरोंका वचन है, दूसरे पाठमें जैनमुनियोंका वचन है, पहिले पाठमें यदि धर्मका अध्याहार (ऊपरसे धर्म) लिया भी जाय, तो भी वह पाखंडियोंका ही धर्म लेना । परन्तु समकितवंत जीवोंका नहीं । दूसरे पाठमें धर्म लेनेकी आवश्यकता ही नहीं है । इसके सिवाय इसी सूत्रके प्रथम श्रुतस्कंधके २२४ वें पृष्ठमें 'जो आस्रव वह परिस्रव ' तथा ' जो परिश्रव वह आस्रव' कहा है । परिश्रवकर्म निर्जराका नाम है । समकितवंतका आस्रव, निर्जरारूप होता है । अज्ञानीका संवर वह आस्रवरूप होता है । तथा ' जो अनास्रव वे अपरिस्रव ' और ' जो अपरिस्रव वे अनास्रव' कहे हैं । अनास्रव व्रतादि अशुभ अध्यवसायके कारणसे होते हैं । अपरिस्रव पापके कारणभूत होते हैं । निर्जराके कारण नहीं होते । जो अपरिस्रव याने पापके कारण हैं, वे अनास्रव याने पापके कारण हैं, वे अनास्रव याने निर्जराभूत होते हैं वीरपरमात्माके शासनके लिये तथा संघके लिये अनेक शुभ हेतुसे होते हुए पाप भी निर्जराके कारण होते हैं । देखिये आचारांगसूत्रके पृष्ठ २२४ में इस तरह पाठ है:—

जे आसवा ते परिस्सवा, ते परिस्सवा ते आसवा, जे अणासवा ते अपरिस्सवा जे अपरिस्सवा ते अणासवा । "

इस पाठका अर्थ, हम ऊपर ही दे आए हैं।

प्रश्न—१८ आचारंगरै चोथा अध्येनरे दुजा उदेशेमे धर्म-हेते प्राणभूत जीवसत्वं हणीयां दोसकेयै तीके वचन आरजना छे तो फेर आप धर्मरे कारण हंस्या करणेमें दोसे केशे नहीं परूपते हो।

उत्तर—इस प्रश्नका उत्तर सतरहवें प्रश्नके उत्तरमें ही आजाता है। वह पाठ भी सतरहवें प्रश्नमें दे दिया है। धर्मके निमित्त होती हुई करणीमें निर्जराही है। यह बात कई प्रश्नोंके उत्तरमें दिखला दी है। अत एव यहाँ विशेष स्पष्टिकरण करनेकी आ-वश्यकता नहीं है।

प्रश्न—१९ आचारंगरे आठमे अध्ययनमें श्रीभगवंत महा-वीर देव ठंडो आहार गणादीनांरो नीपजीयो डोलीयो चालीयोने आप ठंडा आहार लेणेमे मनाई परूपते हो, सो कीसी सास्त्रके अनुसार भरजीयो वे तो बतलाइये।

उत्तर—आचारंग सूत्रके आठवें अध्ययनमें भगवान् महावीरदेवने बहुत दिनोंका ठंडा आहार लिया, वैसा पाठ नहीं है। परन्तु प्रथम श्रुतस्कंधके नववें अध्ययनके चतुर्थ उद्देशेमें इस तरहका पाठ है:—

अवि सूईयं च सुक्कं वा सीयपिंडं पुराणकुम्मासं।
अदु बक्कसं पुलागं वा लद्धे पिंडे अलद्धए दविए॥

भावार्थ—दहींसे भींजोया हुआ भक्त (भोजन) तथा सूखे वाल चने जो कि भूंजे हुए हों, तथा वासी याने ठंडा भक्त

(भोजन) जो प्रातःकालसे तीसरे प्रहर तकका हो, अथवा वासी याने पर्युषित पुराणा उडद्का भक्त चिरंतन धान्यका भोजन अथवा बहुत दिनोंका सत्थु (साथवा), गोरस तथा गेंहूका मांड इन्होंमेंसे कोईभी प्राप्त हो, परन्तु भगवान् राग द्वेष रहित हो करके ग्रहण करें।

अब यहाँ तेरापंथी महानुभाव, अपनी पकडी हुई बातको सिद्ध करनेके लिये अनेक प्रकारकी कोशिश करते हैं। परन्तु उन लोगोंको वास्तविक मतलब नहीं प्राप्त होनेसे स्वयं अभक्ष्यी होकर, अन्यको भी अभक्ष्यी करनेके लिये अर्थके अनर्थ करते हैं। 'भात' शब्द जहाँ जहाँ आता है, वहाँ वहाँ 'भोजन' अर्थ करनेका है। देखिये आज कलभी पुराणाही रिवाज चला आया है जैसे कोई स्त्री क्षेत्रमें भोजन देनेको जाय, और उससे अगर कोई पूछे कि-कहाँ जाती हो? तो वह यह कहेगी कि-मैं भात देनेको जाती हूं। यहाँपर चाहे कोइ भी चीज लेजाती होगी, परन्तु उसको भात ही कहेगी। उडदका चावल होता है, ऐसा किसी जगह जाननेमें नहीं आया। तब जैसे जवका सत्थु (सथुआ) होता है, वैसे उडद वगैरहका सत्थु इत्यादि समझ लेना। मगध देशमें सत्थुका प्रचार बहुत था। अब भी है। नाना प्रकारके सत्थु मिलते हैं। मैं उस देशमें विचरा हूँ। मुझे इस बातका जाति अनुभव है। बहुत दिनोंके सत्थु देनेमें वासीका दोष नहीं है आचारांगसूत्रमें अनेक प्रकारके चूर्ण सत्थु· इत्यादिका वर्णन चला है।

हमें बडा आश्चर्य तो यह होता है कि-आप लोग टीकाको मानते ही नहीं हैं, तिसपर भी जहाँ तुम्हारे मतलबकी बात आती है, वहाँ तो फोरन टीकाका शरण लेते हो, परन्तु टी-

काका रहस्य भी, सिवाय गुरुके नहीं मिल सकता । वासीका अर्थ पर्युषित भक्त करनेमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होनेवाला नहीं है । क्योंकि–पर्युषित दो प्रकारके होते हैं । भक्ष्य तथा अभक्ष्य। 'पर्युषित' शब्दका अर्थ 'रातका रहा हुवा भक्त' ऐसा होता है। इसमें ऐसा नहीं है कि–स्नेह सहित या स्नेह रहित । अतएव भक्ष्य अभक्ष्य दोनोंका ग्रहण होता है । इनमेंसे जो भक्ष्य चीजें होती हैं, वेही भगवान् तथा भगवान्के अणगार–साधु लेते हैं । और अभक्ष्य चीजें लेते नहीं हैं । सूत्रोंमें ऐसेभी पाठ हैं कि--चलितरस, जिसमें लीलण-फूलण आगई हो तथा रूप-रस-गंध स्पर्श बदल गये हों, वैसे आहारको नहीं लेना । महानुभाव ! प्रथम तो आप लोगोंको चलित रसका ज्ञान ही नहीं है । क्योंकि, लीलण–फूलण पांच प्रकारकी है । उसमें तद्वर्ण लीलण–फूलण तुम्हारेसे जानी नहीं जायगी । अत एव शास्त्रोंपर श्रद्धा रख करके सिद्धि सडकको पकड लीजिये । ज्ञातासूत्रके पृष्ठ ६०० में आहारका अधिकार है। उत्तराध्ययनसूत्रके २४९ वें पृष्ठमें आठवें अध्ययनकी बारहवीं गाथामें भी यही अधिकार है । परन्तु वहाँ किसी स्थानमें बहुत दिनोंके आहारके लेनेको नहीं कहा है । जहाँ ' पुराणा ' कहा है। वहाँ उडदका भात कहा है । अतएव जल रहित चूर्ण लेनेमें हानी नहीं है । जिस परमात्माको भूत–भविष्य तथा वर्तमानकालका निर्मल ज्ञान था । ऐसे परमात्माने जिस समय सूक्ष्मदर्शकादि यन्त्रोंके साधन नहीं थे, ऐसे समयमें अपने ज्ञानके द्वारा समस्त वनस्पतिमें, जलमें, तथा कंदमूल वगैरहमें; जीवोत्पत्ति दिखलाई है । यह बात आजकल सायन्स विद्यासे, डाक्टरी नियमोंसे तथा आयुर्वेदादिसे सिद्ध होती है । देखिये, आजकलके जमानेमें सायन्सवेत्ता, डॉक्टर लोग तथा वैद्य लोग

भी पर्युषित अन्नके खानेका निषेध किया करते हैं वैष्णव लोग भी स्नेहयुक्त पर्यूषितान्नको त्याग करते हैं। देखिये मनुस्मृतिके पांचवें अध्याय, पृष्ठ १८३ में कहा है ।

'यत् किञ्चित् स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् ।
तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद् भवेत् ॥२४॥
चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः
यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया ॥२५॥

भावार्थः—जो लड्डु वगैरह, थोडे स्नेहयुक्त, कठिन, कोमल तथा बिगडे हुए नहीं हैं, वे खाने लायक हैं । तथा होमसे बचा हुआ, जो पर्युषित है, वह भी खाने लायक है ।

बहुत कालसे रहा हुआ, स्नेह रहित जो यव, गोधूमसे उत्पन्न हुआहो तथा दूधका विकार जो मावादि (खुआ) होता है, वह ब्राह्मणोंको खाने लायक है ।

उपर्युक्त दोनों श्लोकोंमें भक्ष्य-पर्युषित खानेलायक दिखलाया । और उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि-जिसमें जलका भाग न हो, वह खाने लायक है । यही बात तत्त्ववेत्ता जैनाचार्य भी कहते हैं । तथापि तेरापंथी लोग मनमाने अर्थ करके भगवान्की वाणीको सदोष बनाते हैं ।

परन्तु महानुभावो ! जमाना दूसरी तरहका है । इस समयमें तुम्हारे मनःकल्पित अर्थ, विद्वानोंके आगे चलने वाले नहीं हैं। 'पर्युषितान्नं त्यजेत्' इत्यादि वाक्य जैन तथा जैनेतर शास्त्रोंमें स्पष्ट दीख पडते हैं। रात्रीका रहा हुआ जलवाला पदार्थ-

रोटी, चावल, खिचडी, शाक वगैरह अभक्ष्य समझने चाहियें। जिसमें जलका भाग रहा नहीं है, ऐसे पदार्थ, दिखलाए हुए कालानुसार भगवान्ने भक्ष्य कहे हैं। और इसी तरह हम लोक निंदनीय सजीव वासी चीजें लेते भी नहीं हैं। आप लोक भी वैसा ही करेंगे तो भगवान्की आज्ञाके आराधक होकर आत्मश्रेय करनेके लिये भाग्यशाली होंगे।

प्रश्न-२० पेला छेला जीनेस्वर देवांरा सादांरे सर्व सपेदवर्णरा कपडा आया है और आप पीला कपडा पेनते हो और रंगते हो सो कीस शास्त्रका रुहसे।

उत्तर-पहिले तथा अन्तिम तीर्थंकर महाराजका कल्प अचेलक है। जीर्ण-तुच्छ वस्त्रके परिधान होनेसे अचेलक माना है। तिसपर भी तुम्हारे [तेरापंथी] साधु नये-स्वच्छ तथा रेशमीकपडे पहनते हुए देखनेमें आते हैं, और उनको अचेलक कहते हो, इसका क्या कारण? कारण विशेषमें कपडेको रंग देनेकी आज्ञा हमारे माने हुए सूत्रोंमे मौजूद है। इससे हम लोग रंगा हुआ कपडा रखते हैं, उसमें न दोष है, न आज्ञाका भंग है। 'न धोना न रंगना' यह जो कहा है, वह सफाई या शौकके आशयसे कहा है। विशेष लाभके लिये तो खास आज्ञा दी हुई है।

प्रसंगानुरोध यह भी कह देना समुचित समझा जाता है कि-पक्षपातको छोड करके व्यवहारिक रीतिसे देखा जाय तो यतना पूर्वक परिमित जलसे वस्त्रप्रक्षालनमें फायदा ही है। पूर्व ऋषि-मुनिराजोंका संघयण तथा पुण्य प्रकृति और ही प्रकारकी थी, जिसके कारण दुर्गंधी तथा यूकादि नहीं पडते

थे। आजकल छेवट्ठा संघयण होनेसे मलीन वस्त्रोंमें दुर्गंधी हो जाती है तथा यूकाएं [जूएं] बहुत पडती हैं। आजकल तुम्हारे (तेरापंथियोंके) अनेकों साधु, कपडोंमेंसे जूएं निकालते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उन जूओंको पैरोंमे बांध रखते हैं, जिससे विशेष दोषका कारण होता है। वे जूएं कई गृहस्थोंके घरमें पडती हैं, बहुतसी रास्तेमें गिरती हैं, तथा उपाश्रयमें तो गिरती ही रहती हैं। जू तीन इन्द्रियवाला जीव है, तो ऐसे तीन-इन्द्रिय जीवोंकी इतनी विराधना न करके, फासुजल उपलब्ध हो, उससे यतना पूर्वक कपडे साफ किये जाँय, तो कितना दोष या लाभ होता है? इस बातका विचार करनेमें आवे, तो एकान्तवादको छोड करके, स्याद्वादकी सीधी सडक प्राप्त कर सकते हो। इतनाही प्रसंगसे कह करके अब मैं मूल बातपर आता हूँ।

कपडे रंगनेका कारण, जो यति शिथिल हुए थे, उनसे भेद दिखलानेका ही है। और वह भी शास्त्रयुक्त ही है। न कि मनःकल्पित। देखो, आप लोग (तेरापंथी) स्थानकवासियोंसे अलग हुए, तब स्थानकवासियोंसे विलक्षण मुहपत्ती बांधनी शुरूकी। और वह भी मनःकल्पित, नाकि शास्त्र प्रमाणसे। तिसपर भी झूठेको झूठा समझते नहीं हो। और जिन्होंने सकारण, सशास्त्र आचार्योंकी सम्मतिसे कपडे रंगनेका कार्य किया है, उसमें दोष देखते हो। यही तुम्हारा जाति स्वभाव दिखाई दे रहा है।

प्रश्न—२१ श्रीजिनेस्वर देवने दशमिकालकरा सातमा अध्येन गाथा ४७ मी मे कयोके साधु होकर असंयतीको आव-जाव उभोर बेस सुकांम कर इत्यादिक छ बोल केणा नहीं

तो फेर संवेगीजी साधुजी ग्रहस्ती पर बोज कीस शास्त्रकी रूसे देते है:

उत्तर—श्रीदशवैकालिकसूत्रके सातवें अध्ययनकी ४७ वीं गाथामें जो बात कही है, वह सर्वथा मान्य है, फिर चाहे तेरापंथी हो, स्थानकवासी हो या संवेगीसाधु हो। जो साधु, गृहस्थके शिरपर बोझा देता है, वह साधुकी क्रियामें दोष लगाता है। संवेगी साधु, अपने उपकरण गृहस्थके शिरपर देते नहीं है। और कदाचित् कोई शिथिल साधु देता हो, तो इससे सबके शिरपर दोष लगाना, द्वेषका ही कारण है। देखिये, जो रुपया जितना घिसा हुआ होता है, उसका उतना ही बटाव लगता है। परन्तु वह रुपया सर्वथा तांबेका नहीं गिना जाता है। इसी तरह जिसमें जितनी न्यूनता होती है, उसमें उतनी ही न्यूनता गिनी जाती है कंचन कामिनीका सेवन करनेवाला साधु भावसे विमुख होता है। महानुभाव! आप लोगोंने संवेगी साधुका नाम ले करके निंदाका कार्य किया है। इस लिये पापका पश्चात्ताप करना। स्थूलदृष्टिसे न देख करके, सूक्ष्मदृष्टिसे देखोगे तो, तुम्हें मालूम होगा कि—तुम्हारे साधुओंकी उत्कृष्टता सम्हालनेके लिये कैसे २ प्रपंचोंको उठाते हो? बस, यही तुम्हारे गुरुओंकी शिक्षाका फल है।

प्रश्न—२२ सूर्याभदेवता जिन प्रतिमा मोक्षने अर्थ पूजी, आप केते हो, ओर रायपसेणीका पाठ बतलाते हो सोइणरो उत्तर अवलतो ओहेके देवतांरा केणासू पूजी हे ओर भवनी परमपराने अर्थे पूजी, दूसरो वतीसवानाभी पूजीया है, हरेक देवता भीमाणरो अदपती हुवे तीको उपजनी वेला पूजीय॰

करे है जीणसू सूर्याब देवता बी पूजी परंपरा रीते, और आप फुरमाते होके निसेसाए सबदनो अर्थ मोक्ष है सो इणरो उत्तर ओहेके इणीज मुताबीक पाठ भगवती सूत्रमें सतक दूजे उद्देशे पेले लायमांयसू धन बारे काडीयो, जठे 'नीसेसाए अणुगामीयताए भविसई' पाठ आयो छै, सो इण जगा कांई मोक्ष हुवो दोनु जगा नीसेसाए अणुगामीयताए भविसई, एक सीरीका पाठ छै, इण न्याय प्रतमा पूजी जीणमे परभोरो मोक्ष नथी।

उत्तर— 'देवताके कहनेसे पूजा की उसमें लाभ नहीं है" ऐसे तुम्हारे कहनेसे, यह मालूम होता कि-आप लोगोंका यह मानना है कि-'दूसरेके कहनेसे, कोई मनुष्य कुछ कार्य करे उसको लाभ या नुकसान कुछ नहीं होता'। परन्तु यदि ऐसा मानोगे तो दूसरेके कहनेसे कोई संसार छोडे, दान दे, भक्ति करे, विनय करे उसको लाभ नहीं होना चाहिये। दूसरेके कहनेसे हिंसादि कार्य करे, तो उसको नुकसान नहीं होना चाहिये। परन्तु नहीं, यह बात आप लोग भी स्वीकार नहीं कर सकते। तो भला फिर, यह विचारनेकी बात है कि देवताके कहनेसे पूजाकी है, तो कोई खराब कार्य तो नहीं किया है। उत्पन्न होनेके बाद सूर्याभदेवने स्वयं यह विचार किया कि-हमें पूर्व-पश्चात्-कल्याणकारी-हितकारी-सुखकारी-भवान्तरमें भी उपकारी-मुक्त्यर्थ क्या कार्य है? उस समयमें देवताओंने आ करके कहा है। देखिये, इस विषयका पाठः—

"तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरियाभेदेवे अहुणोववण्णमेत्ते चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तिए पज्जतिभावं गच्छइ, तं जहाः—आहारपज्जत्तीए,

सरीरपज्जत्तीए, इंदियपज्जत्तीए, आणपाणुपज्जत्तीए, भासामणपज्जत्तीए, तएणं तस्स सूरियाभस्स पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जतिभावं गयस्स समाणस्स, इमेआरूवे अज्झत्थिए, चिंतिए, पत्थिए, मणोगए, संकप्पे समुप्पज्जित्था, किं मे पुव्विं करणिज्जं, किं मे पच्छा करणिज्जं, किं मे पुव्विं सेयं, किं मे पच्छासेयं, किं मे पुव्विंपच्छा वि हिआए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सइ? तएणं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणिअपरिसोववण्णगा देवा सूरियाभस्स देवस्स इमेआरूवं, मज्झत्थिअं जाव समुप्पण्णं समभिजाणित्ता जेणेव, सूरियाभे देवे तणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जयेणं विजयेणं वद्धावेंति, वद्धावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पियाणं सूरियाभे विमाणे सिद्धाययणंसि अट्ठसयं जिनपडिमाणं जिणुस्सेहपमाणमेत्ताणं सण्णिखित्तं चिट्ठन्ति सभाए णं सुहम्माए माणवते चेइए खंभे वइरामये गोलवट्टसमुग्गए बहुओ जिणसकहाउ सण्णिखित्ताओ चिट्ठन्ति, ताउ णं देवाणुप्पियाणं अण्णेहिं च बहूणं वेमाणिआणं देवाणं देवीणं य अच्चणिज्जाओ जाव

वंदणिज्जाओ, नमंसणिज्जाओ, पूअणिज्जाओ, सम्माणणिज्जाओ, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ, तए णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं करणिज्जं तं एयणं देवाणुप्पियाणं पच्छा करणिज्जं तं तएयं देवाणुप्पियाणं पुव्विं सेयं, तं एयणं देवाणुप्पियाणं पच्छासेयं, तं एयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विं पच्छा वि हिआए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सइ । पृष्ठ १७१ से ।

भावार्थः—जिस समय सूर्याभदेव सूर्याभविमानमें उत्पन्न हुआ, उस समय उसको ऐसा विचार हुआ कि-मेरा पूर्व हित-पश्चात् हित् तथा पूर्वपश्चात् हित क्या है ? इस प्रकार विचार करते हुए सूर्याभदेवको जान करके, उसके पास उसके सामानिक सभाके देवोंने आकरके सविनय इस प्रकार कहाः—

'हे देवानुप्रिय ! सूर्याभविमानमें सिद्धायतनमें जिनोत्सेध प्रमाणमात्र १०८ जिन प्रतिमाएं हैं । तथा सुधर्मासभामें मानवत चैत्य-स्तंभमें वज्रमय गोलडब्बेमें जिनके अस्थि (दाढा वगैरह) हैं, वे आपसे तथा दूसरे अनेक देव-देवियोंसे अर्चनीय, वंदनीय, नमस्यनीय, पूजनीय, सम्माननीय यावत् कल्याण-मंगल देव चैत्यकी तरह पर्युपासनीय हैं । तथा वे ही प्रतिमाएं एवं दाढाएं आपको परंपरासे पूर्वहितके लिये, पश्चात् हितके लिये, सुखके लिये, क्षमाके लिये, मोक्षके लिये होंगी ।'

उपर्युक्त पाठमें प्रत्यक्ष जिन प्रतिमा तथा दाढा (भगवान्के अस्थि वगैरह) अर्चनीय-पूजनीय-वंदनीय कहीं हैं । परन्तु

दूसरी वस्तु [illegible] नहीं है। इस[illegible] आप लोग भवकी परंपराका अर्थ करते हैं, तो क्या पूजा करनेसे भवकी परंपरा बढती है, ऐसा कहना चाहते हो ?। या भवकी परंपरामें हितकर कहना चाहते हो ?। यदि भवकी परंपरा बढे, ऐसा अर्थ करोगे, तो वह ठीक नहीं है। क्योंकि–सूर्याभदेवने प्रभुकी पूजा तथा नाटक वगैरह किये, तिसपर भी एकावतारी महाविदेह क्षेत्रमें 'दृढ प्रतिज्ञ' नाम धारण करके चारित्र लेकर केवली होगा। अब दिखलाइये, कहाँ रही भवकी परंपराका बढना ?। 'परित्तसंसारी' वगैरह विशेषणोंके होनेके भवकी परंपराका बढना बिल्कुल असंभव है।

अब जिनपूजा, भवपरंपरामें हितकर है, ऐसा कहोगे, तो बस, झगडा समाप्त हुआ। आप लोग भी सूर्याभदेवकी तरह जिनपूजा रोचक हो जाओ।

अच्छा अब दूसरी बात देखिये। जैसे और वस्तुएं पूजी, वैसे जिनप्रतिमा भी पूजी, ऐसाभी तुम्हारा कथन ठीक नहीं है। क्योंकि–जिनपूजाकी तरह दूसरी वस्तुओंकी पूजाके समय 'आलोए पणामं करेइ' ऐसा कहा नहीं है। तथा जिनप्रतिमाकी तरह 'नमुत्थुणं' वगैरह कहा नहीं है। एवं हितकारी–सुखकारी-क्षेमकारी–कल्याणकारी वगैरह शब्द भी नहीं कहे हैं। तिसपर भी ३१ वस्तुओंकी पूजा तथा जिनेश्वरकी पूजाको एक समान गिनते हो इससे उत्सूत्रभाषीपनेका दोष तुम्हारे सिरपर लगता है कि नहीं, इस बातका विचार करो।

इसके सिवाय और भी देखो, भगवतीसूत्रके १० वें शतकके छठे उद्देशेमें पत्र ८७६ में कहा है कि–भगवान्की दाढा वगैरहकी आशातना देवता लोग नहीं करते हैं। जब दाढाकी

ही आशातना नहीं करते हैं, तो फिर प्रतिमाके लिये तो कहना ही क्या ? देखिये, वह पाठ यह है:—

" पभू णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाएरायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ? णो इणट्ठे समट्ठे। से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ णो पभू चमरे असुरिंदे असुरराया चामरचंचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए ? अज्जो ! चमरस्सणं असुरिंदस्स असुरकुमाररएणो चमरचंचाएरायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइए खंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सणिणखित्ताओ चिट्ठंति, जाओणं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररएणो अएणेसिं च बहूणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ णमंस पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं णिज्जाओ पज्जुवासणिज्जाओ भवंति, तेसिं पणिहाणे णो पभू से तेणट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ णो पभू चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए जाव विहारित्तए। पभू णं अज्जो ! चमरे असुरिंदे असु-

ऱराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठी सामाणियसाहस्सी-हिं तायत्तीसाए जाव अण्णेहिं च बहूहिं असुरकुमा-रेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महयाहय जाव भुंजमाणे विहरित्तए केवलं परियारिड्ढीए णो चेवणं मेहुणवत्तियं।"

भावार्थः-हे भगवन्! चमरचंचा राजधानीमें चमरसिंहा-सनमें असुरेन्द्र असुरराजा चमर, दिव्य भोग भोगनेको समर्थ है?

हे गौतम! समर्थ नहीं है।

हे भगवन्! क्यों समर्थ नहीं है?।

हे गौतम! चमरचंचा राजधानीमें सुधर्मा सभामें मान-वत चैत्यस्तंभमें वज्रमय डब्बेमें जिनके सक्थी बहुत हैं। जो कि चंदनसे पूज्य हैं। प्रणामसे नमन करने योग्य हैं। वस्त्रा-दिसे सत्कार करने योग्य हैं। प्रतिपत्तिसे संमान्य हैं। अतएव उन पवित्र जिन सक्थियोंकी आशातना न हो, इस लिये वह चमरेन्द्र मैथुनादि भोगोंको भोगता नहीं है। परन्तु अपने परिवारके साथ चमरेन्द्र वहाँ विचर सकता है।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि-जब जिनदाढाओंकी आशातनाके लिये निषेध किया है, तो फिर जिन प्रतिमाका तो कहना ही क्या?।

अच्छा, अब तेरापंथी महानुभाव भगवतीसूत्रके दूसरे शतकके पहिले उद्देशेके 'हियाए सुहाए खमाए' इत्यादि

पाठको ले करके यह सिद्ध करनेकी कोशिश करते हैं कि-'सूर्याभदेवने जिन प्रतिमाकी पूजाके निमित्त जो 'हियाए' इत्यादि शब्द कहे हैं, वे संसारके लिये हैं।' परन्तु यह ठीक नहीं है। भगवतीसूत्रके दूसरे शतकके दूसरे उद्देशेमें स्कंदक तापसने, महावीर स्वामीके पास एक दृष्टान्तको ले करके बातकी कि-'जैसे गाथापतिने जलते हुए अग्निमे एक बहुमूल्य पात्र (भांड) निकाला, तब वह विचार करता है कि-यह मुझे हितकारी-सुखकारी-कल्याणकारी तथा आगामी भवमें काम लगेगा। उसी तरह हे प्रभो! मेरी आत्मा एक भांड याने पात्र रूप है। तो जरा-मरणादि जलते हुए लोकसे निस्तारित हुई मेरी आत्मा, हितकारी-सुखकारी-कल्याणकारी तथा परभवमें मुझको लाभकारी होगी।'

इत्यादि पाठसे गाथापतिके स्थानपर खुद हुआ। भांडके स्थानपर अपनी आत्माको स्थापित किया। तथा धनके स्थानपर ज्ञान-दर्शन-चारित्रको स्थापन किया। ऐसे उपमा उपमेयभाव करके उपनय उतारा है। वहाँ स्कंदकजीने आत्माको तारनेमें 'हियाए सुहाए' इत्यादि शब्द कहे हैं। उसी तरह गाथापतिके पाठमें भी 'हिआए सुहाए' इत्यादि शब्द कहे हैं। उन दोनों जगहों पर 'निःश्रेयस' का अर्थ मोक्ष है। परन्तु गाथापतिके पक्षमें 'निःश्रेयस' शब्दका अर्थ द्रव्यमोक्ष करना और स्कन्दकजीके पक्षमें भावमोक्ष अर्थ करना। गाथापति उस भांडके देनेसे छूट गया तथा स्कंदकजी कर्मके देनेसे छूट गये।

वैसे ही शब्द सूर्याभदेवके भी हैं। इसके सिवाय जहाँ सूर्याभदेव, महावीर स्वामीको वंदणा करनेको गये, वहाँ भी

'हियाए' इत्यादि पाठ कहा है। उववाई सूत्रके पृष्ठ १६ में, ठाणांगजीके पृष्ठ १९४ में इत्यादि कई जगहों पर 'हियाए' इत्यादि पाठ शुभ कार्योंमें आया हुआ है। अत एव प्रतिमा पूजा भवान्तरमें सुखकारी है, यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है।

प्रतिमा पूजन करके सीधा मोक्ष नहीं होता है, ऐसा जो तुम (तेरापंथी) कहते हो, इसीसे ही प्रतिमाकी पूजाका स्वीकार हो जाता है। अब रही सीधे मोक्षकी बात। सो तो ठीक है। सीधा मोक्ष नहीं होता है, यह तो हम भी स्वीकार करते हैं। क्योंकि, देखिये, श्रावक पांचवें गुणस्थानकमें होनेसे बारहवें देवलोक पर्यन्त ही जा सकते हैं। और प्रतिमाकी द्रव्यपूजा करनेका अधिकार श्रावकोंका ही है। अत एव सीधा मोक्षका होना कहां रहा? हम पूछते हैं कि–पांचवें गुणस्थानकवाला श्रावक सामायिक-पौषध वगैरह करता है, तो इससे उसका क्या सीधा मोक्ष तुम मानते हो? जब उसका मोक्ष नहीं हो सकता है, तो फिर प्रतिमाकी पूजा करने वालेका क्योंकर हो सकता है?। इसमें कारण यह है कि–अकेले विनयसे, अकेले विवेकसे, अकेले ज्ञानसे, अकेले दर्शनसे तथा अकेले चारित्रसे भी सीधा मोक्ष नहीं हो सकता। परन्तु जिस निमित्तको ले करके सम्यक्त्व दृढ हुआ हो, वह मुक्तिका कारण गिना जाता है। फिर भले ही परंपरासे मुक्ति क्यों न हो?। आर्द्रकुमारको प्रतिमाके दर्शनसे समकित हुआ, ऐसा सूयगडांगसूत्रकी निर्युक्तिमें स्पष्ट पाठ है। निर्युक्तिके माननेका प्रमाण नंदीसूत्र तथा भगवतीसूत्रके पचीसवें शतकमें है, जिसका पाठ प्रश्नोंके उपक्रममें ही दे दिया है।

जिससे परंपरासे मुक्ति हो, ऐसे विनय-विवेक-ज्ञान दर्शन-चारित्र इत्यादि भी प्रमाण ही है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र इन तीनोंके संयोगमें साक्षात् मुक्ति होती है। दर्शनकी निर्मलता भगवान्की आज्ञामें है। भगवान्ने प्रतिदिन प्रभुप्रतिमाके दर्शन नहीं करनेवाले साधु तथा श्रावकोंको प्रायश्चित दिखलाया है। देखिये, नंदिसूत्रमें जिस महाकल्पसूत्रका नाम है, उसी महाकल्पसूत्रमें इस तरहका पाठ हैः—

"से भयवं तहारूवं समणं वा माहणं वा चेइअघरे गच्छेजा? हंता गोयमा! दिणे दिणे गच्छेजा। से भयवं जत्थ दिणे ण गच्छेजा, तओ किं पायच्छित्तं हवेज्जा? गोयमा! पमायं पडुच्च तहारूवं समणं वा माहणं वा जो जिणघरं न गच्छेज्जा तओ छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा।"

अर्थात्—हे भगवन्! किसी जीवको दुःखित नहीं करनेवाला तथारूप श्रमण जिनमंदिरमें जाय?।

हे गौतम! हमेशां—प्रतिदिन जाय।

हे भगवन्! यदी वह हमेशां न जाय तो इससे, उसको प्रायश्चित्त लगे?

हे गौतम? यदि प्रमादका अवलंबन करके तथारूप श्रमण जिनमंदिरमें प्रतिदिन न जाय तो, उसको छट्ठ (दो उपवास) अथवा द्वादश (पांच उपवास) का प्रायश्चित्त लगे।

पाठक देख सकते हैं कि-उपर्युक्त पाठमें खुद भगवान्ने जिनप्रतिमाके प्रतिदिन दर्शन करनेका कैसा हुकम फरमाया

है ? । जो लोग जिनमूर्तिके दर्शन नहीं करते हैं, वे भगवान्की आज्ञाके विराधक हैं, ऐसा कहनेमें क्या किसी भी प्रकारकी अत्युक्ति कही जा सकती है ? । कदापि नहीं ।

प्रश्न—२३ समेगीजी साधुजी महाराज खुद द्रव्यपूजा कीउ नही करते, जो द्रव्यपूजामें धर्म हो तो साधुको अवस्य करणा चाईयैं साधुकू धर्मका काम करणेमें कोई दोस नही है, खास धर्मके वास्ते गर छोडते सो उनको तो इरवगे जीन प्रतिमाकी द्रवपूजा वो भगतीमे रेणा चायै कीउके आप प्रतिमा पूजणेमे धर्म परूपते है ।

उत्तर—बडे आश्चर्यकी बात है कि-प्रश्न पूछनेवालोंको यह भी समझमें नहीं आया की-द्रव्यपूजा करनेमें द्रव्यकी जरूरत होती है या नहीं । और जिसमें द्रव्यकी जरूरत रहती है, वह साधु कैसे कर सकता है ? फिर चाहे भले धर्मका ही हो । जिस कार्यमें द्रव्यकी आवश्यकता होती है, उस कार्यको साधु नहीं कर सकता । क्योंकि, साधुके पास द्रव्यका अभाव ही रहता है । इसके सिवाय द्रव्यपूजनके करने वालेको स्नानादि क्रिया करनेकी जरूरत भी रहती है । देखिये, भगवती सूत्रमें तुंगिया नगरीके श्रावक स्नान-पूजा करके भगवान्को वंदणा करनेके लिये गये हैं । वहाँ पूजाके समय स्नान क्रियाकी जरूरत पडी है । जब साधुको स्नान करनेका, पुष्पादिको छूनेका अधिकार ही नहीं है, तो फिर कैसे प्रभुकी द्रव्यपूजा कर सकते हैं ? । प्रभुकी पूजामें पुष्पादि सचित्त वस्तुओंका उपयोग करना पडता है । देखिये, महाकल्पसूत्रका वह पाठ, जो पहिले प्रश्नके उत्तरमें दे दिया है । व्रतधारी श्रावकोंने प्रभुकी पूजा करते हुए कैसी २ वस्तुएं चढाई हैं ? साधुओंका अधिकार वैसी वस्तुओंको

छूनेका ही नहीं है। जिसका जैसा अधिकार होता है, इससे वैसी ही क्रियाएं होती हैं।

एक स्वाभाविक नियमको देखिये. जिसको जिस जगह फोडा होता है, वह उसी जगह पाटा बांधेगा। निरोग शरीर पर पाटा बांधनेकी आवश्यकता नहीं रहती। वैसे मुनियोंको छकायका कूटा बाकी नही है, इस लिये उनको द्रव्यपूजन करनेकी भी जरूरत नहीं।

'धर्मके करनेमें कोई दोष नहीं है, खास धर्मके लिये घर छोडते हो' यह तुम्हारा (तेरापंथियोंका) कथन तुम्हारी अज्ञानताका ही परिचय दे रहा है।

प्रतिमा पूजनेमें धर्म हम ही नहीं कहते हैं, समस्त तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, उपाध्याय तथा मुनिप्रवर कहते हैं। जब ऐसा ही है, तब तो तुम्हारे हिसाबसे उन सभीको, द्रव्यपूजा करनी कार्यरूप हो जायगी, परन्तु नहीं, वैसा नहीं है। ऊपर कहे मुताबिक जितने पदस्थ अथवा मुनिपद धारक हैं, उनको द्रव्यपूजाका अधिकार नहीं है। भावपूजा याने जो भक्ति है, वही करनेका अधिकार है। देखिये, प्रश्नव्याकरणके पृष्ठ ४१५ में इस तरहका पाठ है:—

"अह केरिसए पुणाइ आराहए वयमिणं? जे से उवहिभत्तपाणादाणसंगहणकुसले अच्चंतबाल-दुब्बलगिलाणवुड्ढमासखमणे पवत्तायारियउवज्झाए सेहे साहम्मिए तवस्सी कुलगणसंघचेइअट्ठे य निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सिअं दसविय बहुविहं करेइ।"

उपर्युक्त पाठमें 'जिन प्रतिमाकी भक्ति करता हुआ साधु निर्जराको करे' ऐसा कहा है। उस नियमानुसार हम लोग

यथाशक्ति प्रभुभक्तिका लाभ लेते हैं । जीवाभिगममें विजयदेवने प्रभुप्रतिमाके आगे १०८ काव्य करके प्रभुकी स्तुति की है। देखिये, वह पाठ पृष्ठ १९१ वें में इस तरह है:—

" जिणवराणं अट्ठसयविसुद्धगंथजुत्तेहिं महाचित्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं संथुणइ संथुणइत्ता सत्तट्ठपयाइं उसरइ उसरइत्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचेइत्ता दाहिणजाणुं धरणितलंसि निहाडेइ "

उपर्युक्त पाठमें, ' पहिले काव्य कह करके सात-आठ कदम जिनप्रतिमासे पीछे हट करके, डाबा गोडा ऊंचा करके तथा जीमणा धरणीतलमें स्थापन करके बहुमानके साथ शक्रस्तव कह करके वंदणा करे,' इत्यादि कहा है ।

उसी तरह वर्तमानकालमें भी मुनिराज, मधुर-सुंदर-नये नये वृत्तवाले काव्य प्रभुके सामने कह करके चैत्यवंदन करते हैं इस लिये याद रखना चाहिये कि-साधुओंका अधिकार भक्ति करनेका है । द्रव्यपूजा करनेका नहीं ।

इसके सिवाय और भी बहुतसे ऐसे कार्य होते हैं कि-जो धर्मके होनेपर भी साधु करते नहीं हैं । क्योंकि-वह उनका अधिकार नहीं है ।

देखिये, साधु सूत्रानुसार दानधर्मका उपदेश देते हैं । किन्तु दान देते नहीं हैं । क्योंकि-उस प्रकारके अशनादिकी सामग्री उनके पास नहीं होती । ढाई द्वीपमें जितने मुनिवर हैं, वे समस्त वंदनीय हैं । तथापि शिष्योंको तथा लघु गुरुभाईओंको एवं दूसरे छोटे साधुओंको वंदणा करते नहीं है । क्योंकि-

व्यवहारसे वैसा अधिकार नहीं है। जहाँ जहाँ जैसा अधिकार होता है, वहाँ वहाँ वैसा ही कार्य करना उचित है।

प्रिय पाठक! तेरापंथियोंके पूछे हुए तेइस प्रश्नोंके उत्तर समाप्त हुए। उनके पूछे हुए प्रश्न कैसे अशुद्ध तथा निर्माल्य थे, पाठक अच्छी तरह देख गये हैं। अस्तु! जब हम तेरापंथियोंके अभिनिवेशकी तरफ ख्याल करते हैं, तब हमें यही विश्वास होता है–कि तइना परिश्रम करनेपर भी उन लोगोंको कुछ भी लाभ होनेवाला नहीं है। और यदि हो जाय तो बडे सौभाग्यकी बात है। खैर, उनको लाभ हो चाहे न हो, परन्तु इतर लोगोंको इससे अवश्य लाभ पहुँचेगा, यह हमें दृढ विश्वास है। बस, इसीमें हम अपने परिश्रमकी सफलता मानते हैं।



पालीके तेरापंथीयोंकी एक और करतूत।

संसारमें ऐसी कहावत है कि-' सो मूर्खोंसे एक विद्वान् अच्छा, जो तत्त्वकी बात या युक्तिको समझ भी तो ले।' हमारे पवित्र जैन धर्मको कलंकित करनेवाले तेरापंथी शास्त्रकी गंधको भी तो जानते ही नहीं हैं, और जहाँ तहाँ विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ करनेको या प्रश्नोत्तर करनेको खडे हो जाते हैं। अस्तु, लेकिन तारीफ तो इस बातकी है कि-इन लोगों को चाहे कितनेही शास्त्रोंके पाठोंसे तथा युक्तियोंसे समझावें, परन्तु ये अपने पकडे हुए पूँछको कभी छोडते ही नहीं हैं। ऐसे आदमियोंसे शास्त्रार्थ करना या वादानुवादमें उतरना क्या है, मानो अपने अमूल्य समयपर छुरी फिराना है। झूठ बोलना असत्य बातोंको प्रकट करना-समझने पर भी अपनी बातको नहीं छोडना और झूठा शोर मचाना, इत्यादि बातोंकी, इन लोगोंने अपने गुरुओंसे ऐसी उमदा तालीम पाई हुई है, कि-मानो इन बातोंके ये प्रोफेसर ही बन बैठे हैं।

अभी इन्हीं दिनोंमें-पाली मारवाडमें हमारे परमपूज्य-प्रातःस्मरणीय आचार्य महाराजके साथ, वहाँके तेरापंथियोंने जो चर्चा की थी, उसका सारा वृतान्त इस पुस्तकमें पाठक पढ चुके हैं। और इन लोगोंने जो तेईस प्रश्नोंका एक असंबद्ध चिट्ठा लिख करके दियाथा, उनके उत्तर भी इसमें अच्छी तरह दे दिये गये हैं। जिस समय, उन्होंने प्रश्न दिये थे, उस समय सबके समक्ष यह निश्चय हुआ था कि-इन प्रश्नोंके उत्तर अखबारके द्वारा दिये जायेंगे। इस नियमानुसार उन प्रश्नोंके उत्तर भावनगरके ' जैन शासन ' नामक अखबारमें छपवाए

गये। इनके प्रश्नोंके उत्तर 'जैन शासन' में समाप्त होनेही नहीं पाये, कि इतनेमें इन तेरापंथियोंने एक आठ-नव पन्नेका ट्रेक्ट निकाल डाला। यह ट्रेक्ट क्या निकाला? मानो इन्होंने अपने आपसे अपनी मूर्खताकी मूर्ति खडी कर दी। जिनको भाषा लिखनेकी भी तमीज नहीं है, वे क्या समझ करके ऐसे ट्रेक्ट निकालते होंगे? अस्तु, भाषाकी ओर ख्याल न करके विषयपर दृष्टिपात करते हैं, तो इसमें मृषावादसे भरी हुई बातोंकाही उल्लेख देखनेमें आता है। जो बातें चर्चाके समयमें हुई थीं, उनको उडा करके नई नई बातें दिखलानेका जादू-प्रयोग खूब ही किया गया है। लेकिन इन लोगोंको स्मरणमें रखना चाहिये कि-तुम्हारी ऐसी झूठी बातोंसे लोग फँसनेवाले नहीं हैं। पचासों आदमियोंके सामने जो बातें हुई थीं, उनको उडादेनेसे तुम्हारी अज्ञानताकी पूँजीही दिखाई देती है। अब आप लोग चाहे जितनी चलाकी करो, कुछ चलनेवाली नहीं है। तुम्हारे इस ८ पन्नोंके ट्रेक्टमें, तेईस प्रश्न भाषासुधार करके प्रकाशित किये हैं। परन्तु हमारे पास तुम्हारा वह लंबा-चौडा चिट्ठा मौजूद है, जिसमें मारवाडी, हिन्दी, गुजराती, फारसी, उर्दु वगैरह भाषाओंकी खिचडी बना करके प्रश्न पूछे हैं। इसके सिवाय इस ट्रेक्टमें, आचार्य महाराजका पालीमें धूमधामसे सामेला हुआ, आचार्य महाराजने लेक्चर दिये, इत्यादि बातोंमें जो तुम्हारे हृदयकी ज्वाला प्रकटकी है, वह भी तुम्हारे द्वेष देवताके ही दर्शन कराती है। परमात्माका सामेला (सामैया) किस प्रकारसे होता था? उस समयके लोग शासनकी प्रभावनाके लिये कैसे २ कार्य करते थे? उन सब बातोंको शास्त्रमें देखो

तो फिर तुम्हे मालूम हो जायगा, कि-इस कालकी अपेक्षा धुरंधर आचार्योंका-पवित्र मुनिराजोंका सामेला (सामैया) गायके मुताबिक हो तो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है ? क्या मुनिराजोंको खोजेके मुडदेकी तरह शहेरमें लाना अच्छा समझते हो ? यदि ऐसाही है, तो यह बात आप लोगोंको ही मुबारक रहे। खुशीसे तुम्हारे साधुओंको उस मुताबिक ले जाया करो।

इन लोगोंके इस ट्रेक्टसे विदित होता है कि-यह ट्रेक्ट सिर्फ सच्ची बातको उडा देनेके लिये ही निकाला है। अगर ऐसा न होता तो वे इसमें इतनी असत्यपूर्ण बातें कभी न लिखते। और चर्चाके विषयमें उन्होंने जो वृत्तान्त लिखा है वह असत्यतासे भरा हुआ है। भवका डर रखनेवाला पुरुष कभी ऐसी ऊटपटांग झूठी बातें प्रकाशित नहीं कर सकता।

शिरेमल श्रावकके साथमें आचार्यमहाराजके वार्तालाप होनेकी बात ८-९ पृष्ठमें लिखी है, वह भी ऐसी ही झूठी है। शिरेमलसे ऐसी बात कभी नहीं हुई है। इस बातकी साक्षी-गवाही पंडित परमानन्दजी वगैरह वेही महानुभाव देसकते हैं, जो उस चर्चाके समय हरसमय उपस्थित रहा करते थे।

पालीके तेरापंथीभाई अपने ट्रेक्टके १६ वें पृष्ठमें लिखते हैं कि-" उपरोक्त तेवीस प्रश्न **मारवाडी भाषा मिश्रित** लिखकर....दिये। " हम पूछते हैं कि-यह मारवाडी भाषाकी **मिश्री** डाली किसमें ? प्रधान एक भाषा भी तो होनी चाहिये। तुम्हारे प्रश्नोंमें खास एक भाषा तो कोई है नहीं। छप्पनमसालेकी दाल जैसे बनाते, वैसे ही बिचारे तेईस प्रश्नोंकी

मिट्टी खराब की है। अच्छा, यह भी कुछ कह सकते हो कि–मारवाडी भाषाकी मिश्री किस लिये डाली ?।

आगे चलकर उसी १६ वें पृष्ठमें लिखा गया है कि–'पालीमें करीब १५ दिनके और ठहरे रहे, कोई विहार नहीं किया, और न प्रश्नोंका उत्तर दिया।'

प्रश्नोंके उत्तर तय्यार करके 'जैन शासन' में क्रमशः छपवानेके लिये भेज भी दिये थे। क्योंकि अखबारके द्वारा ही जवाबोंके देनेका निश्चय किया था। तिसपर भी, उन लोगोंको यह सूचित किया था कि–"अगर तुम्हें जल्दी जवाब चाहिये तो, एक पब्लिक सभा करो, जिसमें पालीके प्रतिष्ठित पंडित तथा राज्यके अमलदार लोग मध्यस्थ बनाए जाँय, और हमारे आचार्यमहाराजश्री तुम्हारे तेईस प्रश्नोंके उत्तर दे दें।" लेकिन इन लोगोंने सभा करनेसे बिलकुल इन्कार किया। इस विषयमें उनके आए हुए रजिस्टर पत्र हमारे पास मौजूद हैं।

अन्तमें इतना ही कहना काफी है कि–इन लोगोंने, अपने ट्रेक्टमें मृषावादकी मात्रासे भरी हुई बातें प्रकाशित की हैं। इस लिये इनके ऊपर किसीको विश्वास नहीं रखना चाहिये। इन लोगोंका यह स्वभाव ही है कि–झूठी २ बातोंको प्रकाशित करके अपने ढाँचेको खडा रखना। परन्तु स्मरणमें रखना चाहिये कि–निर्मूल, निर्मूल ही है। और निर्मूल वस्तु कभी ठहर नहीं सकती। अस्तु, इस विषयको अब यहाँ ही समाप्त किया जाता है। आशा है ये लोग बुद्धिमत्तासे विचार करके तत्त्वकी बातको ग्रहण करेंगे।

तेरापंथियोंसे ७५ प्रश्न.

१ 'तेरापंथी' ऐसा कहनेमें तुम्हारे पासमें शास्त्रीयप्रमाण क्या है? कदाचित् ऐसी ही कल्पना करोगे कि-तेरह मनुष्य निकले थे, इस लिये 'तेरापंथ' कहते हैं, तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि-तेरहमेंसे सातोंने तो तुम्हारा साथ छोड ही दिया था, तो फिर तुमको 'छपंथी' क्यों न कहा जाय?।

२ इतिहाससे तुम्हारे मतको प्राचीन सिद्ध कर सकते हो? अगर कर सकते हो तो कर दिखलाओ।

३ 'बत्तीस ही सूत्र मानने, अधिक नहीं,' यह बात कौनसे सूत्रमें लिखी है?। तथा तुम्हारे माने हुए बत्तीस सूत्रोंमें, दूसरे जिन २ सूत्रोंके नाम आते हैं, उन २ सूत्रोंको क्यों नहीं मानते?।

४ 'महावीर स्वामी चूके' ऐसा अपने आपसे कहते हो? या किसी सूत्रमें भी कहा है? सूत्रमें कहा हो तो, उस सूत्रके नामके साथ पाठ दिखलाओ।

५ सालमें दो दफे पाटमहोत्सव करते हो, यह विधि कौनसे सूत्रमें लिखी है?।

६ तुम्हारे साधु दो-ढाई हाथका ओघा रखते हैं, यह किस सूत्रके कौनसे पाठके आधारसे रखते हैं?

७ तुम्हारे पूज्यके पाट-पट्ट साध्वियाँ बिछाती हैं, यह किस जैनसूत्रके आधारसे?।

८ तुम्हारे साधु, साध्वियोंके पास गोचरी मँगवाकर आहार करते हैं, यह कौनसे सूत्रके आधारसे?।

९ तुम्हारे साधु, हलवाईयोंकी कडाइ वगैरहके धोए हुए, गृहस्थोंके रसोईके बरतणोंके धोए हुए पानीको, जिसमें असंख्य जीव उत्पन्न हुए होते हैं, लेते हैं यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१० तुम्हारे साधु, अनारके दाने वगैरह सचित्त फलोंको खाते हैं यह किस सूत्रके आधारसे ?।

११ तुम्हारे साधु, विहारमें गाँव २ साध्वियोंको साथ रखते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१२ तेरापंथी साधु, गृहस्थोंके बालकोंको विद्या पढानेसे रोकते हैं, इसका क्या कारण है ?।

१३ तुम्हारे साधु, गृहस्थोंको इस प्रकारकी बाधा देते हैं कि–' हमारे सिवाय दूसरे साधुओंको आहार–पानी न देना ' यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१४ तुम्हारे साधु. रात्रीको पानी नहीं रखते हैं, तो फिर कभी बडीनिति (जंगल) जाना पडे, तो अशुद्ध जगहको साफ कैसे करते हैं ? अगर कहोगे कि–मूत्रसे साफ करते हैं, तो ऐसा करना किस सूत्रमें कहा है ?।

१५ तुम्हारे साधु, गृहस्थोंका झूठा आहार तथा झूठा पानी ले करके खाते–पीते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१६ तुम्हारे साधु, रात्रीके दस २ बजे तक गृहस्थनियोंको उपदेश देते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१७ तुम्हारे साधु स्थानकमें लाई हुई वस्तुको ग्रहण करते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१८ खानेकी वस्तुएं रात्रीको रखना, यह साधुके लिये किस सूत्रमें कहा है ?।

१९ दुःखी जीवको, दुःखसे मुक्त नहीं करना, ऐसा किस सूत्रमें कहा है ? ।

२० जीवको मारनेमें एक पाप और छुडानेमें अठारह पाप लगते हैं, ऐसा किस सूत्रमें कहा है ? ।

२१ तुम्हारे किसी साधुकी आँखोंका तेज कम होजाय, तो वह चश्मा रक्खे या नहीं ? अगर नहीं रक्खेगा, तो जीव-दया कैसे पालेगा ? । चश्मा नहीं रखना, ऐसा किस सूत्रमें कहा है ? ।

२२ तुम्हारे साधु, निरन्तर मूँहपर कपडा बांधे रहते हैं, इसका क्या कारण है ? इस तरह मूँह छिपा रखनेकी किस सूत्रमें आज्ञा दी है ? ।

२३ मुहपत्तीमें दोरा रखनेका किस सूत्रमें फरमाया है ? ।

२४ कुष्टेका गद्दी-तकिया जैसा बना करके, ऐश-आराम करना, यह किस सूत्रमें कहा है ? ।

२५ रात्रीके पडे हुए कपडोंकी पडिलेहणा साध्वियोंसे करानी, यह किस सूत्रमें कहा है ? ।

२६ साध्वियोंको पडदेके अन्दर लेजाकरके आहार करना, यह किस सूत्रमें कहा है ? ।

२७ प्रातःकालमें उठ करके, साधुओंने मक्खन तथा मिश्री खाना, यह किस सूत्रका फरमान है ? ।

२८ साधु होकरके दिनभर चिकनी सुपारी खाया करना, यह किस सूत्रमें कहा है ? ।

२९ पुस्तकादिका बोझा साध्वियोंसे उठवाना, यह किस सूत्रमें कहा है ? ।

३० हाथ पैर साध्वियोंसे धुलवाना यह किस सूत्रमें कहा है ?।

३१ गृहस्थानियोंके साथ, एकान्तमें बातें करना, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

३२ तुम्हारे साधु, अपने दरशन करानेकी, गृहस्थोंको बाधा देते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे देते हैं ?।

३३ तुम्हारे साधु, पोथी पुस्तक रखते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

३४ तुम्हारे साधु, पात्रको रंग—रोगन लगाकर रंग-बिरंगी बनाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

३५ तुम्हारे साधु, एक माससे अधिक रहते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

३६ महाजन (बनिये) के सिवाय दीक्षा नहीं देना, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

३७ तुम्हारे साधु, दो दो महीने पहिलेसे चौमासा करनेको कह देते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे ?।

३८ तुम्हारे साधु, दवाई लेकरके उसकी फीस गृहस्थोंसे दिलवा देते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे ?।

३९ ओसवालोंके सिवाय, और किसीको पूज्य नहीं बनाते हो, यह किसी सूत्रके आधारसे ?।

४० तुम्हारे साधु भिक्षाके समयके पहिलेसे ही गली-महल्लोंको सूचना करवा देते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

४१ साध्वियोंसे सूत्र बंचवाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

४२ साधु होकरके किंवाड खोले या गृहस्थोंसे खुलवावे और उसके अन्दरकी वस्तुएं ग्रहण करे, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

४३ तुम्हारे साधु, अंधेरेमें ही (४-५ बजे) गृहस्थनियोंसे वंदणा करवाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

४४ तुम्हारे साधु, गृहस्थनियोंसे दिनमें भी सेवा करवाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

४५ तुम्हारे साधु, मृतकवालेके घर जा करके दर्शन देते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

४६ तुम्हारे साधु, गृहस्थके घर जा करके व्याख्यान सुनाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे सुनाते हैं ?।

४७ तुम्हारे साधु, एक ही घरसे जी चाहे उतनी रोटियां लेते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

४८ तुम्हारे साधु, एक एक दिनके अन्तरसे, गृहस्थके घरसे आहार लेते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

४९ तुम्हारे पूज्य, अपने कपडे साध्वियोंसे सिलाते हैं, ओघा बनवाते हैं, कपडे धुलवाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

५० साध्वियोंको बजारमें दो दुकानोंके बीचमें चौमासा-मासकल्प कराते हो, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

५१ तुम्हारी साध्विएं पाट-पट्टों पर बैठकर पर्षदाके बीचमें व्याख्यान देती हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

५२ तुम्हारे मृतसाधुको १ मुहूर्त अपनी निश्रामें रखते हो, गृहस्थोंसे वंदणा करवाते हो, और वह बडी दीक्षावाला

हो सो छोटी दीक्षावाला साधु, उसको वंदणा करता है, यह सब विधि किस सूत्रमें कही है ? ।

५३ ' भीखमजी, पांचवें देवलोकके ब्रह्म नामक इन्द्र हुए' ऐसे कहते हो, तो यह बात किस सूत्रमें कही है ? ।

५४ तुम्हारे साधु, पुस्तक बनाकरके छपवाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ? ।

५५ साधुओंके लिये, सूत्रमाल लेते हो, और साधुओंको देतेहो यह किस सूत्रकी आज्ञा है ? ।

५६ तुम्हारे साधुओंको खानेका सामान ऊंटपर लाद लाद करके लेजाते हो, सामने जाकरके साधुओंको आहार देते हो, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ? ।

५७ तुम्हारे साधु आधाकर्मी आहार लेते हैं, क्योंकि जब तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेको जाते हो, तब नानाप्रकारकी चीजें बनाकर बेहराते हो, यह किस सूत्रकी आज्ञासे करते हो?।

५८ जिस समय तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेको जाते हो, तब मिश्री-घेबर-लड्डु वगैरह बाँटते हो, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ? ।

५९ जब तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेको जाते हो, तब सगे-संबन्धियोंको जिमाते हो-आरंभ समारंभके कार्य करते हो, इसका दोष तुम्हारे पूज्यको लगता है कि नहीं ? अगर नहीं लगता है तो सूत्रका पाठ दिखलाओ ।

६० जब तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेको जाते हो, तब वहीं लडके-लडकियोंको देख करके आपसमें सगाई करते हो, तो इसका दोष तुम्हारे पूज्यको क्यों न लगना चाहिये ?

६१ तुम्हारे साधुओंके मलीन कपडोंमें जब जूएं पडती हैं, तब वे निकाल निकाल करके पैरोंमें पाटे बाँध करके उसमें रखते हैं, तो ऐसा करनेको किस सूत्रमें कहा है ? ।

६२ तुम्हारे साधु उष्णकालमें कोरी हांडीमें पानी ठंडा करके पीते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ? ।

६३ जिन सीमंधरस्वामीके सामने आप लोग क्रिया करते हो, उन सीमंधरस्वामिका नाम, तुम्हारे माने हुए बत्तीस सूत्रोंमेंसे किस सूत्रमें है ? ।

६४ तुम्हारे साधु, स्याही–कलम–कागज पासमें रखते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ? ।

६५ तुम्हारे साधु, तीन २ पात्र रखते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ? ।

६६ तुम्हारे साधु, गृहस्थका बुलावा आनेसे फोरन पात्र उठाकरके जाते हैं और आहार ले आते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ? ।

६७ तुम्हारे साधु अपने पास बैठ करके सामायिक करनेकी बाधा देते हैं, यह किस सूत्रमें कहा है ? ।

६८ तुम्हारे मतके उत्पादक भीखुनजी किस गण–कुल संघ (गच्छ) में हुए हैं, यह प्रमाणके साथ दिखलाओ ।

६९ तुम्हारे मतके उत्पादक भीखुनजीने, अग्निको बुझानेमें और कसाईको मारनेमें एक जैसा पाप दिखलाया है, यह किस सूत्रके आधारसे ? ।

७० तुम्हारे साधु, स्त्री–पुरुष इत्यादिके अनेक प्रकारके चित्र रंगी–बेरंगी अपने हाथोंसे लिख करके पानासे पुंठ भरते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ।

७१ तुम्हारे साधु-साध्वि रात्रिके दश-दश-ग्यारह बजे तक चिल्ला २ करके ऊंच स्वरसे गाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

७२ तुम्हारे साधु, एक दिन गृहस्थके घरके भीतरके चोकमेंसे आहार लें, दूसरे दिन, उसी घरके बाहरके चौकमेंसे आहार लें, यह सब विधि किस सूत्रमें दिखलाई है ?।

७३ तुम्हारे साधु, कच्चा जल पशुका झूठा किया हुआ लेते हैं, यह किस सूत्रके फरमानसे लेते हैं ?।

७४ तुम्हारे साधु, जब ठंडिल (जंगल) जाते हैं, तब अनेकों श्रावक 'खमा' 'घणीखमा' का चिल्लाहट करते हुए साथ जाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

७५ तुम्हारे साधु, राखका पानी पीते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे पीते हैं ?।

इति शम् ।

समाप्त.



श्रीः ।

कालज्ञानम् ।

मथुरानिवासिमाथुरदत्तरामरचितमाथुरी-
भाषाटीकासमेतम् ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें

मुद्रितकर प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९६०, शके १८२५.

॥ श्रीः ॥

अथ कालज्ञानभाषाटीकाकीविषयानुक्रमणिका ।

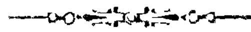
छायापुरुष ।

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीः ।

अथ कालज्ञानम् ।

भाषाटीकासमेतम् ।



कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं शंभुना स्वयम् ।
येन विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥

अर्थ—अब हम कालज्ञानको कहते हैं । जो साक्षात् श्री शिवने कहाहै । जिसके जानने मात्रसेही यह मनुष्य त्रिकालज्ञ अर्थात् भूत भविष्य और वर्त्तमानका जाननेवाला होता है ॥

कालेन सृजते ब्रह्मा कालेन हरते हरः ।
कालेन पाल्यते विष्णुस्तस्मात्कालं च चिंतयेत् ॥

अर्थ—अब कालको मुख्यत्व दिखाते हैं—जैसे कि, ब्रह्मा कालकरके सृष्टिको रचे हैं, श्रीरुद्र संहार करे हैं और विष्णु उसी कालकरके जगत्का पालन करते हैं अत एव वैद्य कालको चिंतवन करे ॥

कालज्ञानं कलायुक्तं शम्भुना यच्च भाषितम् ।
येन षण्मासतो मृत्युः पूर्वं ज्ञायेत रोगिणाम् ॥

अर्थ—श्रीशिवका कहा कलायुक्त (शक्तिसहित अथवा छलयुक्त) कालज्ञान जिसके जाननेसे छःमहीने पहिले रोगियोंकी मृत्युको वैद्य जानसकता है [उसको कहते हैं] ॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति तस्मात्कालं च चिंतयेत् ॥

अर्थ—कालही प्राणियोंको उत्पन्न और संहार करता है, तथा प्राणियोंके सोनेपरभी काल जागता रहता है । अत एव कालको चिंतवन कर ॥

काले देवास्तथा नागा यक्षाश्चासुरपन्नगाः ।
विद्याधरा मनुष्याश्च सर्वे नश्यंति कालतः ॥

अर्थ—कालमें देव, नाग, यक्ष, असुर, पन्नग, विद्याधर और मनुष्य सर्व नष्ट होते हैं ॥

विरंचिदिनमध्ये तु पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश ।
सोऽपि चाब्दशतांते तु स्वयं कालेन नश्यति ॥

अर्थ—जिसके १ दिनमें चौदह इन्द्र पतन होते हैं ऐसाभी ब्रह्मदेव सौ वर्षके अन्तमें कालकरके स्वयं नष्ट होता है ॥

मानुषस्तु शतंजीवी पुरा वेदेषु भाषितम् ।
सोपि कालप्रभावेण विनश्यति न संशयः ॥

अर्थ—वेदमें यह लिखा है कि, मनुष्य सौ वर्ष जीता है परंतु वह सौ वर्षके उपरांत कालके प्रभावकरके नष्ट होता है ॥

वर्षा शीतं तथा चोष्णं प्रत्यूषं मध्यमं दिनम् ।
अपराह्णं तथा नक्तं रूपं कालस्य कथ्यते ॥

अर्थ—वर्षा, शीत, गरमी, प्रातःकाल, मध्याह्न, अपराह्न तथा

रात्रि ये कालकेही रूप हैं अर्थात् इन्हींमें यह जीव मरताहै ॥

काले फलंति तरवः काले बीजं प्ररोहति ।
काले पुष्पवती नारी सर्वं कालेन जायते ॥

अर्थ-कालमें वृक्ष फलते हैं । कालमें बीज उपजता है । कालमें स्त्री रजोदर्शवती होती है । एवं यावन्मात्र वस्तु हैं सब कालकरके होती हैं ॥

कालेऽशनं च तोयं च काले मेघः प्रवर्षति ।
काले कर्म समुद्दिष्टं विपरीतं न शोभनम् ॥

अर्थ-कालमें भोजन पान होता है, मेघ वर्षता है और जिसकालमें जो कर्म करना कहा है, उसमें करनेसे शुभ होता है और विपरीत करनेसे शुभ नहीं है ॥

कालाग्निर्जठरे जातस्तस्य वाञ्छा चतुर्विधा ।
आहारमुदकं निद्रा कामश्चैव चतुर्थकः ॥

अर्थ-जब कालाग्नि उदरमें होतीहै तब उसप्राणीकी इच्छा चार प्रकारकी होती है भोजन,जल,निद्रा और चौथा कामदेव ॥

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्षं व्योमपञ्चकम् ।
स्वदेहे यो न जानाति कथं वैद्यः स उच्यते ॥

अर्थ-जो वैद्य अपनी देहमें स्थित छः चक्र सोलह आधार और तीनलक्ष व्योमपंचकको नहीं जाने उसको वैद्य किसप्रकार कहना चाहिये? ॥

तत्रादौ षट्चक्राण्याह ।

प्रथमं ब्रह्मचक्रं तु लिंगचक्रं द्वितीयकम् ।
तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकम् ॥
पंचमं कंठचक्रं तु भ्रुवोर्मध्ये तु षष्ठकम् ।
एतानि षट्च चक्राणि यो जानाति स वैद्यराट् ॥

अर्थ—अब छः चक्रोंको कहतेहैं—ब्रह्मरंध्र अर्थात् कपाल प्रथमचक्र है, दूसरा लिंगचक्र, तीसरा नाभिचक्र, चतुर्थ हृदय चक्र, पंचम कंठचक्र और भौंहोंके बीचमें छठा चक्रहै; इन छः चक्रोंको जो जानता है वह वैद्योंका राजा है ।

मतान्तर ।

प्रथमं कपाटचक्रं ज्योतिश्चक्रं द्वितीयकम् ।
तृतीयं नाभिचक्रं तु हृदि चक्रं चतुर्थकम् ॥
पञ्चमं नासिकाचक्रं गुदचक्रं तु षष्ठकम् ।
एतानि षट् च चक्राणि यो वेत्ति स तु वैद्यभाक् ॥

अर्थ—मतांतरसे कहते हैं-प्रथम कपाट (वक्षःस्थल) चक्र-है, दूसरा ज्योतिः (प्राण) चक्र है, तृतीय नाभिचक्र, हृदय-चक्र चौथा, पाँचवा नासिकाचक्र और गुदाचक्र छठा इन छः चक्रोंको जो जानताहै वह वैद्यशब्दका भागी है ॥

अथ षोडशाधाराण्याह ।

अहंकारो मनो बुद्धिश्चित्तं कारणमेव च ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥

पृथ्वी आपश्च तेजश्च वायुराकाश एव च ।
ज्योतिरूपं च तत्रैव षोडशाधार उच्यते ॥

अर्थ—सोलह आधार येहैं—जैसे १ अहंकार, २ मन, ३ बुद्धि, ४ चित्त, ५ कारण, ६ प्राण, ७ अपान, ८ समान, ९ उदान, १० व्यान, ११ पृथ्वी, १२ जल, १३ तेज, १४, वायु, १५ आकाश और १६ ज्योतिरूपजीव, ये इस देहमें सोलह आधारहैं ॥

त्रिलक्षाण्याह ।

ऊर्ध्वलक्षं भवेत्तालौ मध्यलक्षं भवेद्धृदि ।
अधोलक्षं भवेन्नाभ्यां लक्षातीतं निरञ्जनम् ॥

अर्थ—तालुएमें ऊर्ध्वलक्ष (जानने योग्य) है । हृदयमें मध्यलक्ष है और नाभिमें अधोलक्षहै परंतु जो लक्षमें न आवे एसा निरंजन (परमात्मा) है ॥

एकस्तंभं नवद्वारं त्रिशून्यं पञ्चदेवता ।
पञ्चेन्द्रियकुटुंबेषु यत्रात्मा तत्र मे गृहम् ॥

अर्थ—एकस्तंभ (अहंकाररूपखंभ) नवद्वार (नेत्र नासिका आदि नौ दरवाजे) तीनशून्य, (रज-सत्त्व-तम) पंचदेवता (पंचतत्त्वदेवरूप) और पंचइन्द्रिय सोई हुआ कुटुम्ब इनमें जहाँ आत्मा है वही मेरा घर है, ये व्योमपंचक हुए ॥

एकविंशतिसहस्राणि षट्शतान्यधिकानि च ।
निशाह्ने चलते प्राणः सोऽपि स्तंभोऽत्र कथ्यते ॥

अर्थ—२१६०० इक्कीस हजार छःसौ श्वास इस प्राणिके दिनरातमें चलते हैं इसको रवंभभी कहते हैं ॥

आत्मा शरीरमित्युक्तमन्तरात्मा मनो विदुः ।
परमात्मा भवेत्प्राणः पञ्च तत्त्वानि धारयेत् ॥

अर्थ—शरीरको आत्मा, मनको अन्तरात्मा और प्राणोंको परमात्मा कहते हैं, येही पंचतत्त्वोंको धारण करते हैं ॥

कायानगरमध्ये तु प्रतोली शून्यवद्भवेत ।
नरेन्द्रो गच्छते तेन तत्पुरं शून्यकं भवेत ॥

अर्थ—देहरूप नगरमें नस नाडी और इन्द्रिय आदि जो गली हैं ये शून्य होजातीहैं अर्थात इनके कार्य बंद होजातेहैं तब प्राणरूप राजा उस गलीमें होकर निकलजाता है, तब यह देहरूप पुर शून्य होजाता है ॥

स्वरोदयमतात् ।

कायानगरमध्ये तु मारुतो रक्षपालकः ।
प्रवेशो दशभिः प्रोक्तो द्वादशाङ्गुलनिर्गमः ॥

अर्थ—अब स्वरोदयके मतमें कालज्ञानको कहतेहैं कि, इस देहरूप नगरमें श्वासरूप पवनही रखवालीवाला है उसका १० अंगुल करके प्रवेश और बारह अंगुल निर्गम कहाहै इससे न्यूनाधिक अरिष्ट होनेका चिह्न है ॥

उदयं सूर्यमार्गेण चन्द्रेणास्तमयं यदि ।
ददाति गुणसंघातं विपरीतं विनाशकृत ॥

अर्थ—स्वरका उदय नासिकाके दहने मार्गमें हो और बाममार्गमें अस्त होवे तो अत्यन्त गुणदाता इससे विपरीत हो अर्थात् बाम स्वरसे उदय और दहने स्वरमें अस्त होवे तो विनाश करता है ॥

संपूर्णं वहते सूर्यः सोमश्चैव न दृश्यते ।
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥

अर्थ—यदि सदैव दहना स्वर चले, बाम स्वर कभी चले नहीं उस प्राणीकी १५ दिनमें मृत्यु हो यह कालज्ञानमें कहा है ॥

मासश्चैव तु षण्मासः पक्षश्चैव त्रिमासकः ।
पंचरात्रिर्वहेद्यस्यैकस्य मृत्युर्न संशयः ॥

अर्थ—जिस प्राणीका एकही स्वर एक महीने वा छः महीने वा एक पक्ष तथा तीन महीने वा पाँच रात बराबर चले उसकी निस्संदेह मृत्यु हो ॥

शुक्लपक्षे वहेद्वामं कृष्णपक्षे च दक्षिणम् ।
उभयोस्त्रीणि दिवसं दृश्यते चंद्रसूर्ययोः ॥

अर्थ—शुक्लपक्षमें प्रथम वामस्वर चलता है और कृष्णपक्षमें दहनास्वर, एवं शुक्ल-कृष्ण-पक्षोंमें चंद्र और सूर्य दोनों स्वर तीन २ दिन चलते हैं ॥

पञ्चभूतात्मकं दीपं चन्द्रस्नेहेन पूरितम् ।
रक्षेच्च सूर्यवातेन तेन जीवः स्थिरो भवेत् ॥

अर्थ—यह पंचभूतात्मक देहरूप दीपक चंद्रस्वररूप तेलमे

भराहुआ है, इसको सूर्यस्वरूप पवनसे रक्षा करनी चाहिये तो यह जीव स्थिर रहै ॥

आत्मादीपः सूर्यज्योतिरायुःस्नेहः कलात्मकः ।
कायाकज्जलसंसारे वृत्तिरेखा तनोर्मता ॥

अर्थ—आत्मरूप दीपक, सूर्यस्वरूप ज्योति, आयुरूपी तेल भरा है, इसमें कायारूपी कज्जल है और इस संसारमें इस प्राणीकी वृत्ति है वोही इस देहकी रेखा कही है ॥

अरुंधतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ।
आयुर्हीना न पश्यंति चतुर्थं मातृमंडलम् ॥

अर्थ—अरुंधती, ध्रुव और विष्णुके त्रिपद (श्रवणनक्षत्रके तीन तारे) एवं चतुर्थ मातृमंडल (कृत्तिकाके छः तारे) इनको हीनायु मनुष्य नहीं देखते ॥

अरुंधती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ।
विष्णुस्तु भ्रूद्वयोर्मध्ये भ्रूद्वयं मातृमंडलम् ॥

अर्थ—इस कालज्ञानमें अरुंधती जीभको कहते हैं और नासाका अग्रभाग है वेही ध्रुवका तारा है । दोनों भौंहका बीच है वही विष्णुपद हैं और दोनों भौंहको मातृमंडल कहते हैं अर्थात् मरणासन्न मनुष्य इनको नहीं देखसकता ॥

अक्षैर्लक्षितलक्षणेन पयसा पूर्णेन्दुना भानुना
पूर्वादक्षिणपश्चिमोत्तरदिशां षट्त्रिद्विमासैककम् ।

छिद्रं पश्यति चेत्तदा दशदिनं धूम्राकृतिं पश्चिमे ।
ज्वालां पश्यति सद्य एव मरणं कालोचितज्ञानिनाम् ॥

अर्थ—जो रोगी जलमें सूर्य अथवा चंद्र इनके प्रतिबिंबमें पूर्वकी ओर या दक्षिणकी या पश्चिम अथवा उत्तरकी तरफ छिद्र देखे तो क्रमसे छः, तीन, दो और एक इतने महीने बचे और सूर्यचंद्रका धूम्रवर्ण देखै तो दशदिन और उस प्रतिबिंबके पश्चिमकी तरफ ज्वाला देखै तो तत्काल मरण हो। यह कालज्ञानके जाननेवालोंने कहा है ॥

मरणमें अरिष्टको मुख्यत्व।

पुष्पं यथापूर्वरूपं फलस्येह भविष्यतः ।
तथा लिंगमरिष्टाख्यं पूर्वरूपं मरिष्यतः ॥
अप्येव तु भवेत्पुष्पं फलेनाननुबंधि यत् ।
फलं चापि भवेत्किञ्चिद्यस्य पुष्पं न पूर्वजम् ॥

अर्थ—जैसे पुष्प होनेवाले फलका बोधक अर्थात् वृक्षमें फूलके आनेहो अनुमानद्वारा निश्चय होता है कि, अब इसमें फलभी आवेगा उसीप्रकार अरिष्टलक्षण (निश्चय मरणसूचक चिह्न) द्वारा भावी (होनहार) मृत्युका निश्चय होता है। अनेक पुष्पोंमें फल नहीं आते हैं, इसीप्रकार कोई २ पुष्पके विनाभी होते हैं (जैसे गूलर—पीपरमें) ॥ परन्तु—

न त्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते ।
मरणं चापि तन्नास्ति यन्नारिष्टपुरःसरम् ॥

मिथ्यादृष्टमरिष्टाभमनरिष्टमजानता ।
अरिष्टं चाप्यसंबुद्धमेतत्प्रज्ञापराधजम् ॥

अर्थ—परन्तु अरिष्टचिह्नके होनेसे अवश्य मृत्यु होवै । वह मृत्युही नहीं जिसमें प्रथम अरिष्ट लक्षण उपस्थित न हो । अनेक जगह ऐसा बोध होता है कि, अरिष्टलक्षण हुए हैं और रोगीकी मृत्यु नहीं हुई और कहीं २ मृत्यु होगई, परंतु मृत्युके पूर्व कोई अरिष्टचिह्न दृष्टि नहीं आये । परन्तु ऐसा बोध भ्रमात्मक है इसमें कोई सन्देह नहीं है । जिसको वैद्य अरिष्ट जानता है वह प्रकृति अरिष्टचिह्न नहींथा अज्ञानसे उसको ऐसा भ्रम होगया ॥

तानि सौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वा तथैवाशु व्यतिक्रमात् ।
गृह्यन्ते नोद्गतान्यज्ञैर्मुमूर्षुर्न त्वसंभवात् ॥
असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन्गतायुषः ।
अतोरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ—किसी २ मृत्युके पूर्व अरिष्टलक्षण संपूर्ण जाननहीं जाते इसका यह कारण है कि, ये उक्तलक्षण समस्त जो हैं वो अत्यन्त सूक्ष्म (बारीक) रूपसे उठतेहैं अथवा जल्दी २ एक लक्षणके होनेपर दूसरा लक्षण होने लगता है । उसका अनुमान मरनेवाले रोगीको नहीं होता अथवा जैसे ये अरिष्टका ज्ञानहो ऐसा विशेष मनको नहीं लगाता । इसीसे यथार्थ ज्ञान नहीं होता, इसीसे यह निश्चय हुआ कि, मृत्युके पूर्व ये अरिष्टलक्षण अवश्य

उत्पन्न तो होतेहैं, परन्तु उस समय यह निश्चय नहीं करता । इसमें निश्चय नहीं होनेका कारण अज्ञानता अथवा यथार्थ निश्चयात्मक मनका न लगाना मात्र है ॥

गतायुमनुष्यकी चिकित्सा करनेसे अवश्य व्यर्थ परिश्रम होना है [अर्थात उसको यश और धन इनमेंसे किसी वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती] अत एव वैद्यको समस्त अरिष्ट लक्षणोंका जानना अति आवश्यक है ॥

अथातः पञ्चेन्द्रियार्थविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब पंचेन्द्रियार्थविप्रतिपत्ति अध्यायकी व्याख्या करेंगे–

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतिर्विकृतिर्भवेत् ।
तत्त्वरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे ॥

अर्थ–जिस प्राणीके शरीर मानसिक स्वभाव और प्रकृति ये तीनों पलटजावें वे मरणके लक्षणहैं । यह मैंने संक्षेपसे कहा अब इनको हे वत्स ! तू विस्तारसे सुन ॥

कर्णेन्द्रियकी विकृति।

शृणोति विविधाञ्छब्दान्यो दिव्यानामभावतः ।
समुद्रपुरमेघानामसंपत्तौ च निःस्वनम् ॥
तान्स्वनान्नावगृह्णाति मन्यते चान्यशब्दवत् ।

ग्राम्यारण्यस्वनांश्चापि विपरीताञ्छृणोत्यपि ॥
द्विषच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति ।
न शृणोति च योऽकस्मात्तं ब्रुवंति गतायुषम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य विविधशब्द (बोलना, पाठ, गीत, बाजे आदि) और दिव्य (सिद्ध, गंधर्व, किन्नर, आदिके) तथा समुद्र, पुर, मेघ, आदिके न होनेपर इनका शब्द सुने. अथवा इन समुद्रादिके होनेपरभी इनका शब्द न सुने. अथवा इनके शब्दको औरही शब्दके समान सुने, तथा ग्रामके शब्दोंको वनके शब्दसमान सुने और वनके शब्दोंको ग्रामके शब्द समान सुने, एवं शत्रुके वाक्यमें प्रीति करे और माता, पिता, भाई मित्रादिके शब्दको सुनकर कुपितहो. अथवा सुनते २ अकस्मात न सुने उसप्राणिको गतायु (मरणासन्न) जानना ये कर्णेन्द्रियके चिह्न कहे ॥

त्वचाकी विकृति ।

यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ।
संजातशीतपिडको यश्च दाहेन पीड्यते ॥
उष्णगात्रोऽतिमात्रं च यः शीतेन प्रवेपते ।
प्रहारान्नाभिजानाति योऽङ्गच्छेदमथापि वा ॥
पांशुनेवावकीर्णानि यश्च गात्राणि मन्यते ।
वर्णान्यभावो राज्यो वा यस्य गात्रे भवंति हि ॥

स्नातानुलिप्तं यश्चापि भजंते नीलमक्षिकाः ।
सुगंधिर्वाति योऽकस्मात्तं वदंति गतायुषम् ॥

अर्थ—अब रोगीके स्पर्शकी विप्रतिपत्ति (विपरीतता) दिखाते हैं कि, जो मनुष्य शीतलवस्तुको गरमके समान ग्रहण करे और गरमवस्तुको शीतलके समान, एवं शीतपिडिका देहमें होनेपरभी दाहके मारे पीडितहो । जिसका देह गरमहो परन्तु मारे शीतके थरथर कांपै और लकडी तलवार आदिकी चोट लगनेको तथा अंग कटजानेकोभी न जाने, एवं जो अंगोंको धूलसे आच्छादित माने, तथा देहका वर्ण पलटजावे अथवा जिसके देहमें काली, लाल, रूखा होजावे एवं तत्काल स्नान करा हो और चन्दनादि लेपभी कर रक्खा हो इसप्रकार सुगंधितदेहवालेके देहमें नीलीमक्खी चारोंतरफसे आनकर बैठें, तथा जिसकी देहमें अकस्मात् सुगन्ध आने लगे तो १ वर्षमें अवश्य मरे ॥

विपरीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् ।
उपयुक्ताः क्रमाद्यस्य रसा दोषाभिवृद्धये ॥
यस्य दोषाग्निसाम्यं च कुर्युर्मिथ्योपयोजिताः ।
यो वा रसान्न संवेत्ति गतासुं तं प्रचक्षते ॥

अर्थ—जो मनुष्य खट्टेरसको मीठा और मीठेरसको खट्टा इसीप्रकार सर्व रसोंको विपरीत जाने और क्रमपूर्वक सेवन करेहुएभी मधुरादिरस दोषोंको बढावे और जो जो वैपरीत्यसे

सेवन करे हुए रस दोष और अग्निको समानता करे (अर्थात हितकारी पदार्थ उपद्रव करे और उपद्रवकारी पदार्थ जिसको हितहो) तथा जो अन्नके रसको न जाने उसको गतआयु जानना यह एक महीनेमें मरे ॥

सुगंधं वेत्ति दुर्गंधं दुर्गंधस्य सुगंधिताम् ।
यो वा गंधान्न जानाति गतासुं तं विनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—जो मनुष्य सुगंधको दुर्गंध और दुर्गंधको सुगंध समझे अथवा जो सुगंध और दुर्गंध किसीको न जाने उसे गतप्राण जानना यभी एकमहीनेमें मरता है ॥

द्वंद्वान्युष्णहिमादीनि कालावस्थादिशस्तथा ।
विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ॥
दिवाज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ।
रात्रौ सूर्यं ज्वलंतं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् ॥
अमघोपप्लवे यश्च शक्रचापतडिद्गणान् ।
तडित्वतोऽसितान्यो वा निर्मले गगने घनान् ।
विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलमंबरम् ॥
यश्चानिलं मूर्तिमंतमन्तरिक्षं च पश्यति ।
धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥
प्रदीप्तमिव लोकं च यो वा प्लुतमिवाम्भसा ।
भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥
न पश्यति सनक्षत्रां यश्च देवीमरुंधतीम् ।

ध्रुवमाकाशगंगां वा तं वदंति गतायुषम् ॥

अर्थ-जो मनुष्य गरमी, शरदी कालकी अवस्था (प्रवात निर्वात और वर्षादि) और दिशा इनको तथा अन्यभाव कहिये द्रव्य गुण कर्मादिकोंको विपरीततासे ग्रहण करे वो ३ मासमें मरे ॥ अब रूपग्रहणको दिखाते हैं कि. जो मनुष्य दिनमें ज्योतिवाले पदार्थ (सूर्यचंद्रआदिको) अग्निके समान जलतेसे देखे और रात्रिमें सूर्यको प्रज्वलित देखे ॥ अथवा दिनमें सूर्यको चंद्रमाके समान शीतल तेजवाला देखे ॥ एवं विना बादलके जो इन्द्रधनुष और बिजली चमकती देखे, तथा बिजलीवाले बादलोंको काले पीले देखे और निर्मल आकाशको बादलोंसे व्याप्त देखे तो दो या तीन महीनेमें मरे। जो मनुष्य आकाशको विमान यान (रथ घोडा, हाथी, आदि) और महलोंसे व्याप्त देखे तथा चलतीहुई पवनको मूर्तिमान् (देवताके आकार अथवा अन्यपुरुषाकार) देखे तथा विनानेत्ररोगके जो मनुष्य पृथ्वीको धूआँ, कुहल और वस्त्रोंसे आच्छादित देखे तथा विना ग्रीष्मऋतुके जगतको फूँकताहुवा देखे, तथा जलमें डूबाहुवा देखे, तथा पृथ्वीको रेखारचित चतुष्पथके आकार देखे और जो मनुष्य नक्षत्रसहित अरुंधती ध्रुवकातारा और शिशुमारचक्रको न देखे वो मरणके समीप जानना ॥

ज्योत्स्नादर्शोष्णतोयेषु छायां यश्च न पश्यति।

पश्यत्येकांगहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्वजाम् ॥
श्वकाककंकगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम् ।
पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥
यो वा मयूरकंठाभं विधूमं वह्निमीक्षते ।
आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो मनुष्य धूप चाँदनी आदि प्रकाशमें दर्पण पसीने और जलमें अपनी छायाको न देखे यदि देखे तो (हाथ, पैर, मस्तक आदि) एक अंगरहित देखे, अथवा विकृत तथा अन्यसत्व (और प्राणी गधा कुत्ते आदि) कीसी देखे, तथा कुत्ता, काक, कंक, गीध, प्रेत, यक्ष, राक्षस, पिशाच, सर्प, नाग और मनुष्य इनकी छायाको विकृत देखे ॥ तथा जो मनुष्य धूआँरहित अग्निका वर्ण मोरकंठके समान नील देखे तो आतुर (रोगी) की मृत्यु होवे और नैरोग्य पुरुष देखे तो रोगी होय इति ॥

अथातश्छायाविप्रतिपत्तिरूपमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—अब छायाविप्रतिपत्तिरूप अध्यायकी व्याख्या करेंगे, इस जगे छायाशब्दके पश्चात् ह्री, श्री, तुष्ट्यादिकीभी विपरीतता जाननी अर्थात् इनकीभी व्याख्या करेंगे:—

श्यावा लोहितका नीला पीतिका वापि मानवम् ।
अभिद्रवन्ति यं छायाः स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ-अब छायाकी विपरीतता दिखाते हैं जैसे कि, जिस पुरुषके साथ काली, लोहित (लाल) नीली और पीली छाया दीखे वो गतप्राण जानना अर्थात् मरेगा ॥

ह्रीश्रियौ नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा।
अकस्माद्यं भजंते वा स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ-अब प्रभाकी विपरीतता दिखाते हैं-जिस रोगीकी लज्जा, लक्ष्मी, ओज, स्मरणशक्ति और कांति ये अकस्मात् जातीरहें अथवा जो लज्जा आदिसे रहित हो वह अकस्मात् लज्जाआदियुक्त होजावे तो वह मनुष्य अवश्य मरे ॥

यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं यथोत्तरः।
उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥

अर्थ-जिसका नीचेका होठ नीचेको गिरपडे और ऊपरका होठ ऊपरको चिपटजावे, अथवा दोनों होठ जामुनके समान काले होजाँय उस मनुष्यका जीना कठिन है ॥

आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतंति च ॥
खञ्जनप्रतिमावापि तं गतायुषमादिशेत् ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके दांत लाल अथवा काले होजावें, अथवा गिरपडें या खंजन पक्षीके समान सफेद और काले हो जावें उसे गतायु अर्थात् मरेगा ऐसा जाने ॥

कृष्णा स्तब्धावलिप्ता वा जिह्वा शूना च यस्य वै।
कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥

अर्थ–जिसकी जीभ–काली, लठर, कफसे लिहसी, सूजी, और कठोर हो जावे वह थोडे समयमें मरेगा ऐसा वैद्य जाने। यह एक महीनेमें मरे है ॥

कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका ।
अवस्फूर्जति मग्ना वा न स जीवति मानवः ॥

अर्थ–जिसकी नाक टेढी, फटीसी, सूखीसी और शब्द-युक्त हो, अथवा भीतरको बैठजावे वह मनुष्य नहीं जीवे। यह मनुष्य सात रात्रिमें मरे है ॥

संक्षिप्ते विषमे स्तब्धे रक्ते स्रस्ते च लोचने ।
स्यातां वा प्रस्नुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥

अर्थ–जिसके नेत्र संकुचित, ऊँचे नीचे, निश्चष्ट, लाल, और नीचेको गिरजावें, अथवा जल बहै वो मनुष्य निश्चय गतायु जानना ॥

केशाः सीमंतिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ ।
लुनंति चाक्षिपक्ष्माणि सोचिराद्याति मृत्यवे ॥

अर्थ–जिसके बालोंकी बेनीसी गुँथजावे और दोनों भौंहें संकुचित और नीचेको गिरजावें और जो पलकोंके बालोंको बारंवार खोले, मूँदे वो थोडे कालमें यमराजके गृहको पधारे। यदि ये लक्षण नैरोग्य पुरुषके हों तो वो छः महीनेमें मरे और रोगी तीन दिनमें मरे ॥

नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः ।
एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणाञ्जहाति सः ॥

अर्थ-अब देहके अवयव क्रियाकी विपरीतताको कहते हैं-जैसे कि, जो मनुष्य मुखमें धरेहुए अन्नको न निगले और जो मस्तकको धारण न करे अर्थात गेरगेर देवे, एकही स्थानमें दृष्टी लगायदे, शीलता जातीरहे वह तत्काल प्राणोंको परित्याग करे ॥

बलवान्दुर्बलो वापि संमोहं योऽधिगच्छति ।
उत्थाप्यमानो बहुशस्तं धीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ-बलवान् हो या दुर्बल हो जिसको बहुतसा उठाने परभी वारंवार मूर्च्छा आवे उसको धीरपुरुष त्यागदे ॥

उत्तानः सर्वदा शेते पादौ विकुरुते च यः ।
विप्रसारणशीलो वा न स जीवति मानवः ॥

अर्थ-जो सदैव चित्त सोवे और पैरोंको कभी उठावे कभी धेर कभी मोड इत्यादि विकृत करे, अथवा सुकडेही रक्खे वो रोगी नहीं जीवे ॥

शीतपादकरोच्छ्वासश्छिन्नश्वासश्च यो भवेत् ।
काकोच्छ्वासश्च यो मर्त्यस्तं धीरः परिवर्जयेत् ॥

अर्थ-जिसके हाथ पैर और श्वास शीतल हों तथा श्वास टूट टूट जावे, अथवा काकके समान श्वास लेवे उसे धीरवैद्य त्याग देवे ये सद्यः मरणके चिह्न हैं ॥

निद्रा न च्छिद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा ।
मुह्येद्वा वक्तुकामस्तु प्रत्याख्येयः स जानता ॥

अर्थ—जो सोयाही करे जागे नहीं, अथवा जो सदैव जागाकरे सोवे नहीं और जब बोला चाहे तभी मूर्च्छित होजावे उसे वैद्य त्यागदेवे ॥

उत्तरोष्ठञ्च यो लिह्यादुद्गारांश्च करोति यः ।
प्रेतैर्वा भाषते सार्द्धं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥

अर्थ—जो ऊपरके होठको चाटाकरे और जो वारंवार डकार लेवे, तथा मृत पुरुषोंके साथ जो भाषण करे, उसको प्रेतरूपही जानना ॥

स्वेभ्यः सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते ।
पुरुषस्य विषार्त्तस्य सद्यो जह्यात्स जीवितम् ॥

अर्थ—अब शरीर देश विशेषाश्रितव्याधिविशेषअरिष्टक-नोंको दिखाते हैं—जैसे जिसके रोमांचोंमेंसे रुधिर बहनेलगे वो विषार्त्त पुरुष तत्काल जीवनको परित्याग करे ॥

वाताष्ठीला तु हृदये यस्योर्ध्वमनुयायिनी ।
रुजान्नविद्वेषकरी स परासुरसंशयम् ॥

अर्थ—जिसके वाताष्ठीला हृदयमें प्रगट हो ऊपरको चढे और उसमें पीडा हो तथा अन्नमें प्रीति न होवे, वह रोगी मरेगा ऐसा जाने ॥

अनन्योपद्रवकृतः शोफः पादसमुत्थितः ।
पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥

अर्थ—पैरोंमें सूजनहो और उसमें शोफकेही उपद्रव श्वास श्वास आदि होवें, वो पुरुषको नाश करे और मुखसे उठी सूजन उक्तउपद्रवोंकरके युक्त हो वह स्त्रीका नाश करे, और गुदाकी सूजन स्त्रीपुरुष दोनोंको नष्ट करती है ॥

अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूनांडमेढ़ता ।
श्वासिनो कासिनो वापि यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ—खांसी श्वासवाले रोगीके अतिसार, ज्वर, हिचकी और वमन ये उपद्रव होतेहों तथा अंडकोश और लिंग भगपर सूजन हो उसे वैद्य त्यागदेवे ॥

स्वेदो दाहश्च बलवान् हिक्का श्वासश्च मानवम् ।
बलवंतमपि प्राणैर्वियुज्यंति न संशयः ॥

अर्थ—जिसके पसीने और दाह अत्यंत हों ऐसे बलवान् पुरुषको हिचकी और श्वासरोग प्राणरहित करते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥

श्यामा जिह्वा भवेद्यस्य सव्यं चाक्षि निमज्जति ।
मुखं च जायते पूति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥

अर्थ—जिसकी जीभ कालीहो और दहना नेत्र बैठजावे तथा मुखमेंसे दुर्गंध आवे उसको वैद्य त्यागदेवे ॥

वक्त्रमापूर्यतेऽश्रूणां स्विद्यतश्चरणावुभौ ।
चक्षुश्चाकुलतां याति यमराष्ट्रं गमिष्यतः ॥

अर्थ—जिसका मुख आँसुओंसे भरजावे और दोनों पैर पसीजें तथा नेत्र जिसके व्याकुल होजाँय वह यमपुरीको जायगा ऐसा जाने । यह रोगी प्रहर अथवा दो घडीमें मरे है ॥

अतिमात्रं लघूनि स्युर्गात्राणि गुरुकाणि च ।
यस्याकस्मात्स विज्ञेयो गंता वैवस्वतालयम् ॥

अर्थ—जिस रोगीका भारी देह अकस्मात् अत्यन्त हलका हो जावे वह रोगी यमराजके घर जानेवाला है ॥

पङ्कमत्स्यवसातैलघृतगंधांश्च ये नराः ।
मृष्टगंधांश्च ये वांति गंतारस्ते यमालयम ॥

अर्थ—जिन रोगियोंकी देहमेंसे कीच, मछली, वसा, तेल और घृतकीसी बास आवे, तथा जो दिव्य सुगंधवान् वमन करे वो यमालयको जाँयगे । यह एक वर्षमें मरते हैं ॥

यूका ललाटमायांति बलिं नाश्नन्ति वायसाः ।
येषां वापि रतिर्नास्ति यातारस्ते यमालम् ॥
ज्वरातीसारशोकाः स्युर्यस्यान्योऽन्यावसादिनः ।
प्रक्षीणबलमांसस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥

अर्थ—जिनके मस्तकपर जूआँ आवे और कौआ काक बलिको न खाँय तथा जिनको कहीं सुख न हो वो यमालय

जानेवाले हैं । ऐसा जानना, यह अरिष्ट एक वर्षका है । जिसके परस्पर उपद्रव करता ज्वर अतिसार और सूजन हो तथा बल मांस ये क्षीण होजाँय वह रोगी चिकित्साके योग्य नहींहै ॥

क्षीणस्य यस्य क्षुत्तृष्णे हृद्यैर्मिष्टैर्हितैस्तथा ।
न शाम्यतोऽन्नपानैश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ–जिस क्षीणपुरुषकी भूख प्यास हृद्य मिष्ट और हितकारी अन्नजलसेभी शांति न हो उसकी मृत्यु खडीहुई है ऐसा जाने ॥

प्रवाहिका शिरःशूलं कोष्ठशूलं च दारुणम् ।
पिपासा बलहानिश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥

अर्थ–जिस रोगीके प्रवाहिका, मस्तकशूल, घोर उदरशूल, प्यास और बलहानिहो उसकी मौत खडीहै ऐसा जानो ॥

विषमेणोपचारेण कर्मभिश्च पुराकृतैः ।
अनित्यत्वाच्च जंतूनां जीवितं निधनं व्रजेत् ॥

अर्थ–अब यह कहते हैं कि, इस मनुष्यके अरिष्ट किसतरह उत्पन्न होतेहैं जिनसे यह निश्चय मरताहै । तहाँ विषमचिकित्सा करनेसे और पूर्वजन्मके कर्मोंकरके, तथा प्राणिमात्रोंको अनित्य होनेसे, जीवोंका जीवन विनाशको प्राप्त होताहै ॥

प्रेतभूतपिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ।
मरणाभिमुखं नित्यमुपसर्पंति मानवम् ॥

तानि भेषजवीर्याणि प्रतिघ्नंति जिघांसया।
तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवंत्येव गतायुषः ॥

अर्थ–मरणके समय सब क्रिया निष्फल क्यों होजाती हैं इसवास्ते कहते हैं कि, इसमनुष्यके मरणसमय प्रेत, भूत, पिशाच, अनेकप्रकारके ब्रह्मराक्षस आदि नित्य इसके मारनेको समीप आतेहैं, इसीसे गतायुमनुष्यकी सर्वक्रिया निष्फल होजाती हैं ॥ इति ॥

अथातः स्वभावविप्रतिपत्तिरूपमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ–अब स्वभाव (प्रकृति) विप्रतिपत्तिरूप अध्यायकी व्याख्याकरेंगे–यहां स्वभावशब्दके अनंतर आदिशब्द लुप्तहै अर्थात् स्वभावादि विप्रतिपत्तिरूप अध्यायकी व्याख्या करेंगे–

स्वभावप्रसिद्धानां शरीरैकदेशानामन्यभावित्वं मरणाय । तद्यथा–शुक्लानां कृष्णता कृष्णानां शुक्लता रक्तानामन्यवर्णत्वं स्थिराणामस्थिरत्वं मृदूनां स्थिरता चलानामचलत्वमचलानां चलता पृथूनां संक्षिप्तत्वं संक्षिप्तानां पृथुता दीर्घाणां ह्रस्वत्वं ह्रस्वानां दीर्घताऽपतनधर्मिणां पतनधर्मित्वं पतनधर्मिणामपतनधर्मित्वमकस्माच्च शैत्योष्ण्यस्नैग्ध्यरौक्ष्यप्रस्तम्भवैवर्ण्यावसदनाश्चाङ्गानाम् ॥

अर्थ—जो देहमें स्वभावसिद्धपदार्थहैं उनका शरीरके एक-देशमें विपरीत होजाना मरणके अर्थ है। जैसे अकस्मात सफेदपदार्थोंका काला होजाना और कालेका सफेद होजाना, लालपदार्थ (होठ, तालुआदि) का सफेद काला पीला होजाना स्थिरपदार्थोंका अस्थिर होना और (केश, श्मश्रु आदि कठोर पदार्थोंका) नर्मपदार्थ (मांस, रुधिरादिकोंका) कठोर होजाना, इसीप्रकार चलपदार्थोंका स्थिर होजाना और अचल पदार्थोंका चलायमान होना मोटेका सुकडजाना, सुकडहुओंका मोटा होना, दीर्घोंका ह्रस्व होना और ह्रस्वोंका दीर्घ होना विनागिरनेवालोंका गिरजाना और गिरनेवालोंका स्थिर होना तथा शीतलता, गरमी, चिकनाई, रुकाई, स्तब्धता, विवर्णता और विकलता ये अंगोंके विपरीत होना मरणके अर्थ जानना ॥

स्वेभ्यः स्थानेभ्यः शरीरैकदेशानामवस्रस्तोक्षिप्तभ्रांतावक्षिप्तपतितविमुक्तनिर्गतांतर्गतगुरुलघुत्वानि।

अर्थ—शरीरके एकदेशोंका अपने स्थानसे शिथिल होना, उनको ऊपरको जाना नेत्रादिकोंका भ्रमणहोना, तिरछा गिरना, शिरग्रीवादिकोंका गिरना संधिआदिका छूटना, जिह्वाआदिका निकलना, जिह्वानेत्रादिकोंका भीतर प्रवेश होना बाहु शिर आदि भारी। हलकोंका विपरीत होना, ये लक्षण अरिष्ट करतेहैं ॥

प्रवालवर्णव्यङ्गप्रादुर्भावोऽप्यकस्मात् । शिराणां च दर्शनं ललाटे नासावंशे वा पिडकोत्पत्तिः । गोमये चूर्णप्रकाशस्य वा रजसो दर्शनमुत्तमांगे निलयनं वा कपोतकंकप्रभृतीनां मूत्रपुरीषवृद्धिरभुंजानानां तत्प्रणाशो भुंजानानां स्तनमूलहृदयोरःसु च शूलोत्पत्तयः मध्ये शूनत्वमन्तेषु परिम्लायित्वं विपर्ययो वा तथार्द्धाङ्गे श्वयथुः ॥

अर्थ—अकस्मात् लालवर्णका व्यङ्गरोग प्रगटहो लालवर्णकी नस दीखनेलगे. मस्तकमें और नासिकाकी हड्डीमें पिडिकाकी उत्पत्तिहो मस्तकमें गोबरकी धूलसमान रज दीखे तथा कबूतर कंकआदि पक्षियोंका मस्तकपर बैठना, बिना भोजनके मल मूत्रकी वृद्धि होना अर्थात अधिक उतरना और भोजन करेहुओंको मलमूत्रका नाश होना, स्तनमूल, हृदय, छाती इनमें शूलकी उत्पत्तिहो और जिसके देहका मध्यभाग सूजजाय और अंतके भाग मुरझाएहुएसे होजावें अथवा अंतके भाग (हाथपैरआदि) सूजजाँय और बीचका भाग मुरझायासाहो अथवा अर्द्धांगमें सूजनहो उसको अरिष्टहै ऐसा जानना यह एकमहीनेका है ॥

शोषोऽङ्गपक्षयोर्वा नष्टहीनविकलविकृतिस्वरता । विवर्णपुष्पप्रादुर्भावो वा दन्तनखशरीरेषु ॥

यस्य वाप्सु कफपुरीपरेतांसि निमज्जंति । यस्य वा दृष्टिमंडले भिन्नविकृतानि रूपाण्यालोक्यते । स्नेहाभ्यक्तकेशांग इव यो भाति । यश्च दुर्बलो भक्तद्वेषातिसाराभ्यां पीड्यते । कासमानश्च तृष्णाभिभूतः ॥ क्षीणच्छर्दिभक्तद्वेषयुक्तः सफेनपूयरुधिरोद्वामी हतस्वरः शूलाभिपन्नश्च मनुष्यः ॥

अर्थ—अंगोंका सूखना अथवा औंध देहका शोष होना. एवं स्वर अत्यन्त क्षीण होजाय वा विकलस्वर होजाय । (गद्गदादि स्वर होजाय) वा विकृत अर्थात स्वभावसे विपरीत होजावे तथा दाँत, नख और शरीरमें विवर्ण पुष्प अर्थात् दुष्ट रंगकी बिंदु प्रगट होजावें । जिसके जलमें कफ, मल और वीर्य डूबजावे और नेत्रोंके सामने भयानक अनेकप्रकार (नीनशिर, शिररहित) रूप देखे । तेल लगाएहुए बाल रूखेसे देखे और जो दुर्बलपुरुष अन्नमें द्वेष और अतिसारकरके पीडित हो जब खाँसे तभी तृषासे पीडितहो, क्षीणरोगी, वमन, अन्नद्वेषयुक्तहो । तथा झागयुक्त राध रुधिरकी वमन करे । स्वर बैठजावे और शूलसे पीडित हो उसको अरिष्ट जानना ॥

शूनकरचरणवदनःक्षीणोऽन्नद्वेषी स्रस्तपिंडिकांसपाणिपादो ज्वरकासाभिभूतः यस्तु पूर्वाह्ने भुक्तमपराह्ने छर्दयत्यतिसार्यते वा ज्वरकासाभिभूतः स श्वासान्म्रियते । बस्तवद्विलपन्

यश्च भूमौ पतति स्रस्तमुष्कः स्तब्धमेढ्रो भग्नग्रीवः प्रणष्टमेहनश्च मनुष्यः ॥

अर्थ—जिसके हाथ, पैर, मुख सूजेहुए हों, अन्य अंग क्षीण होगएहों अन्नमें अरुचि, शिथिल है, घोटू, कंधे, हाथ और पैर जिसके ज्वर खांसीकरके युक्त एवं जो प्रातःकालमें भोजनकरहुएको अपराह्णमें वमन करदेवे और जिसके बिनपचा अन्न दस्तके मार्ग होके निकले और ज्वर खाँसीसे व्याप्त हो वो श्वास रोगसे मरे । एवं बकरेके शब्दसमान विलाप करताहुआ पृथ्वीमें गिरपडे । अंडकोशस्थान छूटजावे लिंग स्तंभित होजाय नार गिरपडे तथा लिंग भीतरको चलाजाय । उसको अरिष्ट जानना ।

प्राग्विशुष्यमाणहृदय आर्द्रशरीरोयश्चलोष्टंलोष्टनाभिहन्तिकाष्ठंकाष्ठेनतृणानिवाछिनत्तिअधरोष्ठंदशत्युत्तरोष्ठंवालेढि ॥ आलुंचतिवाकर्णौकेशांश्च देवद्विजगुरुसुहृद्वैद्यांश्चद्वेष्टि ॥

अर्थ—जिस पुरुषका सब देह गीला रहते प्रथम हृदयही सूखजावे उसको पक्षभरका अरिष्ट है और मिट्टीके ढलेसे ढेलेको तोडे लकडीसे लकडीको और तिनकोंको तोडे नीचेके होठको दांतोंसे डसे और ऊपरके होठको चाटे और कान माथेके बालोंको तोडे । एवं देव, ब्राह्मण, गुरु, सुहृद और वैद्य इनसे द्रोह करे तो उसको १ वर्षका अरिष्ट जानना ॥

यस्यवक्रानुवक्रगाग्रहागर्हितस्थानगताःपीडयं-
तिजन्मर्क्षवायस्योल्काशनिभ्यामभिहन्यतेहोरा
वागृहदारशयनासनयानवाहनमणिरत्नोपकरण-
गर्हितलक्षणनिमित्तप्रादुर्भावोवेति ॥

अर्थ—जिसके वक्रीग्रह उपस्थितराशिको छोड़कर पूर्व भुक्तराशिपर आजावें और मार्गीग्रह ये दुष्टस्थानपर आनकर जन्मनक्षत्रको पीडित करें तथा जिसका जन्मनक्षत्र और होरा उल्का (जिसे तारा टूटा कहते हैं) और बिजलीकरके हनहो एवं घर, स्त्री, शय्या, आसन, सवारी, वाहन, मणि, रत्न और सामग्री आदिमें दुष्ट लक्षण इनके निमित्त करके अरिष्टकी उत्पत्ति होती है ॥

चिकित्स्यमानः सम्यक्च विकारो योऽभिवर्द्धते ।
प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद्गतायुषः ॥
निवर्त्तते महाव्याधिः सहसा यस्य देहिनः ।
न चाहारफलं यस्य दृश्यते स विनश्यति ॥

अर्थ—जिस रोगीका उत्तम रीतिसे चिकित्सा करते २ भी रोग बढे और बल मांस जिसके क्षीण होजावें उसको गतायु जानना । जिस रोगीका घोर रोग अकस्मात् जाता रहे और जो भोजन करे उसका कुछ देहमें (पुष्टाई क्षुधा शांति आदि) फल न देखपडे वो रोगी अवश्य मरे ॥

ज्ञानसंबोधनार्थंतुलिङ्गैर्मरणपूर्वकैः ।
पुष्पितानुपदेक्ष्यामोनरान्बहुविधान्बहून् ॥

नानापुष्पोपमोगंधोयस्यवातिदिवानिशम् ।
पुष्पितस्यवनस्येवनानाद्रुमलतावतः ॥
तमाहुः पुष्पितंधीरानरंमरणलक्षणैः ।
स वै संवत्सरादेहं जहातीतिविनिश्चयः ॥

अर्थ—मरणपूर्वक लक्षणों करके कालज्ञानके जाननेके लिये अनेक प्रकारके बहुतसे पुष्पित मनुष्योंको कहताहूं ॥ अनेक वृक्ष लतावान् फूलेहुए वनकीसी जिसके देहमें दिन रात्रि फूलोंकीसी सुगंध आवे उसको धीरवैद्य पुष्पित कहते हैं. वो १ वर्षके भीतर निश्चय मरणको प्राप्तहो ॥

एवमेकैकशः पुष्पैर्यस्यगंधःसमोभवेत् । इष्टोवाय-दिवानिष्टःसचपुष्पितउच्यते ॥ तद्यथाचन्दनंकुष्टंत-गरागुरुणीमधु । माल्यमूत्रपुरीषेवामृतानिकुणपा-निवा ॥ यचान्येविविधात्मानोगंधाविविधयोनयः । तेऽप्यनेनानुमानेनविज्ञेयाविकृतिंगते ॥

अर्थ—उसीप्रकार एक एक फूलकी पृथक् २ सुगंध या दुर्गंध आवे तो उसको पुष्पित कहते हैं जैसे-चंदन-कूठ-तगर-अगर-सहत-माला-मूत्र, मल, मुरदेके समान दुर्गंध तथा और अनेक प्रकारकी आपको दुर्गंध आवे वोभी इसी अनुमानसे अरिष्टगत मनुष्यके देहमें जानना चाहिये ॥

इदंचाप्यतिदेशार्थलक्षणंगंधसंश्रयम् ।
वक्ष्यामोयदभिज्ञाय भिषक् मरणमादिशेत् ॥

अर्थ—इसप्रकार वैद्योंके जाननेके लिये गंधसंश्रयलक्षणोंको कहूंगा-जिन लक्षणोंको वैद्य जानकर रोगीका मरण कहे [अर्थात् ये रोगी इतने दिनमें मरेगा] ॥

विधोनिविज्वरोयस्य गन्धोगात्रेषुदृश्यते ।
इष्टोवायदिवानिष्टोनसजीवतितांसमाम् ॥
एतावद्गंधविज्ञानंरसज्ञानमतः परम् ।

अर्थ—जिस मनुष्यके देहमें पशुपक्षीआदिकीसी और अनेक प्रकारके रोगोंकीसी गंध आवे, चाहिये वा अच्छी हो, वो मनुष्य वर्ष नहीं जीवे हमने यह गंधविज्ञान कहा अब रसज्ञानको कहतेहैं ॥

आतुरेषुशरीरेषुवक्ष्यामोविधिपूर्वकम् । योरसः प्रकृतिस्थानांनराणांदेहसंभवः ॥ सएषांचरमेकाले विकारान्भजतेद्वयान् । कश्चिदेवास्यवैरस्यमत्यर्थ मुपपद्यते ॥ स्वादुत्वमपरेचापिविपुलंभजतेरसः । तमनेनानुमानेनविद्याद्विकृतिमागतम् ॥

अर्थ—अब रोगीके शरीरमें रसज्ञानको विधिपूर्वक कहेंगे नैरोग्य पुरुषोंके देहका रस जो स्वस्थावस्थामें होता है वही मरणके समय दो प्रकारके भावको जाता है । किसीके तो मुखमें विरसता होजाती है और किसीके मुखमें अत्यंत स्वादुता आजाती है उसको वैद्य अनुमानद्वारा जाने कि, विकृति आनपहुँची है ॥

मनुष्योहिमनुष्यस्यकथंरसमवाप्नुयात् । मक्षिका-
श्चैवयक्षाश्च दंशाश्चमशकैःसह ॥ विरसादपसर्पतिज-
न्तोः कायान्मुमूर्षतः । अत्यर्थंरसकंकायंकालपक्क
स्यमक्षिकाः ॥ अपिस्नातानुलिप्तस्यभृशमायांति
सर्वशः । यान्येतानिमयोक्तानिलिंगानिरसगंधयोः ।
पुष्पितस्यनरस्यैतैः फलंमरणमादिशेत् ॥

अर्थ–कदाचित् कोई प्रश्न करे कि, मनुष्य मनुष्यके देह-का रस कैसे जानसक्ता है इसलिये धन्वन्तरि कहते हैं कि, जिस समय यह मनुष्य मरणोन्मुख होता है तब इस मनुष्यकी देह विरस होजातीहै अत एव उस गंधके प्रभावसे मक्खी यक्ष मच्छर डास इत्यादि इसके ऊपर बहुत बैठते हैं और जब कालकरके अत्यंत देह पक्क होजाता है तब इस प्राणीके स्नान करनेके पश्चात् और चंदन आदि लगानेपरभी मक्खी पीछा नहीं छोडतीं तब वैद्य जानलेवे कि, इस मनुष्यके देहका रस पलटगया है यह हमने पुष्पित मनुष्यके रस और गंधके लक्षण कहे । इससे वैद्य रोगीका मरण कहे ॥

दंतपंक्त्युत्तरे न्यस्तं न विशेदंगुलित्रयम् ।
स याति सप्तरात्रेण निश्चितं यमसादनम् ॥

अर्थ–जिसके दांतोंके भीतर देनेसे तीन उंगली न जावें, वो निश्चय सात दिनमें मरे ॥

छायां विधोर्न ध्रुवमृक्षमालामालोकयेद्यो
न च मातृचक्रम् । खंडं पदं यस्य च कर्द-
मादौ कफश्च्युतो मज्जति चाम्बुचुंबी ॥

अर्थ–जो मनुष्य चंद्रमाके कलंकको, ध्रुवको, नक्षत्रोंको और मातृमंडलको न देखे और कीच आदिमें पैर रखनेसे आधा पैरकाही चिह्न दीखे और जलमें कफ गेरनेसे जलको लेकर नीचे बैठजावे, उसे अरिष्ट जानना चाहिये ॥

उरः पुरः शुष्यति यस्य चार्द्रं न मांति तिस्त्रोऽङ्गु-
लयश्च वक्रे । स्नातस्य मूर्द्धन्यपि धूमवल्ली निली-
यते रिक्तमुखः खगो वा ॥

अर्थ–जिसका देह चंदन अथवा जल आदिसे गीला होकर प्रथम छाती सूखे और जिसके मुखमें तीन उंगली न मावे और जलमें स्नान करेहुएके मस्तकमें धूम [धूआं] की शिखा उठे एवं जिसके मस्तकपर फलधान्यादिसे रितेचोंचवाले पक्षी बैठें उसको अरिष्ट है ऐसा जानना ॥

नाकीर्णकर्णः शृणुयाच्च घोषं नो वासुभुक्तोऽपि
धृतिं न धत्ते । निःश्रीरकस्मात्सुतरां च सुश्रीः
कृशः स्थवीयानपि योप्यकस्मात् ॥

अर्थ–जो मनुष्य उंगलियोंसे कानोंको बंदकर कानोंके भीतरका स्वाभाविक शब्द न सुने और जो बहुत भोजन करने

परभी तृप्त नहोवे, तथा अशोभित अकस्मात् शोभावान् हो जाय और शोभावान् अशोभित होजाय, एवं जो कृश है वो मोटा होजावे और मोटा मनुष्य अकस्मात् पतला होजावे तो उसको अरिष्ट जानना ॥

अतीव तुच्छं बहुचाल्पहेतोरतीतसात्म्यः सदसत्प्रवृत्तौ । अप्यंगुलिक्रांतविलोचनांतो न मेचकं चान्द्रकमीक्षते यः ॥

अर्थ–जो ज्वरादि रोगके बिना अत्यन्त थोडा भोजन करने लगे और भस्मकादि रोगके बिना बहुत भोजन करनेलगे, और जो उत्तम विषय तथा दुष्टविषयोंमें अपने सात्म्यको छोडदेवे अर्थात् जो उत्तम कर्मकर्ता वो दुष्टकर्म करनेलगे और दुष्ट कर्मवाला अच्छे कर्म करनेलगे. एवं उंगलियोंसे नेत्रोंको ढकनेपर मोरचंद्रिके समान तिल मिले अनुभवसिद्ध को न देखे उसको अरिष्ट जानना ॥

मध्येललाटं मणिबंधधारी न चालिपकां पश्यति यः कलावीम् । अहेतुकं यः शवगन्धिगात्रः सर्वत्र सीमंतितमूर्धजो वा ॥

अर्थ–जो ललाटपर पहुचेको धरकर थोडाभी पहुचेकी [कलाईको] न देखे और बिनाकारण जिसमें मुरदेकीसी बास आने लगे और जिसके समस्त मस्तक बालोंकी वेनीसी गुँथजावे उसको अरिष्ट जानना ॥

अपिक्षरद्रोमनखःशरीरात्सद्यःस्रवद्वामविलोचनो वा। निरीक्षते सत्त्वममानुषं वा विस्रस्तनासानयनश्रुतिर्वा ॥

अर्थ—जिसके शरीरसे रोमांच और नख स्वयं उखडकर गिरनेलगे और जिसके वामनेत्रसे आँसू बहनेलगे और जो भूत पिशाचादि प्राणियोंको देखे, एवं जिसके नाक, नेत्र और कान ये शिथिल हो जावे, उसको अरिष्ट जानना चाहिये ॥

फलाग्निजलवृष्टीनां पुष्पधूमाम्बुदा यथा।
ख्यापयंति भविष्यत्वं तथारिष्टानि पंचताम् ॥

अर्थ—जैसे—पुष्प, धूँआ और बादल, ये फल, अग्नि और जलके भविष्यको प्रगट करते हैं, उसीप्रकार अरिष्ट मरणको सूचित करता है। अर्थात् फूल फलको और धूँआ होनेसे अग्नि, एवं बादल होनेसे पानी वर्षनेकी भविष्य सूचना होती है। उसीप्रकार अरिष्टद्वारा मरणका बोध होता है. अरिष्ट दो प्रकारका है एक नियत [निश्चित] और दूसरा अनियत [अनिश्चित] है ॥

तानि सौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वा तथैवाशुव्यतिक्रमात् ।
गृह्यन्ते नोद्धतान्यज्ञैर्मुमूर्षोर्नत्वसम्भवात् ॥

अर्थ—उन प्रगटहुए अरिष्टोंको मरणेच्छु मूढमनुष्य अत्यंत सूक्ष्म होनेसे और शीघ्र नष्ट हो जानेसे नहीं जानसक्ता अर्थात् वो परमाणुके समान अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। और रोगी मत-

वालासा होता है इसकारण तथा जिस समय अरिष्ट हुआ उसी समय रोगी मरगया इन सबकारणोंसे मूर्ख नहीं जानते किंतु यह नहीं है कि, वो अरिष्ट उनके न होतेहों इसकारणको नहीं जाने ॥

नक्षत्रपीडा बहुधा यथा कालाद्विपच्यते ।
तथैवारिष्टपाकं च ब्रुवते बहुधा जनाः ॥

अर्थ–अब यह कहते हैं कि, ये अरिष्ट पीडा पचीसवर्षादिमें क्यों होती है । इसवास्ते यह है कि, जैसे नक्षत्रजनित पीडा प्रायः कालांतरमें पचती है उसीप्रकार अरिष्टफलको बहुतसे मनुष्य कहते हैं ॥

असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन्गतायुषः ।
अतोरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥

अर्थ–जो वैद्य गतायु अर्थात् मरणोन्मुखकी चिकित्सा करताहै वो इसलोकमें सिद्धि (चिकित्साफलधनयशादि) को नहीं प्राप्त होता,अत एव कुशलवैद्य यत्नपूर्वक अरिष्टोंको देखे ॥

ध्रुवं तु मरणं रिष्टे ब्राह्मणै स्तात्किलामलैः ।
रसयानतपोजप्यतत्परैर्वा निवार्यते ॥

अथ संगृहीतश्लोकः–व्यस्ताङ्गादिस्वभावा भुवि च पददलं भाविकार्यं [illegible]बुपूर्वं स्वस्थोऽब्जांकं न पश्येत्तनुमितरदृशि स्वाक्षि वा पीड्यतेजः ॥ घ्राणा[illegible] दीन्वाय पश्येद्ध्रुमहानि च तडिच्चापपूर्वं निरभ्रे सूर्येन्द्वोश्छिद्रपूर्वं मृबिक्वादि[illegible] द च मृत्युंजयाज्जाप्यहोमौ ॥ १ ॥

अर्थ—अब दोषज अरिष्टोंकरके मरण निश्चयको दिखातेहैं कि, अरिष्ट होनेसे इसप्राणीका अवश्य मरण होताहै। वो अरिष्ट जन्ममरण रागादिदोषरहित ब्राह्मणोंकी सेवा, रसायन औषधोंकासेवन, तपश्चरण और गायत्र्यादिमंत्रोंके जप करनेसे निवारण होतेहैं। यह केवल अनियत अरिष्ट भिषक्में उपायहै॥ और नियतहै वो दानपुण्यआदि किसीउपायसे दूर नहीं हो॥

अथ छायापुरुषलक्षणम्।

अथातः संप्रवक्ष्यामि छायापुरुषलक्षणम्।
येन विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः॥

अर्थ—अब हम छायापुरुषके लक्षण कहतेहैं—जिसके जाननेसे यह प्राणी त्रिकालज्ञ (भूत—भविष्य—वर्त्तमानका जाननेवाला) होताहै॥

कालो दूरस्थितस्यापि येनोपायेन लक्ष्यते।
तं वक्ष्यामि समासेन यथोक्तं शंभुना पुरा॥

अर्थ—दूरस्थितभी काल जिस उपायकरके दृष्टिगोचरहो उसको मैं संक्षेपकरके कहताहूं जैसे पहिले शिवजीने कहे हैं॥

एकांते विजने गत्वा कृत्वादित्यं च पृष्ठतः।
निरीक्षेत निजां छायां कंठदेशे समाहितः॥

अर्थ—कालज्ञानका परीक्षक मनुष्य निर्जन एकांतवनमें

जाय समानभूमिमें सूर्यको पिछाडी करके सीधा खडाहो फिर अपनी छायाके कंठदेशमें देखताहुआ सावधानीमें परीक्षा करे ॥

ततश्चाकाशमीक्षेत ततः पश्यति शंकरम् । ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः इति मंत्रम् अष्टोत्तरशतवारं जपेत् ॥

अर्थ–बराबर [दोघडीपर्यंत छायाको देखाकरे] फिर उसछायापरसे दृष्टिको उठाकर आकाशकी तरफ देखे तो साक्षात् शिवको देखेगा जिससमय छाया देखनेको खडाहो तब १०८ वार इसमंत्रको पढे " ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः" ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत् ॥

अर्थ–इसप्रकार करनेसे शुद्धस्फटिकमणिके समान अनेकरूपधारणकर्त्ता शिवको देखे इसप्रकार छःमहीने करनेसे संपूर्ण प्राणिमात्रका अधिपतिहो ॥

वर्षद्वयेन हे नाथ कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः ।
त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति परमानंदमेव च ॥

अर्थ–दोवर्ष इस क्रियाके साधन करनेसे स्वयं कर्त्ता हर्त्ता और त्रिकालका जाननेवाला परमआनंदयुक्त होवे ॥

सतताभ्यासयोगेन नास्ति किंचन दुर्लभम् ॥

अर्थ–इसीप्रकार बराबर नित्यप्रति साधन करता रहे तो इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो इससाधकको प्राप्ति नहो ।

तद्रूपंकृष्णवर्णंयः पश्यतिव्योम्निनिर्मले।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोतिसयोगीनात्रसंशयः ॥

अर्थ—यदि यह योगी आकाशमें उस छायापुरुषका वर्ण कालेरंगका देखे तो छःमहीनेमें निःसंदेह मृत्युहो ॥

पीतेव्याधिभयंरक्ते नीलेहत्यांविनिर्दिशेत्।
नानावर्णस्वरूपोस्मिन्नुद्वेगोजायतेमहान् ॥

अर्थ—यदि पीलावर्ण देखे तो इसको रोगहो, लाल देखे तो भयहो और नीलेवर्णकी छाया देखे तो हत्या लगे, एवं अनेक प्रकारके रंगकी छाया देखे तो इसके चित्तमें घोर उद्वेग होवे॥

पादेगुल्फेचजठरे विनष्टेमृत्युमादिशेत्।
अर्धवर्षेणवर्षेण क्रमाद्वर्षद्वयेनच ॥

अर्थ—छायापुरुषके पैर—टकना और पेट न दीखनेसे क्रमपूर्वक छःमहीने, वर्षदिन और दोवर्षमें मृत्युहो अर्थात् पैर न दीखनेसे छःमहीनेमें टकना न दीखनेसे वर्षदिनमें और पेट न दीखनेसे दोवर्षमें मरे ॥

विनष्टेदक्षिणेबाहौस्वबंधुर्म्रियते ध्रुवम्।
वामे बाहौ तथा भार्या विनश्यतिनसंशयः ॥

अर्थ—छाया पुरुषका दहना हाथ न दीखनेसे अपना भाई मरे और बायाँ हाथ न दीखनेसे अपनी स्त्री मरे इसमें संदेह नहीं है ॥

शिरोदक्षिणबाह्वोस्तुविनाशोमृत्युमादिशेत् ।
अशिरामासिमरणंविनाजंघे दिनेन वा ॥
अष्टभिःकंधरानाशे छायालुप्तेच तत्क्षणात् ॥

अर्थ—छायापुरुषके शिर और दहिना हाथ न दीखनेसे मृत्युहो. यदि कबंध दीखे तो महीनेमें मरे और विना पीडरोंके दीखे तो एकदिनमें मरे कंधा दीखनेसे आठदिनमें और सर्व छाया न दीखे तो तत्काल मृत्युहो, परंतु यह ज्ञान केवल योगियोंको होताहै अन्यको नहीं ॥

इति कालज्ञानं भाषाटीकासमेतं समाप्तम् ।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय—बंबई.

क्रय्यपुस्तकोंकी संक्षिप्त-सूची ।



वैद्यकग्रंथाः ।

नाम.	की. रु. आ.
चरकसंहिता-भाषाटीकासहित	८-०
सुश्रुतसंहिता-सान्वय सटिप्पण सपरिशिष्ट भाषाटीकासमेत सम्पूर्णचारों भाग	१२-०
" सूत्र स्थान भाषाटीका	३-०
" निदान-शारीरकस्थान	२-८
" चिकित्सास्थान व कल्पस्थान	३-८
" उत्तरतंत्र समाप्ति	३-८
" केवलशारीरकस्थान	१-४
भावप्रकाश भाषाटीकासमेत	८-०
अष्टांगहृदय (वाग्भट) भाषाटीकासमेत	८-०
शार्ङ्गधर निदानसह भाषाटीका पं० दत्तराम चौबे मथुरानिवासीका बनाया	३-०
माधवनिदान उत्तम भाषाटीका ग्लेज	२-०
" रफ कागज	१-८
रसरत्नाकर भाषाटीकासमेत समस्त रसादि मारण शोधन आदि	५-०
हारीतसंहिता भाषाटीकासहित...	३-०
कामरत्न योगेश्वर नित्यनाथप्रणीत भाषाटीकासमेत	१-१२
कामकौतूहल भाषाटीकासमेत	०-६
पथ्यापथ्यभाषाटीका	०-१०
चिकित्साखण्ड भाषाटीका प्रथमभाग	४-०
चिकित्साक्रमकल्पवल्ली संस्कृत काशिनाथकृत (भिषग्वरोंके देखनेयोग्य	२-८
अंजननिदान भाषाटीका अन्वयसहित...	०-८
हंसराजनिदान भाषाटीका	१-०
पथ्यापथ्यचंद्रोदयभाषाटीका (व्यंजनबनानेका)	१-८
योगतरंगिणी भाषाटीकासमेत	२-०
राजवल्लभनिघंटु भाषाटीका	१-८
वैद्यकपरिभाषाप्रदीप भा० टी० (वैद्योपयोगी औषधियोंकी योजनामें तौल, मान और बदला तथा वर्ग, चूर्णआदिकोंकी योजनाका वर्णन)	०-१२
वैद्यरत्न भा० टी० (सर्वरोगोंकी चिकित्सा उत्तमप्रकारसे वर्णन की है)	०-१४

वैद्यवल्लभ भाषाटीका (चिकित्सा उत्तम) .... ० – ६
द्रव्यगुणशतक भाषाटीका .... ० – ६
द्रव्यगुण बड़ा भाषाटीकासमेत .... १ – ०
वैद्यविनोद भाषाटीकासमेत .... १ – १२
वीरसिंहावलोकन ज्योतिषशास्त्रादिकर्मविपाकचिकित्सावर्णन १ – १२
योगचिंतामणि भाषाटीका दत्तरामचौबेकृत ... ... – ४
तथा रफ कागजकी ... ... १ – ०
लोलिंबराजकृत वैद्यजीवन संस्कृतटीका और भाषाटीका .... १ – ०
नाडीदर्पण (नाड़ी देखनेमें अत्यंत उत्कृष्ट)... ... ... ० – ६
अनुपानदर्पण भाषाटीकासहित .. .. ० – १०
बालबोधपाकावली ... ... ० – २
कूटमुद्गराख्यसटीक ... . ० – ३
कूटमुद्गर भा० टी० ... ... ० – ३
कालज्ञानभाषाटीका .. .. ० – ३
वैद्यरहस्यभाषाटीका वैद्योंको परमोपयोगी ... ... १ – ०
रसमंजरी भाषाटीका (सब प्रकारके रस बनाने और धातु फूंकनेकी क्रिया) ... ... ० – १४
शरीरपुष्टिविधान भाषाटीका (शरीरपुष्ट करनेकी औषधि अनुपानोंसमेत वर्णित हैं) ... ... ० – ६
" छोटा गुटका .... ० – ३
पाकप्रदीप वाजीकरण भा० टी० .. .. ० – ७
आयुर्वेद सुषेण–भा० टी० (सुषेणवैद्यकृत) ... ... ० – १४
वंगसेन (भाषाटीकासहित छपताहै) ... ... ० – ०
कुमारतंत्र (रावणकृत) भाषाटीकासमेत ... ... ० – ८
बालतंत्र भाषाटीका (इसमें बालकोंको डाकिनी शाकिनी छुड़ानेके यंत्र मंत्र तथा पोषणचिकित्सा वन्ध्यायतन आदि विषय वर्णित हैं यह पुस्तक सभी गृहस्थोंको रखना योग्य है) ... ... १ – ०
शालिग्रामौषधशब्दसागर–अर्थात आयुर्वेदीय औषधिकोष ... ... २ – ०
बोपदेवशतक–(वैद्यक) भाषाटीकासमेत ... ... ० – ५
अर्कप्रकाश–भाषाटीका रावणकृत (इसमें सब औषधियोंके गुण व अर्क निकालनेकी क्रिया है) ... ... १ – ०
ज्ञानभैषज्यमञ्जरी भाषाटीका ... ... ० – ४
मदनपालनिघंटु भा० टी०... ... ... २ – ८
सर्वविषचिकित्सा भाषा ... ... ० – ६